CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कालचक्रतन्त्रम्

(संस्कृत मूल एवं हिन्दी अनुवाद)

Kālchakra Tantram

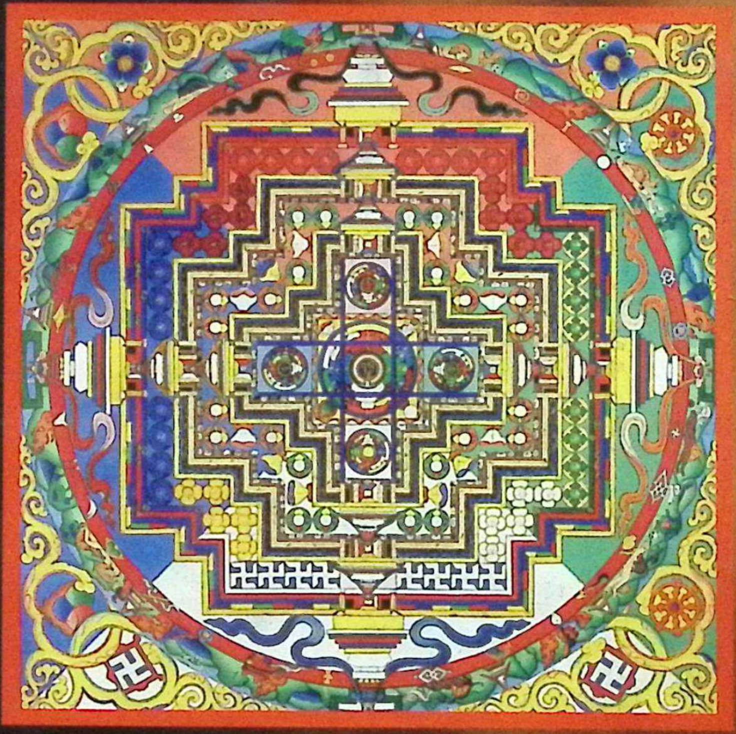

काशीनाथ न्यौपाने

Kashinath Nyaupane

INDIAN MIND

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वै०५.६६१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीनारोपाविरचितं
सेकोद्देशटीकासहितं

कालचक्रतन्त्रम्

(हिन्दी अनुवाद सहितम्)

पुस्तकालय

Kālacakratantraṃ

With Sekoddeśa commentary of Nāropā

काशीनाथ न्यौपाने
Kashinath Nyaupane

INDIAN
MIND

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

First Edition 2013

© Kashinath Nyaupane

Published by **Indian Mind**, Varanasi.

Sole Distributor
Indica Books
Varanasi 221 001 (U.P.)
India
e-mail: indicabooks@satyam.net.in
website: www.indicabooks.com

Acc. 39382/31342

ISBN : 81-86117-17-2

Printed in India by
Sadhana Press
Varanasi. Mo. : 9005440099

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयसूची

अध्यायः		पृष्ठसंख्या
	प्रकाशकीय	६
	प्राक्कथन	८
१-	उपक्रमप्रकरणम्	२३
२-	दीक्षाप्रकरणम्	४३
३-	षडङ्गयोगप्रकरणम्	९३
४-	अरिष्टप्रकरणम्	१६७
५-	आनन्दप्रकरणम्	१७६
६-	मुद्राप्रकरणम्	१८७
७-	मलप्रकरणम्	२१४
८-	कार्यकारणभावसम्बन्धप्रकरणम्	२२७
९-	षडाध्यात्मिकतत्त्वप्रकरणम्	२३७
१०-	षट्कुलप्रकरणम्	२४१
११-	उपसंहारः	२४४
१२-	परिशिष्टः	२४५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशकीय

प्रस्तुत कृति बौद्धतन्त्र साहित्य में अतिशय प्रसिद्ध एवं समादृत है। यह ग्रन्थ न केवल दार्शनिक रूप से ही विद्वान् अध्ययन करते हैं किन्तु इसके आधार पर अनेक बौद्धसाधक आज भी साधना में संलग्न हैं। तिब्बती मूल के साधक और उनसे दीक्षित होकर विश्वव्यापी रूप में कालचक्र के साधना में हजारों लोग लगे हुए हैं। इसी क्रम में तिब्बत के धर्मगुरु चौदहवें दलाईलामा भी अनेक वर्षों से भारत में कालचक्र की दीक्षा दे रहे हैं। इस से यह भी पता चलता है कि इस महनीय कृति का कितना महत्त्व है और अनेक साधक इसके माध्यक से अपने जीवन को कृतार्थ कर रहे हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ अनेक वर्षों से अनुपलब्ध रहा है। सर्वप्रथम सन् १९४० में गायकवाड सिरिज से प्रकाशित हुआ था किन्तु यह असम्पादित ही था। अब, यह ग्रन्थ अनेक हस्तलेखों के आधार पर सम्पादित एवं हिन्दी में अनुदित होकर प्रस्तुत हुआ है।

इण्डियन माइण्ड प्रकाशन का उद्देश्य भारतीय धर्म, संस्कृति, परम्परा और संस्कृत-वाङ्मय के विशिष्ट कृतियों के प्रकाशन कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का महनीय सङ्कल्प है। इसी क्रम में बौद्धतन्त्र के दो ग्रन्थ **हेवज्रतन्त्र** और **गुह्यसमाजतन्त्र** हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हो चुके हैं। इससे विद्वद्गण एवं विद्यार्थीगण लाभान्वित हुए हैं और सकारात्मक प्रतिक्रियायें बहुतायत रूप में प्राप्त हुई हैं।

इसी क्रम में कालचक्रतन्त्र की यह सेकोद्देशटीका प्रकाशित करते हुए हम अत्यन्त हर्षित हो रहे हैं। क्रमशः बौद्धतन्त्र के अन्य ग्रन्थ भी आगे भविष्य में प्रकाशन करने की हमारी योजना है।

इस ग्रन्थ के सम्पादक एवं अनुवादक डॉ० काशीनाथ न्यौपाने जी संस्कृत वाङ्मय के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। सम्प्रति वे नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, काठमाण्डू में बौद्धदर्शन विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं। देश विदेशों में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशकीय

बौद्ध साहित्य और संस्कृत के अध्यापन के लिए वे जाने जाते हैं। हमें आशा है इनके इस कृति से पाठकगण अवश्य लाभान्वित होंगे।

दिलीप कुमार
Indian Mind
&
Indica Books
Varanasi.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राक्कथन

श्री कालचक्रतन्त्र का उपदेश यशस्वी राजा **सुचन्द्र** के प्रश्नों के बाद भगवान् तथागत शाक्यमुनि ने किया है। इस ग्रन्थ का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है **योग** जिससे इस कलियुग में मनुष्यों की या साधकों की मुक्ति होती है। इसीलिए प्रथम श्लोक में ही यह विषय उठाया गया है **"योगं श्री कालचक्रे कलियुगसमये मुक्तिहेतोर्नराणाम्"** यह कहा है।

इस विधि के अवलम्बन द्वारा साधक सद्यः ही मुक्ति का भागी हो जाता है। इसी के लिए यह ग्रन्थ रचित हुआ है। कालचक्र के रहस्यों को विस्तृत एवं संक्षेप में विभिन्न आचार्यों ने व्याख्याओं द्वारा प्रतिपादित किया है। उसी क्रम में आचार्य नारोपा (नाडोपा) द्वारा विरचित यह सेकोद्देश टीका संक्षिप्त है। व्याख्या के दो प्रकार हैं– समास विधि और व्यासविधि। विस्तारपूर्वक किए गए विवेचनों को व्यास पद्धति या विधि कहते हैं किन्तु संक्षेप में बताए गए विषयों या व्याख्याओं को समास विधि या पद्धति कहते हैं। यह कृति समास विधि के अन्तर्गत विरचित हुआ है।

यह टीका ग्रन्थ अपने आप में कारिका और वृत्ति में विरचित हुआ है। आचार्य ने पहले कारिकायें लिखी हैं उसके बाद उन्हीं कारिकाओं पर वृत्ति लिखी है। उन कारिकाओं की व्याख्या भी की है। इस ग्रन्थ में १७४ कारिकायें हैं, उन्हीं पर वृत्ति लिखी गई है। इस संयुक्त कृति का नाम ही सेकोद्देश टीका है। कारिकायें सेकोद्देश हैं और वृत्ति टीका होने से दोनों को मिलाकर सेकोद्देश टीका कहा गया है। सेक का अर्थ अभिषेक है। उद्देश का अर्थ नाम मात्र से पदार्थ का उल्लेख करना। अतएव सेकोद्देश में संक्षिप्त रूप से विषयों (नाम मात्र) का समुल्लेख किया गया है। अतः इसे सेकोद्देश कहा गया है। उस पर फिर स्ववृत्ति लिखने के कारण सेकोद्देश टीका इसका पूरा नाम हुआ है।

यह अत्यन्त अद्भुत कृति है। क्योंकि विशाल कालचक्र ग्रन्थ के मूल रहस्यों को संक्षेप में यहाँ वर्णन किया गया है। कालचक्र अपने आप में अतिशय क्लिष्ट और विशाल भी है। उसमें भी अनेक टीकाओं के माध्यम से और विस्तार किया गया है। इसीलिए यह सेकोद्देश टीका में उन सभी विषयों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को संक्षेप में रखकर सर्वसुलभ किया गया है जिससे जिज्ञासु साधक लाभान्वित हो सकें।

१- इसमें प्रथम परिचयात्मक विवरण है। जिसमें कालचक्र के विषय में और इसके प्रतिपाद्य सात प्रकार के अभिषेक का वर्णन किया गया है।

इस शास्त्र का भगवान् ने श्री धान्यपर्वत में निश्चित स्थान में आरूढ होकर सुखासन में बैठकर, वज्रधातुमण्डल में, वज्रसिंहासन में विराजमान होकर अनेक बोधिसत्त्व, महासत्त्व, देवी-देवताओं, यक्ष, किन्नर, नाग, सिद्ध बुद्ध आदिओं से परिवृत होकर परम आदि बुद्ध नामक समाधि में स्थित होकर उपदेश किया है।

इस ग्रन्थ के उपदेश का रहस्य बताते हुए ग्रन्थकार कहते हैं - २१ हजार छ सौ श्वास एवं प्रश्वासों का निरोध पूर्वक पूर्ण समाधि में प्रविष्ट होकर बुद्धत्व लाभ करना ही योग का लक्ष्य है। यह ग्रन्थ उसी के लिए उपदिष्ट हुआ है। इस विषय को और पष्ट करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं आढक भूमि अर्थात् श्मशान भूमि में स्थित होना है वह श्मशानभूमि सामान्य घाट न होकर वह दशभूमियों में उच्च धर्ममेघा भूमि ही है। उसमें जो निवास करता है वह आढक भूमि का निवासी है। मार, क्लेश और ज्ञेय समापत्ति के आवरक तत्त्वों को हटाकर वहाँ पर रहा जा सकता है।

इस ग्रन्थ के उपदेश के लिए शम्भलपुर के निवासी राजा सुचन्द्र ने प्रार्थना की, दोनों हाथों को जोड़कर प्रणाम करने के बाद कलियुग में मुक्ति का क्या उपाय हो सकता है कृपया हमें बतायें इस प्रकार के अध्येषणा के बाद भगवान् ने जो उपदेश दिया वह यही कालचक्र है। भगवान् का अर्थ भी ग्रन्थकार करते हैं-

भञ्जनं भगमाख्यातं क्लेशमारादिमञ्जनात्। प्रज्ञावध्याश्च ते क्लेशास्तस्मात् प्रज्ञा भगोच्यते अर्थात् क्लेश, दुःख, मार-काम आदि का भञ्जन-विनाश करने के कारण ही वह भग है। वह वस्तुतः प्रज्ञा ही है। क्योंकि प्रज्ञा के द्वारा ही वह वध्य भी है। उसी के होने से वे भगवान् हैं। उन्होंने ही कालचक्र का आख्यान किया।

कालचक्र क्या है?

करुणा शून्यता मूर्ति है। वह मूर्ति काल रूप है, वही संवृति सत्य भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। शून्यता को ही चक्र भी कहा गया है। वह कालचक्र का अद्वय रूप तथा अक्षर तत्त्व है।

करुणा शून्यता मूर्तिः कालः संवृतिरूपिणी।
शून्यता चक्रमित्युक्तं कालचक्रोऽद्वयोऽक्षरः।

अथवा कालचक्र में प्रयुक्त मातृकाओं के अनुसार भी

ककार का अर्थ कारण के शान्त होने पर, लकार से लय का बोध होता है।

चकार से चञ्चल चित्त का **क्रकार** से क्रमपूर्वक निरोध का बोध होता है। इसीलिए भी इसे कालचक्र कहा गया है–

ककारात् कारणे शान्ते लकाराच्च लयोत्र वै। चकारात् चलचित्रत्तय क्रकारात् क्रमबन्धनात्।

यहाँ कारण से तात्पर्य है– बोधिचित्त काय ऐसा कहा गया है। शान्त जाग्रत अवस्था के क्षय होने से विकल्प रहित कायबिन्दु निरोध के द्वारा ललाट में निर्माणकाय स्थित है। ऐसा होने पर स्वप्नावस्था के क्षय होने से प्राण का लय होता है। प्राण के लय से नाडिबिन्दु का निरोध होता है, उससे कण्ठ में संभोगकाय की उपस्थिति होती है। जाग्रत् एवं स्वप्नावस्थाओं में शब्द आदि विषय उपस्थित होते हैं अतः वह साधक च्युतिधर्मयुक्त तम से ढका होता है। अष्टादश धातुओं से चित्त ढका हुआ होता है। उसके बन्धन अर्थात् निरोध पूर्वक तमस का निराकरणात्मक सुषुप्ति के क्षय होने से बिन्दु का निरोध होता है। और हृदय में धर्म काय की स्थिति होती है। यही **क्र** कार का अर्थ है। **क्रम** का अर्थ काय आदि बिन्दुओं का क्षय है। उसका बन्धन (बन्ध) सहजसुखों से तुरीयावस्था का क्षय होना है। क्षरण से ज्ञानबिन्दु का निरोध होता है। अतएव नाभी में सहजकाय का स्थान निश्चित किया गया है। यह विषय इस ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद में सविस्तार वर्णित हुआ है।

इस प्रकार यह प्रथम परिच्छेद पूर्ण होता है।

II

द्वितीय परिच्छेद में दीक्षा का वर्णन है। सात प्रकार की दीक्षा है – जल, मुकुट, वस्त्र, वज्रघण्टा, महाव्रत, नाम और अनुज्ञा वे ही सप्त अभिषेक हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस दीक्षा के क्रम में सर्वप्रथम शिष्य की रक्षा आचार्य करते हैं। वह विधि निर्दिष्ट है- सविस्तार। कलशों का विवरण विस्तारपूर्वक करते हैं। इसके बाद मन्त्रों का उपदेश किया गया है। फिर द्रव्य शुद्धि बताते हैं। उसके बाद गुरु को वस्तुओं का अर्पण भी बताया गया है।

दान दश प्रकार का है-

लोह-रत्नान्नगो-वाजि-गजकन्या-वसुन्धराः।
इष्टा भार्या स्वमांसानि दानं दशविधं मतम्॥

लोहा, रत्न, गौ, अन्न, घोड़ा, हाथी, कन्या, भूमि, भार्या और अपना मांस - वे दान सामग्रियाँ हैं। इसके बाद जब तक ज्ञान उत्पन्न नहीं होता तब तक अन्य पदार्थों को त्यागने की विधि बताई गई है।

हिंसा, असत्य, परस्त्री, परधन, मद्यमान वे त्याज्य हैं। वे ही पञ्चव्रत भी हैं। वे ही सांसारिक वज्रपाश हैं।

इनके अतिरिक्त भी पालनीय व्रत हैं-

द्यूत क्रीडा, असमय भोजन, कुवचन पाठ भी त्याज्य हैं। वेदोक्तधर्म, म्लेच्छधर्म भी त्याज्य हैं।

गोहत्या, बालहत्या, स्त्रीहत्या, पुरुष हत्या, प्रतिमा या स्तूप आदि की निन्दा या विरोध, और सभीप्रकार की हिंसा भी त्याज्य है।

इसी प्रकार मण्डल प्रवेश बताते हैं।

क्रमशः दीक्षा की पूरी विधि बताते हैं और कैसे दीक्षा देनी है और कैसे वह दीक्षा ली जाती है यह भी आचार्य इस प्रकरण में सपरिकर उपस्थापित करते हैं।

III

तीसरा षडङ्गयोगप्रकरण है। जिसमें लोकोत्तर सिद्धि के असाधारण कारणों की चर्चा है। वह कारण षडङ्ग योग ही है।

बुद्धत्व की साधना ही उत्तम सिद्धि है। अर्थात् बुद्धत्व की उपलब्धि को ही मूल साधना या षडङ्गयोग का लक्ष्य बताया गया है। अन्य अन्तर्ध्यान आदि सिद्धियों को सामान्य या लौकिक सिद्धि कहा गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसी क्रम में प्रज्ञा और उपायरूप समापत्ति योग द्वारा समग्र पदार्थों को संक्षिप्त रूप में पिण्डीकृत करने के बाद बिम्ब के बीच में ध्यान करना चाहिए। इससे तत्काल ज्ञान का उदय हो जाता है। यही समाधि भी है।

प्रत्याहार के सिद्धि के तत्काल ही सभी मन्त्र सिद्ध होते हैं। इसके बाद ध्यान का आविर्भाव हो जाता है। ध्यान से पञ्च ज्ञान की उपलब्धि होती है।

धारणा के बल से वज्रसत्त्व में साधक समाहित हो जाता है। अनुस्मृति के द्वारा प्रभामण्डल विस्तृत हो जाता है। समाधि से आवरण नष्ट हो जाते हैं।

प्रत्याहार और शून्यता का विशेष व्याख्या करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं– प्रत्याहार द्वारा समग्र विषय निःसार हो जाते हैं उसके बाद शून्यता का आविर्भाव होता है। वही परमसुख है। उसी में बुद्धत्व का प्राकट्य होता है।

IV

चौथा प्रकरण मृत्यु के विषय में विवेचन करता है। इस प्रकरण में अत्यन्त महत्त्व के साथ वायु के प्रवाह को नापा गया है।

वामनाडी या दक्षिण नाडी में जब अधिक अर्थात् अस्वाभाविक वायु का प्रवाह होता है तब तीन वर्षों में मृत्यु होती है।

वात–पित्त–श्लेष्मों के वैषम्य से मृत्यु होती है। अर्थात् स्वाभाविक क्रम को छोड़कर वामनाडी में एक अहोरात्र में प्रवाह होता है उससे, इसी प्रकार, वृष आदि समलग्नों में उत्पन्न जातकों का दक्षिण नाडी में पाँच अहोरात्र तक वायु के अधिक प्रवाह से तीन वर्षों में मृत्यु होती है।

इस प्रकरण में अत्यन्त सूक्ष्मता से प्राणवायु के वहाव का निरूपण किया गया है। ग्रन्थकार कहते हैं राशिरूप १२ दलयुक्त नाभिकमल का गर्भ मण्डल में पाँच अहोरात्रों तक प्राणवायु बहता है। उसके बाद दक्षिण की ओर लौटकर दशवीं, १५वीं तथा बीसवीं तिथि को वायु का प्रवाह चला है। इस प्रकार गंभीरता से विस्तृत रूप में वायु का बहाव और उसके कारण होने वाले मृत्यु के लक्षण यहाँ पर बताये गए हैं।

चन्द्र और सूर्य नाडियों से हटकर जब सुषुम्ना में वायु का प्रवाह होता है तब, मृत्यु से व्यक्ति मुक्त हो जाता है।

एक गंभीर विषय उठाते हैं और कहते हैं– सौ वर्ष पूर्ण होने पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिसकी मृत्यु होती है स्वतः अपने आप उसके वायु का बहाव सुषुम्ना में हो जाता है।

वे कहते हैं ९६ वर्ष और साढ़े दश महीनों तक की अवधि ही सूर्य और चन्द्र का वहन काल है। उसके बाद सुषुम्ना का समय आविर्भाव हो जाता है। यही रहस्य है कि सौ वर्षों का जीवन काल की कामना हम हमेशा करते हैं।

V

यहाँ पाँचवाँ आनन्द प्रकरण है। शुक्र का आरोहण या आगमन ही आनन्द है। जब शुक्र सहस्त्रार चक्र में समाविष्ट होता है, क्रमशः कण्ठ, हृदय और नाभि में तथा गुह्य में आविर्भाव होता है क्रमशः परमानन्द, विरजानन्द, विशिष्ट आनन्द, अच्युत आनन्द और सहजानन्दों का उदय हो जाता है। उसी अवस्था में अप्रतिष्ठित निर्वाण उपलब्ध हो जाता है। वही महाराग और अक्षर प्रभु भी है। इस प्रकार विस्तारपूर्वक आनन्द की व्याख्या करके यह प्रकरण पूर्ण होता है।

VI

छठा मुद्रा प्रकरण है। कर्म मुद्रा के योग, ज्ञान मुद्रा का आलम्बन और महामुद्रा के सहयोग के द्वारा उस अक्षर सुख में वृद्धि होती है।

कर्ममुद्रा का अर्थ है – स्तन केशवाली स्त्री, जो कामधातु के सुख का कारण होती है। यहाँ कर्म से चुम्बन, आलिंगन, गुह्य स्पर्श आदि व्यापार परिगृहीत होते हैं। इनसे संयुक्त मुद्रा ही सुखदायिनी है। मुद्रा का अर्थ है विशेष सुख देना। मुद धातु से मुद-सुख रति-देने से सुखविशेष के देने या उपलब्ध होने से ही मुद्रा है।

स्वचित्त द्वारा किए हुए अनुभूतियाँ ही ज्ञान मुद्रा है। सांसारिक सुख को देने से तथा आध्यात्मिक सुख देने से भी मुद्रा कहलाती है।

संक्षेप में अचल आनन्द में स्थित होना ही मुद्रा है। समग्र वासनाओं का त्याग और अक्षर सुख की प्राप्ति ही मुद्राओं का लक्ष्य है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

VII

सातवाँ मल प्रकरण है।

चित्त में जो मल है वह कहाँ से उत्पन्न हुआ है। वह आगन्तुक भी नहीं है और चिरकाल तक रहने वाला भी नहीं है। चित्त के बिना हुआ भी नहीं है और सर्वदा रहनेवाला भी नहीं है।

यदि वह आगन्तुक होता तो पहले चित्त को निर्मल होना चाहिए था। यदि बहुत दिनों से वह वहाँ पर है तो उसकी उत्पत्ति कैसे हुई होगी? चित्त के बिना वह हुआ होता तो आकाश पुष्प के तरह ही होना चाहिए था। यदि नित्य हैं तो कभी नष्ट नहीं होना चाहिए। इस प्रकार चिन्तन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं –

जैसे ताबे का मल अम्लरस से नष्ट होता है किन्तु ताँबा ज्यों का त्यों रहता है उसी प्रकार चित्त की भी स्थिति है यह जानना चाहिए। अर्थात् शून्यता रूपी रस के योग से चित्त का मल नष्ट हो जाता है। किन्तु चित्त की ज्ञानावस्था नष्ट नहीं होती। वह चित्त निर्मल हो जाता है।

इसी प्रकार अनेक विषय यहाँ विचारित हुए हैं।

VIII

आठवाँ कार्यकारणभाव सम्बन्ध प्रकरण है।

समस्त बिम्ब शून्यता से उद्‌भूत हुए हैं वही हेतु भी है। उसका फल अक्षर से समुत्पन्न सुख विशेष है। फल से हेतु संयुक्त है और हेतु से फल भी संयुक्त है। दोनों भिन्न नहीं है।

शून्य – आकाश है। बिम्ब – सर्वाकार लक्षण हेतुभूत है। फल – आश्रव सुख है। मुद्रित – मिला हुआ है। वे दोनों ही करुणाभिन्न शून्यता में परिणत होते हैं।

IX

यह नवम ६ आध्यात्मिक तत्त्व प्रकरण है। इसमें ६ प्रकार के प्राणियों के सम्बन्ध में विचार किया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वे हैं - वज्रसत्त्व, महार्थ, परमाक्षर, महाराग, महासत्त्व एवं सर्वसत्त्व-रतिकर।

बोधिसत्त्व, महाद्वेष, क्लेशक्षयी, महारिपु, समयसत्त्व, महामोह - वे मूढता के नाशक कहे गए हैं।

वज्रयोग, महाक्रोध, महारिपु, कालचक्र, महालोभ - क्षरलोभ के नाशक हैं।

इस प्रकार यह प्रकरण अनेक महत्त्वाधायक विषयों का विवेचन करता है।

X

यह दशवाँ षट्कुल प्रकरण है।

६ नाडीरूप ६ चक्रों में वज्रसत्त्व आदि प्रत्येक ६ प्रकार के हैं।

षडाकार, अक्षर ज्ञान वेदना, विज्ञान, रूप, संस्कार, संज्ञा - वे स्कन्ध कुल हैं।

ज्ञान, अग्नि, आकाश, पृथिवी, वायु एवं उदक से क्रमशः मनः, चक्षुः, श्रुति, काय, नासिका एवं जिह्वा उत्पन्न होते हैं।

शब्द, रस, धर्मधातु, गन्ध एवं प्रष्टव्य रूप हैं। वे परिशोधित होते हैं - क्रमशः - क्रोधराट्, षण्मुख, भीम और षट्कुल में।

.इस प्रकार यह दशवाँ परिच्छेद पूर्ण होता है। अन्तिम उपसंहार प्रकरण है। इसमें केवल मङ्गलाभ्यर्थना मात्र है।

इस ग्रन्थ के लेखक–

श्री नरोपापाद के विषय में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। वे ८४ सिद्धों में अन्यतम हैं यह भी प्रसिद्धि है। किन्तु इनके जन्म स्थान, काल एवं जाति-व्यवसाय को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है।

मुझे नेपाल के अभिलेखालय में एक हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। जिसके लेखक देववर्मा हैं और ग्रन्थ का नाम सिद्ध चरितम् है। उक्त ग्रन्थ के अनुसार इनका वास्तविक नाम नरोत्तमपाद है और कालान्तर में वे नरोपा या नाडोपा नाम से विख्यात हुए। वे कश्मीरी ब्राह्मण थे और राजा के गुरु थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुछ लोग इन्हें शुभवर्मा नामक राजा के पुत्र थे यह भी कहते हैं। कुछ लोग इन्हें क्षत्रियवंश में समुत्पन्न मानते हैं। कुछ अन्य लोग नीच जाति के थे यह कहते हैं।

इनके गुरु तिलिप्पा थे। उनसे दीक्षित होने के बाद नरोपा या नडपा हुए थे। वे अत्यन्त शालीन या भद्र होने से इन्हें समन्त भद्र भी कहते थे।

श्रीमती नाम की इनकी माता थी। कुछ लोग इन्हें बंगाली, कुछ काश्मिरी, कुछ लोग तिब्बती और अन्य कुछ नेपाली मानते हैं।

किन्तु इनका चरित्र विचित्र होने से जो भी विद्वान् कहते हैं उसे मानने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।

इनके विषय में देववर्मकृतसिद्धचरितम् के कुछ श्लोक निम्न हैं।

आसीन्नरोत्तमः कश्चित् सिद्धेस्वन्यतमो महान्।
काश्मीराणां ब्राह्मणेषु राज्ञाञ्च पथदर्शकः॥
शुभवर्माख्यनृपतेः पुत्रत्वेनापि कुत्रचित्।
स्मरन्ति श्रद्धया केचित् इमं सिद्धं महत्तमम्॥
केचित्क्षत्रिय-वंशानां पुत्रोऽयमिति युक्तितः
वदन्ति चापरे नीचगोत्रजातं न संशयः॥
तिल्लिपा-नामकः कश्चित् सिद्धो गुरुरभूच्च सः।
तस्माद्दीक्षां गृहीत्वैव नरोपेति बभौ मुनिः॥
नडपा किच्च भद्रत्वात् समन्तभद्र इत्यपि
इतिहासविदः प्राहुरेनं सिद्धं नरोत्तमम्॥
श्रीमतीनाम्ना विख्याता जननी चाभवत्तथा।
किन्तु नास्ति मतैक्यं तु नरोपा चरिते क्वचित्॥

- - - - - - - - - - - - -

तथापि सिद्धसाध्यानां महात्मनां तदर्थकृत्।
चरितं सर्वदा ग्राह्यं यच्चास्ति तच्च नौम्यहम्॥

इतिश्री देववर्मकृते सिद्धचरिते नरोत्तमपादस्तुति-प्रकरणं समाप्तम्।

उपर्युक्त ग्रन्थ का सम्पादन यह पङ्क्तिकार कर रहा है। आशा है शीघ्र ही प्रकाशन योग हो जाएगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बौद्धतन्त्र ग्रन्थों के पाँच प्रकार हैं।

१- क्रिया तन्त्र

२- चर्या तन्त्र

३- योग तन्त्र

४- अनुत्तरयोग तन्त्र

५- अनुत्तर मातृयोग तन्त्र

साधकों के व्यक्तिगत गुणों को लेकर ही भगवान् ने इन तन्त्रों का उदपेश दिया है ऐसा प्रतीत होता है।

पवित्र, तपस्वी व्यक्तियों के लिए क्रियातन्त्र। कुछ परिश्रमी एवं कठोर हृदय वाले लोगों के लिए चर्यातन्त्र।

सुख-वैभव में लिप्त लोगों के लिए योगतन्त्र। बिना विचार किए ही कार्य में लगने वाले व्यक्ति के लिए अनुत्तर योग तन्त्र।

अन्य तैर्थिक आदि के कल्याणार्थ अनुत्तर मातृ तन्त्रों का उपदेश किया गया है। अर्थात् क्रियातन्त्र।

प्रथम क्रियातन्त्रों के ६ भेद हैं -

१- मञ्जुश्रीमूलकल्पतन्त्र।

२- अवलोकितेश्वर तन्त्र।

३- वज्रपाणितन्त्र

४- अचल तन्त्र।

५- विद्यादेवी तन्त्र।

६- उष्णीष तन्त्र।

क्रिया तन्त्र के लोकोत्तर कुल और लोककुल से दो अन्य भेद भी हैं।

लोकोत्तर कुल में तथागत कुल, पद्मकुल तथा वज्रकुल हैं।

इस तन्त्र के अन्तर्गत अभिषेक,. शुद्धिकरण, उपासना और सिद्धि के लिए कार्य करना।

२- चर्यातन्त्र

विधिविहित तान्त्रिक कृत्य ही चर्या है। इस तन्त्र में तथागत कुल, पद्मकुल एवं वज्रकुल हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथागत कुल का वैरोचनाभिसम्बोधि तन्त्र है।

वज्रकुल का वज्रपाणि अभिषेक तन्त्र, वज्रपाणि नीलाम्बर वज्रपातालिक तन्त्र, त्रिभुवनचरी कल्पतन्त्र और वज्रपाणि नीलाम्बर त्रिलोकमर्दनी तन्त्र है।

३- योगतन्त्र

संवृति सत्य एवं परमार्थ सत्य दोनों में और दोनों के अतिरिक्त अद्वय स्वरूप में साधक को प्रतिष्ठित करने के कारण ही इसे योगतन्त्र कहा गया है।

इस तन्त्र के देशना के लिए ही भगवान् ने तीन स्वरूप धारण किए है।

१- धर्म काय

२- सम्भोग काय

३- निर्माण काय

इस सम्प्रदाय के ग्रन्थ निम्न हैं -

१- तत्त्वसङ्ग्रहः

२- त्रिलोक विजय महाकल्प

३- सर्वदुर्गतिपरिशोधनकल्प

४- परमाद्यतन्त्र

५- वज्रगर्भालङ्कारतन्त्र

६- देवदेवसिद्धितन्त्र

४- अनुत्तर योगतन्त्र

इस तन्त्र परम्परा में पितृतन्त्र, मातृतन्त्र और अद्वयतन्त्र से हम तीन परम्परा को जानते हैं।

- उपाय प्रधान पितृतन्त्र।

- प्रज्ञाप्रधान मातृतन्त्र।

- उभय प्रधान अद्वयतन्त्र।

इस तन्त्र परम्परा में उपाय एवं प्रज्ञा को साथ साथ रखा गया है। उत्पत्ति क्रम एवं निष्पन्न क्रम का भी उल्लेख हुआ है। उत्पत्ति क्रम उपाय और निष्पन्न क्रम को प्रज्ञा कहा है।

उत्पत्ति क्रम के दो प्रकार हैं - (१) विमानोत्पाद भाव तथा (२) देवोत्पाद भाव।

सभी धर्मों को शून्य रूप में देखना और उसकी भावना करना।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवोत्पाद भावना से अपने को हीन योनि से उत्पन्नता के भाव को त्याग कर दिव्य योनि से उत्पन्नता की भावना द्वारा शून्यता में ले जाना।

निष्पन्न क्रम से समग्र जगत् को शून्य में विलीन कर देना तथा शून्यता के अतिरिक्त अन्य पदार्थों के स्वभाव को अस्वीकार करना।

इस तन्त्र परम्परा के ग्रन्थ निम्नरूप में हैं –

१- चक्रसंवर तन्त्र
२- हेवज्र तन्त्र
३- बुद्ध कपाल तन्त्र
४- महामाया तन्त्र
५- रिगि अरल्लि तन्त्र
६- वज्ररल्लि तन्त्र
७- डाकिनीवज्रपंजर
८- महामुद्रातिलक
९- ज्ञान गर्भ महायोगतन्त्र
१०- ज्ञानतिलक महायोगिनीतन्त्र
११- सिद्धि निर्देश तिलक नामतन्त्र
१२- तत्त्व प्रदीप
१३- बुद्ध कपाल
१४- महामाया तन्त्र
१५- चतुष्पीठ तन्त्र
१६- वज्रामृत तन्त्र
१७- तारातन्त्र
१८- खसमतन्त्र
१९- गुह्यसमाजतन्त्र
२०- कालचक्रतन्त्र

इनके अतिरिक्त तन्त्रग्रन्थ जो भी हैं वे सब इन्हीं ४ परम्पराओं के अन्तर्गत ही आते हैं। इन चारों के अतिरिक्त **अनुत्तरमातृयोग** तन्त्र की भी परिगणना की जाती है। पर यह भी चौथे अनुत्तरयोग तन्त्र परम्परा में ही अन्तर्भूत है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सम्पादन एवं अनुवाद

प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्पादन नेपाल में उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर किया गया है। मेरे व्यक्तिगत संग्रह में भी इसकी पाण्डुलिपियाँ हैं, जिनका मैंने पूरा उपयोग किया है। साथ ही गायकवाड सिरिज से प्रकाशित ग्रन्थ का तथा सन् २००६ में रोम से प्रकाशित फ्रान्सेस्को स्फेरा द्वारा सम्पादित ग्रन्थ का भी इसमें पूर्ण उपयोग किया गया है। अतः मैं इन दोनों संस्करणों का आभारी हूँ। इस समग्र ग्रन्थ का अक्षर संयोजन अत्यन्त परिश्रम एवं शुद्धता के साथ करने वाले विद्वान् श्री विमलेन्दु भट्टाचार्य का मैं आभारी हूँ। संस्कृत के ग्रन्थों का इतना अच्छा संयोजन करना सामान्य ज्ञान और समझ से कदापि संभव नहीं है। उनकी तीक्ष्ण बुद्धि से जो यह महनीय कार्य हुआ है इससे वे बड़ा पुण्य तो प्राप्त कर ही रहे हैं साथ ही पाठक वर्गों का अजस्र आशीर्वाद के भागी भी हैं। भगवान् विश्वनाथ इनके मनोरथ पूर्ण करें यही इनके लिए मैं प्रार्थना करता हूँ।

यह ग्रन्थ अब तक अंग्रेजी तथा अन्य किसी भी भाषा में अनुदित नहीं है। आशा है पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे।

२०१३, दीपावली, काठमाण्डू, नेपाल।

– **काशीनाथ न्यौपाने**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सेकोद्देशटीकायुतं
कालचक्रतन्त्रम्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ कालचक्रतन्त्रस्य
श्रीनारोपादविरचिता सेकोद्देशटीका

तत्रोपक्रमप्रकरणम्
उपक्रम प्रकरण

ॐ नमः कालचक्राय॥

ॐ श्रीकालचक्र को नमस्कार है।

सर्वावृतिप्रशमनिर्मलबुद्धधर्म-
निर्वेधसौधमधिरुह्य वपुर्द्वयेन।
तस्मै नमो भगवते यदुपज्ञकानि
विश्वोपकारविधिनाटकनर्तनानि॥ १॥
उद्धृत्य वाक्यसलिलं विमलप्रभादि-
पयोनिधेर्जलमुचेव मया विमुक्तम्।
उद्देशगूढपदपद्धतिपल्वलेऽस्मिं-
स्तर्षोपरोधविधये विबुधा भजध्वम्॥ २॥

भगवान् तथागत समस्त क्लेशादि दुःखों के नाशक, अत्यन्त शुद्ध बुद्धधर्मरूपी विशाल प्रासाद में अपने दो कायों के द्वारा आरूढ हुए हैं और अपने ही प्रयास द्वारा स्वयं समुपलब्ध ज्ञान ही समग्र विश्व के उपकार करने के लिए रचे गए विशिष्ट नाटक के पात्र हैं, ऐसे भगवान् बुद्ध को हम नमस्कार करते हैं।

जैसे बादलगण विशाल समुद्रों से थोड़ा-थोड़ा जल उठाते हैं, उसी प्रकार विमल प्रभा आदि विभिन्न-विशाल ग्रन्थों से वाक्याशों को लेकर यहाँ कालचक्र का व्याख्यान किया गया है। इस कालचक्र ग्रन्थ के द्वारा विशिष्ट गूढ पदों के रहस्य रूपी पल्वलात्मक छोटे जलाशयों में अज्ञान जन्य तृष्णा को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नष्ट करते हुए इस विशिष्ट ग्रन्थ के रहस्य ज्ञान के लिए विद्वद् जन इस टीका का आश्रय ग्रहण करें।

सुचन्द्र आह -

सुचन्द्र आहेति। शीतनाड्युत्तरे[1] षण्णवतिकोटिग्रामसम्भलमहाविषयाधिपतिर् देवासुरनागनिर्माणकायैः षण्णवतिमहाराजकुलप्रसूतैर्महारत्नमुकुटबद्धैः कोटिकोटिग्रामाधिपतिभिर्नमस्कृतचरणारविन्दः सर्वसत्त्वभाषान्तरैस्तथागतोक्तधर्माणां संग्राहकत्वेन सर्वतथागतश्रोत्रभूतत्वात् षोडशकलावरणप्रहाण्या वज्रेन्दुविमलप्रभत्वाच्च शोभनश्चासौ चन्द्रश्चेति सुचन्द्रो गुह्यकाधिपतिरडकवतीनिवासी श्रीवज्रपाणिः। तत्र गुह्यं श्रावकप्रत्येकयानयोरुत्तरं वज्रयानम्। तस्मिन्सङ्गीतिकारकत्वेनाधिपतिः। तथा लोकसंवृत्या गुह्यशब्देन यक्षाः। तेषामधिपतिर्गुह्याधिपतिः। बाह्येऽडकशब्देन मृतकसमूहः। तद्योगादडकवती श्मशानभूमिः। तस्यां महायक्षाः सत्त्वानां विहेठका अनेकविघ्नकर्तारः। तेषां वधको ऽटव्यां मृगाधिपतिरिवाडकवतीनिवासी महायक्षाधिपतिः। अध्यात्मनि षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासप्रश्वासानां षट्त्रिंशच्छतोनानां निरोधो ऽडकः। सोऽस्यामस्तीत्यडकवती धर्ममेघाभूमिः। तस्यां निवास्यडकवतीनिवासी। मारक्लेशज्ञेयसमापत्त्यावरणयक्षाणां वधको यक्षाधिपतिः। तथागतदेशितधर्मसिंहनादेन सर्वसत्त्वानां प्रत्येकरुतैर्धर्मप्रवर्तको गुह्याधिपतिः श्रीवज्रपाणिः। तन्निर्माणकायः सुचन्द्रो राजाध्येषयति। तदुक्तं मूलतन्त्रे–

सुचन्द्र ने कहा चन्द्रनाडी के बाद छियानब्बे कोटि ग्रामसमूहों के महान् विषयाधिपति ने देव-असुर-नागों द्वारा निर्मित विशिष्ट निर्माण कायों के द्वारा, छियानब्बे महाराजाकुलों से उत्पन्न महारत्नों से निर्मित मुकुटों से सुनिबद्ध करोड़ों-करोड़ों ग्रामाधिपतियों के द्वारा जिनके पवित्र चरण निरन्तर ढोये जा रहे हैं, सर्वसत्त्वों के भिन्न भिन्न भाषाओं के द्वारा तथागतोक्त धर्मों का

[1] शीता नाड्युत्तरे यह पाठ अन्य संस्करणों में है जो इस हस्तलिखित से सर्वथा भिन्न है और अशुद्ध है। इसका अर्थ नहीं बैठता है। वस्तुतः वर्णव्यत्यय से यह दोष हुआ है। चन्द्र और सूर्य नाडियों के बाद में अवस्थित सुषुम्नानाडी की ओर संकेत करने के लिए ही शीतनाडी का उल्लेख हुआ है। शीता नदी का किसी प्रकार अर्थ लगाने से प्रस्तुत प्रसङ्ग का कोई अर्थ नहीं बनता है। छियानब्बे कोटि आदि प्रसङ्ग का आध्यात्मिक अर्थ यत्र तत्र देखा जा सकता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संग्रहात्मक रूप से सभी तथागतों के माध्यम से श्रवण किए जाने से १६ कलाओं के आवरणों की प्रहार करके, साथ ही चन्द्रमा के स्वच्छ किरणों के प्रभाव से भी शोभनश्चासौ चन्द्र-सुन्दर यह चन्द्र ही है। अतएव सुचन्द्र कहा गया है, वे गुह्यों के अधिपति श्मशान भूमि में रहने वाले वज्रपाणि ही हैं।

यहाँ पर गुह्य से तात्पर्य श्रावकयान एवं प्रत्येक बुद्ध यानों से विशिष्ट वज्रयान का बोध किया जाता है और उसमें ही संगीति कर्तृत्व से वे अधिपति कहलाते हैं। लौकिक सत्य की दृष्टि से गुह्य शब्द के द्वारा यक्षों का बोध होता है और उनके अधिपति होने से भी वे गुह्याधिपति कहलाते हैं। बाह्यार्थ की दृष्टि से आढक शब्द द्वारा मृतकों के समूहों का बोध करना चाहिए। उसी के सम्बन्ध से आढकवती का अर्थ श्मशान भूमि है। उसी श्मशान भूमि में हमेशा यक्षगण प्राणियों के दुःख देने में लगे रहते हैं और अनेक प्रकार के विघ्न में संलग्न होते हैं। उन दुःखदायी यक्षों को नाश करने या रोकने के लिए जैसे जंगलों में सिंह रहते हैं उसी प्रकार श्मशान भूमि में निवास करने वाले महायक्षाधिपति हैं।

अध्यात्म दृष्टि से २१ हजार छह सौ श्वास एवं प्रश्वासों में ३६ सौ श्वासों का निरोध ही आढक कहा गया है। वह यहाँ पर होने से इसे आढकवाली भूमि अर्थात् दशभूमियों में यह धर्ममेघा भूमि है। उसमें जो निवास करता है वही आढक भूमि का निवासी है। मार, क्लेश, ज्ञेय समापत्ति आवरणक यक्षों को बोध करने में समर्थ ही यक्षाधिपति हैं। तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म सिंह नाद के द्वारा सभी प्राणियों के प्रत्येक उपदेशों से धर्म का प्रवर्तन करने वाले गुह्याधिपति श्री वज्रपाणि ही हैं। वे ही निर्माणकाय हैं अर्थात् सुचन्द्र राजा अब यहाँ अध्येषणा प्रार्थनारूप प्रश्न करते हैं। जैसे कि मूलतन्त्र में कहा गया है -

अग्रतः पूर्णिमाचन्द्रे पृष्ठतः पूर्णिमारवौ।
वामतस्तमिनो वक्त्रे पुच्छे दक्षिणतः स्थिते॥
त्रैलोक्यविजयो नाम समयो मारमर्दनः।
तस्मिन्पूर्वमुखः शास्ता रत्नसिंहासने स्थितः॥
पञ्चरश्मिमयैर्व्यूहैः प्रपूरयञ्च जगत्त्रयम्।
बोधिसत्त्वामरारीन्द्रदेवेन्द्रैः पूजितः प्रभुः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिव्यैर्नानाविधैः पुष्पैर् दिव्यैर्गन्धैर्मनोहरैः।
दिव्यै रत्नप्रदीपैश्च दिव्यैर्धूपैः सुगन्धजैः॥
दिव्यैर्नानाविधैश्चूर्णैर्नैवेद्यैरमृतैः फलैः।
विचित्राभरणैर्दिव्यैर्दिव्यैर्वस्त्रैश्च चामरैः॥
घण्टादर्शपताकाभिर्दिव्यैश्छत्त्रैर्वितानकैः।
पञ्चाङ्गैर्मौलिसंयुक्तैः प्रणिपत्य पुनः पुनः॥
त्रैलोक्यनायकं बुद्धं बोधिसत्त्वामरादयः।
स्वस्वासने निषण्णास्ते मन्त्रयानश्रुतार्थिनः॥
अभिज्ञालाभिनः केचिद् बोधिसत्त्वाः सुरादयः।
हृष्टतुष्टाशयाः सर्वे मनसा चिन्तयन्ति ते॥
दीपङ्करेण या पूर्वं मन्त्रयानस्य देशना।
कृतास्माकं तु कर्तव्या गौतमेनाद्य साधुना॥
अथातः सम्भलाख्यातो वज्रपाणिविनिर्मितः।
सुचन्द्रनृप आयातः स्वर्द्धया श्रीधर्मधातुकम्॥
आदौ प्रदक्षिणं कृत्वा शास्तुः पादाम्बुजद्वयम्।
रत्नपुष्पैः समभ्यर्च्य प्रणिपत्य पुनः पुनः॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा सम्बुद्धस्याग्रतः स्थितः।
तन्त्रस्याध्येषकः शास्तुश्चन्द्रः सङ्गीतिकारकः॥ इति

अपने अग्रभाग में पूर्णिमा के चन्द्र और पृष्ठ भाग में पूर्णिमा के सूर्य तथा वामभाग में अन्धकारात्मक मुख और दायीं ओर पुच्छर विराजमान हैं। कामों का मर्दन करने वाले, तीनों लोको को जितने में समर्थ जो अत्यन्त उज्जवल सिद्धान्त है उसी में पूर्व की ओर मुँह करके रत्नों से निर्मित सिंहासन में भगवान् शास्ता विराजमान हैं।

पाँच रश्मियों से युक्त व्यूहों से जिन्होंने तीनों लोकों को पूरित कर दिया है, साथ ही बोधिसत्त्वादि गणों से, देवेन्द्रों से भी भगवान् प्रभु पूजित हुए हैं।

अलौकिक भिन्न भिन्न पुष्पों से, दिव्य गन्धों से, मनमोहक दिव्य रत्नों से पूरित दीप, दिव्य-धूप जो सुगन्धों से निर्मित हैं, अनन्त दिव्य चूर्णों से, नैवेद्य और आम्रफलों से, दिव्य-विचित्र आभूषणों से, दिव्य-वस्त्र एवं चामरों से, घण्टा-दर्पण (सीसा), ध्वजा पताकाओं तथा छत्रों से, पञ्चाङ्ग मौलियों से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भगवान् विभूषित हुए है, ऐसे भगवान् को वारम्वार प्रणाम करते हुए, त्रैलोक्य नायक भगवान् बुद्ध को, अमर बोधिसत्त्वगणों ने, जो अपने आसनों में विराजमान होने के साथ ही मन्त्रयान के तात्पर्य के विज्ञ थे, अभिज्ञा को प्राप्त भी थे, और कुछ बोधिसत्त्व एवं देवतागण ही थे, वे खुश, तृप्त थे साथ ही मन से भी विचार करते थे।

दीपङ्कर बुद्ध ने जो बहुत पहले मन्त्रयान की देशना की है उसे फिर से हम लोगों के लिए गौतम बुद्ध उपदेश करें, जो अति विज्ञ हैं, साधु हैं। इसके बाद शम्भल नाम से विख्यात, वज्रपाणि के द्वारा विनिर्मित या स्वयं वज्रपाणि ही हैं, वे सुचन्द्र नाम से प्रसिद्ध राजा हैं, वे आए और अपने ज्ञान के लिए श्रीधर्मधातु का सबसे पहले प्रदक्षिणा करने के बाद, शास्ता के दोनों चरणों में रत्नों से निर्मित पुष्पों का समर्पण करते हैं और वारम्वार नमस्कार करने के बाद दोनों हाथों को जोड़कर बुद्ध भगवान् के सम्मुख स्थित होकर, स्वयं सङ्गीतिधारक चन्द्र जो शास्ता के समक्ष प्रश्नकर्ता हैं, वे प्रार्थना करते हैं॥

सेकः सप्तविधः शास्तस्त्रिविधो ऽनुत्तरस्तथा।
लौकिकोत्तरसिद्ध्यर्थं संक्षेपात् कथयस्व मे॥ ३॥

सम्यक्शासकत्वेन हे शास्तः। यो वक्ष्यमाण उदकादि सप्तधा सेकः कुम्भादिकस्त्रिधा अनुत्तर इति परमाक्षरस्तथेति सेकः। सिच्यते कायादिकं निर्मलं निरावरणं क्रियतेऽनेनेति सेकः। तं कथयस्व मे। लौकिकसिद्धिर् इत्यकनिष्ठभुवनपर्यन्ताधिपत्यम्। उत्तरसिद्धिर् इति सवासनसर्वक्लेशज्ञेय-समापत्त्यावरणप्रहाणितो द्वादशभूमिप्रतिलम्भेन सम्यक्सम्बुद्धत्वम्। तदर्थम्। संक्षेपाद् इति क्लेशकल्पसत्त्वदृष्ट्यायुर्लक्षणपञ्चकषायोपहत-जनानुग्रहप्रवृत्तत्वाद् अध्येषकस्य सेकपटले ज्ञानपटले च विस्तरेण वक्ष्यमाणत्वाच्च।

ठीक से शासन करने के कारण ही आप शास्ता हैं। इसी से हे शास्ता ऐसा कहा गया है।

यह जो बताया जाने वाला उदक = जल आदि सात प्रकार का कुम्भादिक है और वह तीन प्रकार से विभक्त किया जाता है। अनुत्तर परमाक्षर है। उसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकार सेका का अर्थ सिञ्चन करने से है, जिससे शरीर आदि का निर्मल एवं निरावरणात्मक किया जाता है वही सेक है। उसे आप मुझे बतलाइए।

लौकिक सिद्धि का तात्पर्य है अकनिष्ठ भुवन तक का आधिपत्य समझना चाहिए। उत्तर सिद्धि से तात्पर्य है समग्रवासना युक्त–क्लेश–ज्ञेयावरणों के प्रहाण द्वारा द्वादशभूमि में प्रविष्ट होकर सम्यक्संबुद्धत्व की उपलब्धि होना है। वह अर्थ संक्षेप में इस प्रकार है–

क्लेश–कल्पों में युक्त अनन्त प्राणियों के आयु लक्षण, दुःखों से परिपूर्ण जनों के कल्याणार्थ प्रवृत्त होने से आग्रहकर्ता स्वयं सेकपटल और ज्ञानपटल में विस्तारपूर्वक कहने वाले हैं।

भगवानाह–

भगवानाहेति विशुद्धषड्धातुकत्वादैश्वर्यादिगुणलक्षणो भगो विद्यते ऽस्येति भगवान्। तदुक्तं मूलतन्त्रे–

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य रूपस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानस्याथ प्रयत्नस्य षण्णां भग इति स्मृतिः॥
षट्त्रिंशद्धातवः शुद्धा भूम्याद्या वज्रयोषितः।
ऐश्वर्यादिगुणास्तासां षड्भगास्ते प्रकीर्तिताः॥

भगवान् ने कहा–विशुद्ध षड्धातुयुक्त होने से ऐश्वर्य आदि गुणों से पूर्ण भग है जिसका, इसी से वे भगवान् हैं। जैसा कि मूलतन्त्र में कहा गया है–

समग्र ऐश्वर्य, समग्र रूप, यश और समग्र शुभ लक्षणों से युक्त तथा जिनमें ज्ञान एवं प्रयत्न की पूर्णता है, वे ही भगवान् कहलाते हैं।

शुद्ध ३६ धातुगण और भूमि आदि वज्रयोषित् (स्त्रियाँ) के ऐश्वर्य आदि ६ गुण ही भग कहलाते हैं।

हेवज्रेऽपि–

भञ्जनं भगमाख्यातं क्लेशमारादि भञ्जनात्।
प्रज्ञावध्याश्च ते क्लेशास्तस्मात् प्रज्ञा भगोच्यते॥ इति।

कुत्र स्थाने। क्व कस्मिन्मण्डले। कुत्र स्थितः। कया पर्षदा परिवृतो भगवानाह। श्रीधान्ये नियतमन्त्रनयदेशनास्थाने महासुखावासे वज्रधातु–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महामण्डले वज्रसिंहासने स्थितो बुद्धबोधिसत्त्वक्रोधदेवनागदेवीगण-परिवृतस्त्रैधातुकवन्दितचरणारविन्दः परमादिबुद्धसमाधिसमापन्नः। कायवाक्चित्तात्मको वंकारो वा तत्र महासुखावासे धर्मधातावाकाशलक्षणे परमाक्षरो ऽच्युतक्षणः काल इत्युच्यते। तदेव वज्रज्ञानम्। तस्य कालस्य निरावरणस्कन्धधात्वायतनं चक्रं त्रिभवस्यैकत्वं निरावरणं ज्ञेयम्। तदेव वज्रधातुमहामण्डलमित्युच्यते। सर्वाकारं सर्वेन्द्रियं बिन्दुरूपं विश्वमायाधरं भगवतः शरीरं प्रज्ञोपायात्मकमिति। अच्छेद्याभेद्ये चन्द्रसूर्याग्निमण्डललक्षण एकारलक्षणे वा वज्रसिंहासने स्थितः। उक्तं च मूलतन्त्रे–

गृधकूटे यथा शास्त्रा प्रज्ञापारमितानये।
तथा मन्त्रनये प्रोक्ता श्रीधान्ये धर्मदेशना॥
कुतः स्थानात् कुतः शास्त्रात् कश्च तन्त्रश्च देशितः।
कस्मिन्स्थाने कया लोकपर्षदा केन हेतुना॥
गृधकूटे महाशैले प्रज्ञापारमितानयम्।
सन्देश्य बोधिसत्त्वानां महायानं निरुत्तरम्॥
अथैकस्यां महाचैत्यां धर्मधातुकमण्डले।
बोधिसत्त्वादिभिः सार्धं विजहार तथागतः॥
आकाशे त्वजडे स्वच्छे ऽनवकाशे प्रकाशिनि।
विश्वे वज्रालये लयने धर्मधातौ मनोरमे॥
तन्त्रस्य देशना पुंसां पुण्यज्ञानप्रयोजनम्।
एकारो गगनालोको धर्मधातुः प्रकीर्तितः।
वंकारः सुगतव्यूह एकारे संव्यवस्थितः॥

हेवज्र में भी कहा है–

भञ्जन-विनाश करना ही **भग** कहलाता है, क्लेश (दुःख) मार (काम=इच्छा) आदि का भञ्जन करने के कारण वह भग है, वे क्लेश आदि प्रज्ञा के द्वारा वध्य हैं इसी से प्रज्ञा ही **भग** है।

किस स्थान में? कहाँ किस मण्डल में? कहाँ रहकर? किस परिषद् के साथ आवृत होकर भगवान् ने यह उपदेश किया। श्रीधान्य पर्वत में, निश्चित मन्त्रनय के उपदेश स्थल पर, महान् सुखावास में, वज्रधातु महामण्डल में, वज्रसिंहासन में रहकर बुद्ध-बोधिसत्त्व-क्रोध देव-नागदेवी गणों के द्वारा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चारों ओर से घिरे हुए साथ ही तीनों धातुओं के अधिपतिओं के द्वारा पूजित होते हुए परम आदि बुद्ध ने समाधि में स्थित होकर यह उपदेश किया।

कायवाक्चित्तात्मक **वं** कार है अथवा उसमें, महासुखावास में, धर्म धातु जो आकाश लक्षणों से परिपूर्ण है, में परम अक्षर अच्युतक्षण ही **काल** ऐसा कहा गया है वही वज्रज्ञान है। उस काल का निरावरण-स्कन्ध-धातु-आयतन चक्र को त्रिभव का एकत्व रूप निरावरण है ऐसा जानना चाहिए। वही वज्रधातु महामण्डल कहा गया है। सर्वाकार, सर्व-इन्द्रिय युक्त, बिन्दुस्वरूप, विश्वमायाधर, भगवान् का शरीर है और वह प्रज्ञोपायात्मक है। अच्छेद्य और अभेद्य चन्द्रसूर्य-अग्निमण्डलात्मक **ए** कार लक्षणवाले आसन में अथवा वज्रसिंहासन में भगवान् स्थित हैं। मूलतन्त्र में कहा है -

प्रज्ञापारमितानय में शास्ता ने कहा है, और मन्त्रनय में भी कहा है कि गृध्रकूट में प्रज्ञापारमिता का उपदेश श्रीधान्य पर्वत में धर्मदेशना की गई है।

किस स्थान से, किस शास्त्र से किस तन्त्र का उपदेश हुआ है? किस स्थान में और किस लोक परिषद् के समक्ष किस कारण से उपदेश किया गया है।

महान् पर्वत गृध्रकूट में प्रज्ञापारमिता का उपदेश करने के बाद निरुत्तर महायान का उपदेश बोधिसत्त्वों के लिए किया गया है।

किसी एक विशिष्ट चैत्यभूमि में जो धर्मधातुमण्डल है, में बोधिसत्त्व एवं महासत्त्वों के साथ भगवान् तथागत ने विहार किया।

चैतन्यमय, स्वच्छपूर्ण, प्रकाशमय, वज्रालय, व्यापक, लयात्मक, मनोरम, आकाशवत् धर्मधातु में भगवान् तथागत ने पुण्य-ज्ञान के प्रयोजनार्थ तन्त्र की देशना की, उसमें आनेवाला प्रथम शब्द **एवं** इसमें से **ए** कार आकाशवत् व्यापक एवं प्रकाशमय धर्मधातु कहा गया है **वं** यह वर्ण सुगत-बुद्ध का व्यूह-अन्तवर्तीधर्म है जो एकार के साथ संवृत्त हुआ है।

पुनस्तत्रैव-

ए रहस्ये खधातौ वा भगे धर्मोदयेऽम्बुजे।
सिंहासने स्थितो वज्री उक्तस्तन्त्रान्तरे मया॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वं वज्री वज्रसत्त्वश्च वज्रभैरव ईश्वरः।
हेरुकः कालचक्रश्च आदिबुद्धादिनामभिः॥
नानाविषयसंज्ञाभिः स्थानमाधारलक्षणम्।
आधेयश्च मया प्रोक्तो नानासत्त्वाशयेन तु॥
सर्वज्ञो वज्रधृक् शास्ता बुद्धः सिंहासने स्थितः।
देशकः कालचक्रस्य सुचन्द्राध्येषितस्त्वया॥ इति॥

और वहीं पर कहा भी है –

आकाश धातु में रहस्यात्मकरूप से **ए** स्थित है। अथवा **भग** या धर्मोदयात्मक कमल सिंहासन में स्थित होकर उस तत्त्व को मैंने दूसरे तन्त्रों में कहा भी है। **वं** यही **वज्रधृक** है, वज्रसत्त्व भी वही है, वज्रभैरव एवं ईश्वर भी है। उसे ही हेरुक, कालचक्र, आदि बुद्ध आदि नामों से जाना जाता है। अनेक विषयों और नामों से अभिहित किया गया है। इसी प्रकार स्थान, आधार उनके लक्षण, आधेय आदि भी अनेक प्राणियों के कर्म-वासनाओं के आधार पर ही कहा गया है। अतएव कालचक्र के उपदेश के क्रम में सर्वज्ञ, वज्रधृक्, शास्ता, बुद्ध ही सिंहासन में स्थित होकर कालचक्र के उपदेशक हुए हैं उन्हें सुचन्द्र ने उपदेश के लिए प्रार्थना की थी, ऐसा कहा गया है।

शृणु सुचन्द्र सेकार्थं सप्तधा त्रिविधं परम्।
नाडीसंचारमायाममुद्देशात् कथयामि ते॥ ४॥

हे सुचन्द्र तुम सुनो, अभिषेक के लिए ७३ प्रकार के नाडियों के संचार अवस्था को संक्षेप में मैं तुम्हें बता रहा हूँ॥

शृणु सुचन्द्रेत्याद्युद्देशसमाप्तिं यावद् भगवतः प्रतिवचनम्। सेकार्थम् इति सेकं तत्प्रयोजनं च। परम् इति परमाक्षरम्। परमार्थसुखोपाय-त्वादनधीष्टमपि नाडीसंचारादिकमाह– नाडीसंचारम् इत्यादि। ऊर्ध्वाधो ललनादिषण्णाडीषु वक्ष्यमाणक्रमेण प्राणापानवाय्वोः संक्रमणम्। आयाम इति। यम उपरम इत्यस्य धातोर् आ समन्ताद्यमनमायामः। प्राणापान-वाय्वोर्मध्यनाड्यां प्रवेश उभयगतिनिरोधादिति। उद्देशाद् इति संक्षेपादिति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हे सुचन्द्र तुम सुनो यहाँ उद्देश से लेकर समाप्ति तक भगवान् का उत्तर है। सेकार्थ का अर्थ है अभिषेक और उसका प्रयोजन बताया गया है। **परं** यह परमाक्षर के लिए है। परमार्थ सुख के उपयात्मक अवर्णित होने से नाडी संचार आदि के लिए कहा नाडीसंचारम् आदि। ऊपर के ओर निम्न स्थानों के ललना आदि ६ नाडी वर्गों में वर्णित किए जाने वाले क्रम से प्राण और अपान आदि वायुओं का संक्रमण ही नाडी संचार है। आमाम का अर्थ है यम उपरम इस धातु से चारों ओर से अनुशासित करना ही आयाम है। प्राण और अपान वायुओं का मध्यनाडी में प्रवेश कराना है जो दोनों गतियों के निरोध मात्र से संभव है। उद्देश का अर्थ संक्षेप है।

उद्देशस्त्रिविधिस्तन्त्रे निर्देशस्त्रिविधो भवेत्।
प्रत्युद्देशो महोद्देशः प्रतिनिर्देशको ऽपरः॥ ५॥

उद्देश और निर्देश तन्त्रशास्त्र में तीन-तीन प्रकार के हैं। प्रत्युद्देश, महोद्देश और प्रतिनिर्देश हैं॥

उद्देश एव निर्देशस्तन्त्रसंगीतिरुच्यते।
प्रत्युद्देशश्च निर्देशः पञ्जिका पदभञ्जिका॥ ६॥

उद्देश में ही निर्देश, समाविष्ट होता है वही संगीति कहा गया है। प्रत्युद्देश ही निर्देश भी है जिसे पञ्जिका कहा गया है जो पदों के भञ्जक या अर्थ बोधक होते हैं ॥

महोद्देशश्च निर्देशष्टीका सर्वार्थसूचिका।
अभिज्ञालाभिभिः सा तु कर्तव्या नैव पण्डितैः॥ ७॥

महोद्देश निर्देशात्मक टीका को कहा गया है जो समग्र अर्थ की सूचिका होती है। उसे अर्थ बोध के लिए पाठक ग्रहण या धारण करते हैं पण्डितों के लिए आवश्यक नहीं है॥

सर्वस्मिन्नेव योगयोगिन्यादितन्त्र उद्देशस्त्रिविधः निर्देशो ऽपि। तत्रोद्देशः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वनाम्नैव कथितः। प्रत्युद्देशो द्वितीयः महोद्देशस्तृतीयः। एवं निर्देशो ऽपि स्वनाम्नैव व्याख्यातः। प्रतिनिर्देशो द्वितीयः। अपर इति महानिर्देशस्तृतीयः। उद्देशनिर्देशौ द्वावेव तन्त्रसङ्गीतिः। तत्रोद्देशेन सङ्गीतिः समस्तलघुतन्त्रं यथाष्टादशशतग्रन्थश्रीसमाजादिका, निर्देशेन सङ्गीतिः सकलमूलतन्त्रराज-देशना यथा पञ्चविंशतिसहस्त्रश्रीसमाजादिका। एवं प्रत्युद्देशेन लघुतन्त्रे पञ्जिका। इह निर्देशः प्रतिनिर्देशो ऽभिमतः। तेन मूलतन्त्रे पञ्जिका। तथा महोद्देशेन लघुतन्त्रे टीका। इह निर्देशो महानिर्देशो ऽभिमतः। महानिर्देशेन मूलतन्त्रे टीका। सा पुनः सङ्गीतिः पञ्जिका टीका च तिस्त्रो ऽपि। अभिज्ञा-लाभिभिर इति। दिव्यचक्षुर्दिव्यश्रोत्रपरचित्तज्ञानस्वपरपूर्वनिवासानुस्मृत्या-काशगमनर्द्धिलब्धैरेव कर्तव्या नैव पण्डितैर् इति शुष्कतर्काभ्यासो-पहतचित्तसन्ततिभिः प्रत्यात्मवेदनीयाध्यात्माध्ययन-विमुखैः।

सभी योग एवं योगिनी आदि तन्त्रों में उद्देश तीन प्रकार के कहे गए हैं। निर्देश भी तीन ही हैं। उद्देश स्वयं ही उपर श्लोकों में वर्णित हुए हैं। प्रत्युद्देश दूसरा है। महोद्देश तीसरा है। इसी प्रकार निर्देश भी स्वयं उपर बताया गया है। प्रतिनिर्देश दूसरा है। अपर का अर्थ है तीसरा महानिर्देश। उद्देश और निर्देश दोनों ही तन्त्र संगीति हैं। उद्देश के द्वारा जो संगीति हुई है उसमें समस्त लघुतन्त्र समाविष्ट हैं। वे १८०० ग्रन्थ हैं जैसे कि श्री समाज आदि। निर्देश संगीति से समस्त मूलतन्त्रराजों की देशना हुए है जैसे २५०० श्री समाज आदि। इस प्रकार प्रत्युद्देश के द्वारा लघुतन्त्रों में पञ्जिका की रचना की गई है। यहाँ पर निर्देश एवं प्रतिनिर्देश दोनों भी अभीष्ट हैं - स्वीकृत हैं। अतएव मूलतन्त्रों में पञ्जिका है। तथा महोद्देश के द्वारा लघुतन्त्रों में टीका लिखी गई है। यहाँ पर निर्देश शब्द से महानिर्देश का बोध करना चाहिए। महानिर्देश से मूलतन्त्र में टीका कहा गया है। वह फिर संगीति ही है। पञ्जिका टीका भी तीन हैं। **अभिज्ञा** लाभियों के द्वारा इस वाक्य से दिव्य चक्षु, दिव्य श्रोत्र, परचित्तज्ञान, स्वपर-पूर्वनिवास, अनुस्मृति, आकाशगमन आदि ऋद्धि प्रास सिद्धों के द्वारा ही करना चाहिए यह कहा गया है। पण्डितों को नहीं करना चाहिए इसका अर्थ है- शुष्क तर्क एवं उनके अभ्यास के द्वारा जिनके चित्तसन्तति निरस हुई है और चित्तों के द्वारा ज्ञातव्य अध्यात्म ध्यान रहित पण्डितों के लिए यह नहीं है ऐसा कहा गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवं षट्कोटिभिः शुद्धं वज्रयोगैश्चतुर्विधैः।
चतुःसम्बोधिभिः स्कन्धधात्वायतनषट्कुलैः॥ ८॥
पटलैः पञ्चभिः शुद्धं लोकधात्वादिकैर्मतैः।
सत्याभ्यामादिबुद्धं स्यात् कालचक्राभिधानकम्॥ ९॥

इस प्रकार ६ प्रकार के उद्देशों के द्वारा शुद्ध, चार वज्रयोगों से भी शुद्ध साथ ही चार सम्बोधियों से भी शुद्ध तथा स्कन्ध धातु आयतन आदि षट् कुलों से युक्त, पाँच पटलों से सुशोभित लोकधातुओं से तथा लौकिक एवं लोकोत्तर सत्यों से पूर्ण आदि बुद्ध नामक कालचक्र तन्त्र का उपदेश करता हूँ॥

एवम् इत्युक्तक्रमेण षट्कोटिभिः षड्विधैरुद्देशादिभिः शुद्धं परिशुद्धमिदम् आदिबुद्धतन्त्रं कालचक्राभिधानकं स्याद् इति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः। एवं वज्रयोगैश्चतुर्विधैः। शुद्धम् इति सर्वत्र सम्बध्यते। विशुद्ध-धर्ममन्त्रसंस्थानात्मकैर् वज्रयोगैः शून्यतानिमित्ताप्रणिहितानभिसंस्कार-विमोक्षण करुणामैत्रीमुदितोपेक्षाब्रह्मविहारैः सह क्रमात् समरसीभावरूपैर् दुर्वाररागमलावलिप्तोभयेन्द्रियात्मकतुर्यातमोऽभिभूतसुषुप्तप्राणोत्पादित-सदसत्स्वप्नानेकविकल्पभावसंज्ञात्मकजाग्रदवस्थाध्वंसकैः सहजधर्म-सम्भोगनिर्माणकायरूपैः।

इस प्रकार के क्रम द्वारा ६ प्रकार के उद्देश आदि से परिशुद्ध आदि बुद्धतन्त्र जो कालचक्र के नाम से प्रसिद्ध है ऐसा आगे वर्णन किये जाने वाले से सम्बद्ध जानना चाहिए। इसी प्रकार चार वज्र योगों द्वारा भी अतिशुद्ध है ऐसा जानना चाहिए। वज्रयोग से तात्पर्य है विशुद्ध-धर्म, मन्त्र संस्थानात्मक जो शून्यता के लिए अप्रणिहित असंस्कृत विमोक्ष के साधनभूत मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा रूप चार ब्रह्मविहारों से क्रमशः एकीभाव होकर अति कठिन मलों से लिप्त हुए उभय इन्द्रियरूप नीच अन्धकारों से ढके हुए एवं सुषुप्त हुए प्राणों वाले तथा सत् एवं असत् स्वप्नरूप अनेक विकल्प रूप संज्ञाओं से अभिभूत जाग्रत अवस्था के नाशक सहज स्वरूपयुक्त धर्मकाय, सम्भोगकाय तथा निर्माण कायरूपों के धारक चार वज्रयोगों से जो जगत् का कल्याण करते हैं– यही अर्थ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तत्र स्वभावाभावतः शून्यम्। तस्य शून्यस्य भावः शून्यता। इहातीतानागतं ज्ञेयं शून्यम्। तस्य दर्शनं भावः शून्यता गम्भीरोदारा। अतीतानागताभावाद् गम्भीरा। अतीतानागतदर्शनादुदारा। तयोपलक्षितं तद्ग्राहकं वा ज्ञानं शून्यताविमोक्षः। तेन विशुद्धं तुर्यावस्थाक्षयादक्षरं महासुखम्। कं सुखं तद्रुणद्धीति करुणालक्षणं ज्ञानवज्रम्। स एव सहजकायः प्रज्ञोपायात्मको विशुद्धो योग इत्युच्यते।

यहाँ स्वभाव और अभाव दोनों से शून्य है। उसी का भावरूप शून्यता है। यहाँ अतीत अनागत दोनों शून्य हैं। उसका दर्शन और भाव भी शून्यता है जो गंभीर और उदार है। अतीत और अनागत न होने से गंभीर है। अतीत और अनागतों के दर्शन के कारण उदार है। उससे उपलक्षित या उस का ग्राहक ज्ञान ही शून्यता विमोक्षक है। उससे विशुद्ध तुरीय अवस्था के अक्षय होने से अक्षर है वही महासुख भी है। क सुख है उसे रुन्धन करने से वह करुणा लक्षणात्मक ज्ञानवज्र है। वही सहज काय है, जो प्रज्ञोपायरूप विशुद्ध योग कहा जाता है।

निमित्तं बुद्धे बोधिरित्यादिविकल्पचित्तहेतुः। शून्यत्वादेव हेत्वभावः। ततो न विद्यते निमित्तं यस्य तदनिमित्तं ज्ञानमनिमित्तविमोक्षः। तेन विशुद्धं सुषुप्तक्षयान्नित्यानित्यादिद्वयरहितं मैत्र्यात्मकं कायद्वयस्फरणैर्जगदर्थकारि निर्विकल्पात्मकं चित्तं चित्तवज्रम्। स एव धर्मकायः प्रज्ञोपायात्मको धर्मात्मा योग इत्युच्यते।

उसमें निमित्त बुद्ध हैं बोधि आदि विकल्पात्मक चित्त के हेतु हैं। शून्यता के कारण हेतु का अभाव है। जिसे कोई निमित्त नहीं बनता इसी से वह ज्ञान अनिमित्त तथा विमोक्षात्मक है। इसी कारण विशुद्ध, सुषुप्तक्षय होने से नित्य और अनित्य आदि द्वयरहित मैत्रीरूप कायद्वय स्फरण से जगत् अर्थकारक निर्विकल्पात्मक चित्त ही चित्तवज्र है। वही धर्मकाय है प्रज्ञोपायात्मक धर्मात्मा योग ऐसा कहा गया है।

अनिमित्तादेव तर्काभावः। अतर्कादप्रणिहितम्। प्रणिधानं सम्बुद्धोऽहं भवामीत्यादिकं न विद्यते यस्य तदप्रणिहितविमोक्षः। तेन विशुद्धः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वप्नक्षयादक्षयो ऽनाहतो ध्वनिः सर्वसत्त्वरुतात्मको मन्त्रो मुदितालक्षणः सर्वसत्त्वरुतैः सर्वसत्त्वानां मोदनात्। मनसस्त्राणभूतत्वाच्च मन्त्रो वाग्वज्रम्। स एव सम्भोगकायः प्रज्ञोपायात्मको मन्त्रयोग इत्युच्यते।

निमित्तों के न होने से तर्काभाव है। अतर्क से अप्रणिहित है। प्रणिधान का अर्थ है मैं सम्बुद्ध हो जाऊँ। जिसे ऐसी भावना न होने से वही अप्रणिहित विमोक्ष है। उससे शुद्ध, स्वप्नों के क्षय होने से अक्षय-अनाहत ध्वनि ऊँकारात्मक सर्व प्राणियों के उच्चारणात्मक मन्त्र मुदिता लक्षण है क्योंकि सभी सत्त्वों के द्वारा उच्चरित होने से सभी प्राणियों के मोद-आनन्द के लिए हुआ है। मन के रक्षक होने से भी वह मन्त्र वाग्वज्र कहलाता है। वही सम्भोग काय है और प्रज्ञोपायात्मक मन्त्रयोग ऐसा कहा गया है।

प्रणिधानाभावान्न विद्यते ऽभिसंस्कारः सितरक्तप्राणायामविज्ञान-लक्षणो यस्यासावनभिसंस्कारविमोक्षः। तेन विशुद्धो जाग्रद-वस्थाक्षयात् स्फारितानन्तानन्तनिर्माणकायैः क्लेशप्रतिपक्षमार्गोपनायको रौद्रसराग-शान्तादिरूपैरसङ्कीर्ण उपेक्षात्मकः कायवज्रः। स एव निर्माणकायः प्रज्ञोपायात्मकः संस्थानयोग इति।

प्रणिधान के अभाव से उसमें अभिसंस्कार नहीं है। जिसमें सफेद, लाल आदि प्राणायाम विज्ञान लक्षण जिसके हैं उसे ही अनभिसंस्कार विमोक्ष कहा गया है। उससे विशुद्ध हुआ और जाग्रद् अवस्था के क्षय होने से अनन्त-अनन्त निर्माण कायों के प्रकाश या उद्‌भव होने से क्लेश के विनाशक मार्ग के उद्‌घोषण रौद्र राग से युक्त शान्त आदि स्वरूपों से सङ्कीर्ण उपेक्षात्मक कायवज्र है। वही निर्माण काय है तथा प्रज्ञोपायात्मक संस्थान योग भी कहा गया है।

तदुक्तं विमलप्रभायां प्रथमश्लोकव्याख्याने– स एव सहजकायः शून्यताविमोक्षविशुद्धो ज्ञानवज्रः सर्वज्ञः प्रज्ञोपायात्मको विशुद्धयोग इति। स एव धर्मकायो ऽनिमित्तविमोक्षविशुद्धं चित्तवज्रं ज्ञानकायः प्रज्ञोपायात्मको धर्मात्मा योग इत्युक्तः। स एव सम्भोगकायो ऽप्रणिहितविमोक्षविशुद्धं वाग्वज्रं दिनकरवपुः प्रज्ञोपायात्मको मन्त्रयोग इत्युक्तः। स एव निर्माण-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कायोऽनभिसंस्कारविमोक्षविशुद्धं कायवज्रं पद्मपत्रायताक्षः प्रज्ञोपायात्मकः संस्थानयोग इत्युक्त इति।

इसे ही विमल प्रभा में, प्रथम श्लोक के व्याख्यान क्रम में कहा है- वही सहजकाय है वही शून्यता विमोक्ष विशुद्ध, ज्ञानवज्र, सर्वज्ञ, प्रज्ञोपायात्मक विशुद्ध योग भी है। वही धर्मकाय, अनिमित्त, विमोक्ष विशुद्ध चित्तवज्र, ज्ञानकाय प्रज्ञोपायात्मक धर्मात्मा योग यह कहा गया है। वही सम्भोगकाय - अप्रणिहित विमोक्ष विशुद्ध, वाग्वज्र, दिनकर = सूर्य सदृश शरीरधारक प्रज्ञोपायात्मक मन्त्रयोग ऐसा कहा गया है। वही निर्माणकाय, अनभिसंस्कार, विमोक्ष, विशुद्ध, कायवज्र, पद्मपत्रायताक्ष, प्रज्ञोपायात्मक है संस्थान योग द्वारा ऐसा कहा गया है।

चतुःसम्बोधिभिर् इति। एकक्षणपञ्चाकारविंशत्याकारमायाजालाभिसम्बोधिलक्षणैः। तत्र गर्भजोत्पत्तिक्रमेण मातापित्रोरुभयबिन्दुसमरसीभूतस्य मातृगुह्यचक्र उत्पित्सोरालयविज्ञानस्य यैकक्षणं केवलसुखसंवित्तिः कायश्च रोहितमत्स्यवदेकाकारः सैकक्षणाभिसम्बोधिः। यदा तु तस्य गर्भगतस्यैव रूपादिवासनात्मकपञ्चज्ञानसंवित्तिः कूर्मवद्विनिर्गतपञ्चस्फोटकाकारस् तदा पञ्चाकाराभिसम्बोधिः। ततः प्रतिस्वं पञ्चज्ञानानां यदा पृथिव्यादिचतुर्धातुवासनाभेदः कायोऽपि विंशत्यङ्गुलीपरिपूर्णः, तदा विंशत्याकाराभिसम्बोधिः। ततो गर्भाद्विनिर्गतो मायाजालवदनन्तभावसंवित्तिर्मायाजालाभिसम्बोधिः।

चार सम्बोधियों के द्वारा का अर्थ है - एक क्षण-पञ्चाकार विंशति आकारात्मक मायाजाल सम्बोधि लक्षणों के द्वारा। उसमें गर्भ से ही उत्पन्न होने के क्रम से माता पिता के बीजों के समरस होकर माता के गुह्य चक्र में रहने के इच्छा रूप आलय विज्ञान का जो एक क्षण है केवल सुख का अनुभव है, वही काय है। रोहित मत्स्य के सदृश आकृति वाला वह एक क्षणात्मक सम्बोधि है। जब वह उस गर्भ में है उसके रूप आदि वासनात्मक पञ्च ज्ञान बोध होता हुआ कछुवे के तरह निकले हुए पाँच स्फोट के आकार (शब्द उच्चारण) रूप है वही पञ्चाकार अभिसम्बोधि कहलाता है। उससे प्रत्येक स्वर के साथ पाँच ज्ञानों के पृथिवी आदि चतुर्धातु वासना भेद रूप काय भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२० अंगुलियों से परिपूर्ण या परिमाणात्मक होता है तब वह विंशति आकारात्मक सम्बोधि कहलाता है। उस समय, गर्भ से निकला हुआ मायाजाल के तरह अनन्त भावों के ज्ञान से मायाजाल सम्बोधि कहा जाता है।

एतद्वैधर्म्येण शुद्धज्ञानविज्ञानात्मको ऽच्युतो बिन्दुः स्वाभाविक-कायो ज्ञानवज्रयोगो वज्रसत्त्वः सर्वार्थदर्श्येकक्षणाभिसम्बुद्धत्वात्। एकक्षणाभिसम्बोधिः। इह षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासपरिपूरि-लक्षणा श्वासचक्रक्षयात्। मूलतन्त्रे ऽपि–

जन्मस्थानं जिनेन्द्राणामेकस्मिन्समयेऽक्षरे।
महाप्राणे स्थिते चित्ते प्राणवाते क्षयङ्गते॥
दिव्येन्द्रिये समुद्भूते नष्टे मांसेन्द्रिये गणे।
प्राकृतायतने नष्टे दिव्यायतनदर्शने॥
सर्वं पश्यामि राजेन्द्र अदृष्टं नास्ति मे सदा॥ इति

इससे उल्टा करने पर शुद्ध ज्ञान विज्ञानात्मक अच्युत बिन्दु स्वाभाविक काय ही ज्ञानवज्रयोग वज्रसत्त्व सर्वार्थदर्शी है एक क्षण में ही अभिसम्बुद्ध हाने से। एक क्षण का अभिसम्बोधि है क्योंकि यहाँ पर २१ हजार ६०० श्वासों के परिपूर्ण होने से तथा श्वासचक्रों के क्षय होने से। मूलतन्त्र में भी कहा गया है–

एक सिद्धान्त में, जो अक्षरात्मक है, महाप्राण में चित्त अवस्थित होने से, प्राणवायु क्षय (रुद्ध) होने से, दिव्य इन्द्रिय प्रकट होने पर, मांसेन्द्रिय निरुद्ध होने पर, प्राकृत शरीर शान्त होने पर, दिव्य दृष्टि प्राप्त होने पर भगवान् का जन्मस्थान या बुद्धत्व प्रकट होता है, उसमें हे राजन् सब कुछ, देखता हूँ, मेरे लिए कुछ भी अदृश्य नहीं है – इस प्रकार का बोध होता है। इति।

स एव धर्मकायश्चित्तवज्रयोगो महासत्त्वः परमाक्षरसुखः पञ्चा-काराभिसम्बुद्धत्वात्। पञ्चाकाराभिसम्बोधिः। इहादर्शादिपञ्चज्ञानलक्षणा पृथिव्यादिधातुरूपादिपञ्चस्कन्धप्रज्ञोपायात्मकपञ्चमण्डलनिरोधस्वभावत्वात्। स एव सम्भोगकायो वाग्वज्रयोगो बोधिसत्त्वो द्वादशाकारसत्यार्थो बोधिसत्त्वानुग्राहकः सर्वसत्त्वरुतैर्धर्मदेशको विंशत्याकाराभिसम्बुद्धत्वात्। विंशत्याकाराभिसम्बोधिः। इह पञ्चेन्द्रियपञ्चविषयपञ्चकर्मेन्द्रियपञ्च-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर्मेन्द्रियक्रियानिरावरणलक्षणा द्वादशसंक्रान्तिनिरोधसद्भावाद्विज्ञेया। स एव निर्माणकायः कायवज्रयोगः समयसत्त्वः षोडशाकारतत्त्वविद् देवाद्यनुग्राहको ऽनन्तमायाजालैः स्फारितकायो मायाजालाभिसम्बुद्धत्वात्। मायाजालाभिसम्बोधिः। इह युगपदनन्तापर्यन्तनानामायानिर्माणलक्षणा षोडशकायानन्दादिबिन्दुनिरोधाद्विज्ञातव्येति। उत्पन्नक्रमेण तु धूमादिदशनिमित्तानां मृदुमध्याधिमात्राधिमात्राधिमात्रभेदेन चतस्त्रः प्रतिपत्तयः।

पञ्चकारात्मक अभि सम्बोधि के कारण वही धर्मकाय, चित्तवज्रयोग, महासत्त्व, परमाक्षर सुख है। पञ्चकाराभिसम्बोधि से यहाँ तात्पर्य है आदर्श आदि पञ्च ज्ञान लक्षणात्मक, पृथिवी आदि धातुरूप आदि पञ्चस्कन्धात्मक प्रज्ञोपायभूत पञ्चमण्डल निरोध स्वभाव वाले होने से। वही संभोगकाय है, वाग्वज्र योग है, बोधिसत्त्व है, द्वादशाकार सत्यार्थ है, बोधिसत्त्वानुग्राहक, सभी प्राणियों से उच्चरित धर्म का उपदेशक है जो विंशति-आकार से सम्बुद्ध हुआ है। विंशति आकार से सम्बुद्ध का तात्पर्य है - पञ्च इन्द्रिय, पञ्च विषय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय क्रिया निरावरण लक्षणात्मक द्वादश सङ्क्रान्ति के निरोध के होने से जानना चाहिए। वही निर्माणकाय कायवज्रयोग, समय सत्त्व, षोडशाकार तत्त्वविद्, देवादि अनुग्राहक अनन्त माया जालों से प्रकाशित शरीर वाला है क्योंकि मायाजालों से अभिसम्बुद्ध है। मायाजालाभिसम्बोधि का तात्पर्य है एक साथ अनन्त और असीम माया निर्मित अनेक लक्षणात्मक १६ कायानन्द बिन्दु निरोधों से यह ज्ञातव्य है। उत्पन्न क्रम से धूम आदि दश निमित्तों का मृदु, मध्य, अधिमात्रा, अधिमात्राधिमात्र भेदों से चार ज्ञान होते हैं।

स्कन्धै रूपसंज्ञावेदनासंस्कारविज्ञानज्ञानलक्षणैः। धातुभिः पृथिवीतोयतेजोवाय्वाकाशज्ञानैः। आयतनैः कायजिह्वाचक्षुर्घ्राणश्रोत्रमनोगन्धरूपरसस्पर्शशब्दधर्मधातुभिः। बहुवचनात् पायुपादपाणिवागुपस्थशङ्खिनीविडुत्सर्गगत्यादानालापमूत्रस्त्रावशुक्रच्युतिभिः। एतैर्वैरोचनादिविशुद्धैः प्रत्येकं षट्कुलैः। लोकधात्वध्यात्माभिषेकसाधनाज्ञानाख्यैः पञ्चपटलैर् भाजनलोकसत्त्वलोकसत्त्वशोधनलौकिकसिद्धिसाधनपरमाक्षरज्ञानार्थप्रकाशकैः। सत्याभ्यां लौकिकलोकोत्तराभ्याम्। आदिशब्दो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऽनादिनिधनार्थः। अविपरीतान् सर्वधर्मान् बुद्धवानिति बुद्धः। आदिश्चासौ बुद्धश्चादिबुद्धः। उत्पादव्ययरहितः सर्वज्ञ इत्यर्थः। नामसङ्गीतौ च–

स्कन्ध का अर्थ – रूप, संज्ञा, वेदना, संस्कार, विज्ञान स्कन्धों के द्वारा है। धातु से – पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश धातुओं से है। आयतन – काय, जिह्वा, चक्षु, घ्राण, श्रोत्र, मनस्, गन्ध, रूप, रस, स्पर्श, शब्द, धर्मधातुओं से है। बहुवचन से अन्य, लिङ्ग, योनि, पैर, हाथ, वचन, गुदद्वार और इनके अपने अपने कर्मो का संकेत किया गया है। यह सब वैरोचन आदि विशुद्ध षट् कुल क्रम से है। पटलों का अर्थ है - लोकधातु - आध्यात्मिक - अभिषेक – साधन – ज्ञान नाम वाले पटलों से है। तथा भाजन–सत्त्व, लोकसत्त्व, शोधन, लौकिक सिद्धि, साधन, परमाक्षर ज्ञानों के अर्थ प्रकाशक कहे गए हैं। दो सत्यों से लौकिक एवं लोकोत्तर सत्यों से है। आदि शब्द अनादि अर्थ के लिए है। सभी धर्मों के यथार्थ स्वरूप को जानने से वे बुद्ध हैं। आदि होने से आदि बुद्ध हैं। जन्म मृत्यु रहित होने से सर्वज्ञ हैं। नाम संगीति में भी कहा गया है–

अनादिनिधनो बुद्ध आदिबुद्धो निरन्वयः॥ इति ।

अनादिनिधन–जन्म–मृत्युरहित बुद्ध ही आदि बुद्ध हैं जो अन्वय–वंश रहित हैं।

करुणा शून्यतामूर्तिः कालः संवृतिरूपिणी।
शून्यता चक्रमित्युक्तं कालचक्रो ऽद्वयो ऽक्षरः॥
एकैकाक्षरसंज्ञया वा।

करुणा शून्यतामूर्ति है, वह मूर्ति काल रूप है वही संवृत्ति–सत्य भी है। शून्यता को ही चक्र कहा गया है। और वह कालचक्र अद्वयरूप तथा अक्षर तत्त्व है। अथवा एक एक अक्षर संज्ञा से भी यही है –

काकारात् कारणे शान्ते लकाराच्च लयो ऽत्र वै।
चकाराच्चलचित्तस्य क्रकारात् क्रमबन्धनैः॥

अस्यायमर्थः। कारणं बोधिचित्तकाय इत्युक्तं शान्तं जाग्रदवस्था–क्षयेण विकल्परहितं कायबिन्दुनिरोधाल्ललाटे निर्माणकायः। एवं सति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वप्नावस्थाक्षयात्मकः प्राणस्य लयो वाग्बिन्दुनिरोधात् कण्ठे सम्भोगकायः। जाग्रत्स्वप्नावस्थायां शब्दादिविषयान् विचरच्चलं च्युतिधर्मकं तमोऽभिभूतं चित्तमष्टादशधातुविकारापन्नम्। तस्य बन्धस्तमोऽपगमः सुषुप्तक्षयश्चित्त-बिन्दुनिरोधाद्धृदये धर्मकायः। कुत एतदाह– क्रकारादिति। क्रमः कायादि-बिन्दूनां च्यवनम्। तस्य बन्धः सहजसुखेन तुर्यावस्थाक्षयः। क्षयगतज्ञान-बिन्दुनिरोधान्नाभौ सहजकाय इति चतुःकायात्मकः। स एव कालचक्रो भगवान् प्रज्ञोपायात्मको ज्ञानज्ञेयसम्बन्धेनोक्तः। यथाक्षरसुखज्ञानम् सर्वावरणक्षयहेतुभूतं काल इत्युक्तम्। उपायः करुणात्मकः षडभिज्ञात्मा। ज्ञेयाकारं जगच्चक्रं ज्ञेयं त्रैधातुकमनन्तभावलक्षणं चक्रम्। तदेव प्रज्ञा शून्यतात्मिका सर्वाकारात्मिका। अनयोरेकत्वं कालचक्रम् इत्युक्तम्। श्रीकालचक्रेऽपि–

क कार का अर्थ कारण के शान्त होने पर, **ल** कार से लय का बोध होता है, **च** कार से चञ्चल चित्त का **क्र** कार से क्रमपूर्वक निरोध का बोध होता है। इसका यह अर्थ है–

कारण से तात्पर्य है– बोधिचित्तकाय ऐसा कहा है, शान्त जाग्रत अवस्था के क्षय होने से विकल्परहित काय बिन्दु निरोध से ललाट में निर्माणकाय स्थित है। ऐसा होने पर स्वप्नावस्था के क्षय होने से प्राण का लय, वाग्बिन्दु के निरोध से कण्ठ में संभोग काय का स्थान है। जाग्रत् एवं स्वप्नावस्था में शब्द आदि विषयों के विचरण होने से चलनात्मक च्युतिधर्मयुक्त, तम से ढके हुए, अष्टादश धातुओं के विकार से युक्त चित्त है। उसके बन्धन ही तमस् का निराकरणात्क सुषुप्तिके क्षय होने से बिन्दु निरोध द्वारा हृदय में धर्मकाय का स्थान है। यह कहाँ से कैसे कहा गया है? **क्र** कार से। **क्रम** का अर्थ है काय आदि बिन्दुओं का क्षरण है। उसका बन्ध सहज सुखों से तुर्यावस्था का क्षय होना है। क्षरण होने से ज्ञान बिन्दु का निरोध होता है। अतएव नाभि में सहज काय का स्थान है, इस प्रकार चार कायात्मक कहा गया है। वही कालचक्र भगवान् प्रज्ञोपायात्मक ज्ञान ज्ञेय सम्बन्ध में कहा गया है। जैसा कि अक्षर सुख ज्ञान, सर्वावरणक्षय हेतु भूतकाल है ऐसा कहा गया। उपाय करुणात्मक है जो षड् अभिज्ञारूप है। ज्ञेयाकार - जगत् चक्र है, वही ज्ञेय है, त्रैधातुक अनन्त भाव लक्षणचक्र है। वही प्रज्ञा शून्यतारूप है तथा सर्वाकारात्मक भी है। इन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दोनों की एकरूपता ही कालचक्र कहा गया है। इसी बात को श्रीकालचक्र में भी कहा है–

बुद्धक्षेत्राण्यनन्तान्यपरिमितगुणा धातवश्चाम्बराद्याः
स्थित्युत्पत्ती विनाशस्त्रिविध इह भवः षड्गतौ सर्वसत्त्वाः।
बुद्धाः क्रोधाः सुराद्याः सकरुणहृदया बोधिसत्त्वाः सभार्या
एतच्चक्रं जिनस्य त्रिभुवननमितस्यैवक्रमेकस्य शम्भोः॥ इति॥

बुद्ध क्षेत्र अनन्त हैं अपरिमित गुणों से युक्त आकाश आदि धातु भी हैं। स्थिति और उत्पत्ति तथा लय भी इस संसार का तीन प्रकार से प्रसिद्ध है। ६ गतियाँ हैं– उन्हीं में सारे प्राणी अवस्थित हैं। बुद्ध, क्रोध आदि देवता जो करुणा से आप्लावित हैं तथा बोधिसत्त्व भी अपनी अपनी शक्तियों से संयुक्त ही हैं। यही भगवान् जिन, जो सुखकारक हैं, एक हैं, जिन्हें तीनों लोकों के प्राणी नमस्कार करते हैं, उन्हीं का यह चक्र - कालचक्र है।

इति श्रीनारोपापादविरचितायां कालचक्रतन्त्रस्य
सेकोद्देशटीकायामुपक्रमप्रकरणं समाप्तम्।

उपक्रम प्रकरण पूरा हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ द्वितीयं दीक्षाप्रकरणम्

दीक्षा प्रकरण

आदौ सप्ताभिषेको यो बालानामवतारणम्।
त्रिविधो लोकसंवृत्या चतुर्थः परमार्थतः॥ १॥
सत्यद्वयेन धर्माणां देशना वज्रिणो मम।
लोकसंवृतिसत्येन सत्येन परमार्थतः॥ २॥

सामान्य जनों के अवबोध के लिए सर्वप्रथम सप्ताभिषेक की व्याख्या करते हैं। वह अभिषेक लोकसंवृति से तीन प्रकार का है चौथा परमार्थसंवृति से उपदिष्ट है। दोनों संवृतियों से अर्थात् लोक और परमार्थ से बुद्ध ने धर्मों की देशना की है। लौकिक विषय लोकसंवृति से तथा अलौकिक विषय परमार्थ सत्य से अभिव्यक्त हुए हैं॥

आदावित्यादि श्लोकद्वयं स्पष्टम्।
इदानीं सप्तसेकानुद्दिशत्युदकम् इत्यादिना–

वे दोनों ही श्लोक स्पष्ट हैं। अब सप्त अभिषेकों के व्याख्या के लिए निम्न श्लोकों को अवतरित कर रहे हैं–

उदकं मुकुटः पट्टो वज्रघण्टा महाव्रतम्।
नामानुज्ञासमायुक्तः सेकः सप्तविधो नृप॥ ३॥

जल, मुकुट, वस्त्र, वज्रघण्टा, महाव्रत, नाम और अनुज्ञा वे ही सप्त सेक कहे गए हैं॥

कायवाक्चित्तसंशुद्धिरभिषेकद्वयं द्वयम्।
अनुज्ञा ज्ञानशुद्धिः स्याद्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काय वाक् और चित्तों की विशुद्धि ही दो अभिषेक कहे गए हैं। अनुज्ञा ही ज्ञान शुद्धि है। (धातु आदि की शुद्धि द्वारा अन्यों की सिद्धि कही गई हैं)॥

इहाश्रुततन्त्रत्वादव्युत्पन्नधियामादिकर्मिकाणां व्युत्पादनाय श्रीतन्त्राद्विमलप्रभायाश्च सप्तसेकादिविधानं किञ्चिदवतार्यते।

यहाँ तन्त्रों के ज्ञान से रहित सामान्य बुद्धियुक्त साधकों के ज्ञान के लिए श्रीतन्त्र और श्रीकालचक्रतन्त्रान्तर्गत विमलप्रभाटीका आदि से सप्तविध अभिषेकों का वर्णन किया जाता है।

तत्र तावत् प्रथमं शिष्यरक्षाविधिरुच्यते –

सर्व प्रथम शिष्यों की रक्षाविधि का अवतरण करते हैं –

कृत्वा शिष्यस्य रक्षां शिरसि हृदि तथोष्णीषनाभौ च कण्ठे
श्रीगुह्याब्जे जिनाद्यैरुभयकुलगतैः कायवाक्चित्तभिन्नैः।
एवं लेपादिकानां प्रकटितनियतैः श्रीस्वरैः पुस्तकानां
सत्त्वानां मोक्षहेतोरमुकमपि विभोर्मण्डलं वर्तयामि॥

शिष्यों के शिर, हृदय, सहस्रार, कण्ठ, मूलाधार आदि स्थलों में रक्षा करने के बाद वह भी दोनों कुलों में संयुक्त जो काय, वाक् और चित्तों से अभिन्न तत्त्वों के द्वारा, इसी प्रकार लेप आदि कृत्यों का जो, आशयों को प्रकट कर चुके हैं जिन्हें कालचक्र के पुस्तक और दीक्षाविधि के प्रति श्रद्धा है, उन्हें मुक्ति के लिए विशिष्ट मण्डल की व्याख्या करता हूँ।

इह प्रथमं शिष्यादे रक्षां कृत्वा पश्चात् संग्रहेच्छिष्यादिकम्। अत्र जिनाद्यैर्देवतीभिरुभयकुलगतै रक्षां शिरसि ऊकारं हृदय ईकारमुष्णीष आकारं नाभौ लृकारं कण्ठे ऋकारं गुह्ये आःकारमिति। उभयकुलगतैः कायवाक्चित्तभिन्नैरिति। एवं लेपादिकानां प्रकटितनियतैः श्रीस्वरैरिति अ इ ऋ उ लृ इति पुस्तकानां रक्षां कृत्वा ततो बुद्धानध्येषयेत्। सत्त्वानां मोक्षहेतोरमुकमपि कालचक्रभगवतो मण्डलं लेखयामि। तस्माद् बुद्धबोधिसत्त्वा अधिष्ठानं शिष्यादीनां कुर्वन्तु इत्यध्येषणानियमो रक्षानियमः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यहाँ सर्वप्रथम शिष्यों की रक्षा करने के बाद शिष्य आदि का संग्रह करना चाहिए। यहाँ जिन और देवती आदि दोनों कुलों में अवस्थित तथागतों से रक्षा करने का तात्पर्य है – शिर में ऊँ कार, हृदय में **ई** कार उष्णीष में **आ** कार नाभि में **लृ**कार, कण्ठ में **ऋ** कार, गुह्य में **आः** कारों की स्थापना करनी चाहिए। उभय कुलों में स्थित का अर्थ काय वाक् और चित्तों में स्थित है। इस प्रकार लेप आदि तत्त्वों का प्रकटित नियतों के द्वारा का तात्पर्य है श्री स्वरों के द्वारा अर्थात् – अ, इ, ऋ, उ, लृ इन वर्णों से संयुक्त पुस्तकों की रक्षा करके फिर बुद्धों का ध्यान करें। प्राणियों की रक्षा के लिए यह भगवान् काल चक्र का मण्डल बनाता हूँ यह भावना होनी चाहिए। इस प्रकार बुद्ध और बोधिसत्त्व, शिष्यों की रक्षा करें यही अध्येषणा रूप शिष्य रक्षा नियम है।

इदानीं कलशा उच्यन्ते –

अब कलशों के विषय में बताते हैं –

एवं स्फाटिक्यकुम्भा वररजतमयाः श्रीकपालायसाश्च
ताम्राख्या हेमकुम्भाः प्रकटितनियता दारजा मृण्मयाश्च॥

शान्तिके स्फाटिकाः कलशाः पुष्टौ रौप्या मारणे मनुष्यकपालान्युच्चाटने विद्वेष आयसा वश्ये सौवर्णा आकृष्टौ ताम्राः स्तम्भने मृण्मया मोहने दारुजा दशकलशाः।

शान्ति कृत्य में स्फटिक के बने हुए कलश, पुष्टि कृत्यों में चाँदी के कलश, मारण कृत्य में मनुष्यों के खोपड़ीयों के कलश, उच्चाटन और विद्वेष में लोहों के कलश, वशीकरण में ताबें के स्तम्भन में मिट्टी के, मोहन में लकड़ी के कलश – इस प्रकार दशकलश होने चाहिए।

अथ शान्तिपुष्ट्यर्थं घटलक्षणमुच्यते –

अब शान्ति और पुष्टि के लिए घड़ों के लक्षण बताते हैं –

वृत्ता द्व्यष्टाङ्गुलोक्ता द्विगुणितदशकेनोच्छ्रिता द्व्यङ्गुलोष्ठाः।
षड्ग्रीवाष्टाङ्गुलास्याः शशधरधवलाः शान्तिपुष्ट्योर्न चान्ये॥

इह कलशा गर्भे वृत्तेन द्व्यष्टाङ्गुलोक्ताः षोडशाङ्गुला उक्ताः। द्विगुणितदशकेनोच्छ्रिता इत्यधः कलशगर्भान् मुखोष्ठान्ता विंशत्यङ्गुला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उच्छ्रेयेणेति। द्व्यङ्गुलोष्ठा इति द्व्यङ्गुलावोष्ठौ लम्बमानौ येषां ते द्व्यङ्गुलोष्ठाः। मुखादवधेः षडङ्गुलग्रीवाः। अष्टाङ्गुलास्या ओष्ठादोष्ठान्तं मुखमष्टाङ्गुलम्। भागत्रयं कृत्वा भागद्वयेन कण्ठरन्ध्रं भागैकेनोष्ठद्वयायामः। ते च शशधर-धवलाः शान्तिपुष्ट्योर्न चान्ये घटाः स्युरिति। स्फाटिक्यरौप्यघटानामभावे मृण्मया अकालमूलकलशाः शालिपिष्टकेन चन्दनेन वालिप्य धवलाः कर्तव्याः। तथा मूलतन्त्रे ऽपि भगवतोक्तम्— मारणे नरकपालानि श्मशाना-ङ्गारचूर्णेन नरवसयालिप्य कृष्णानि कारयेद् इति। उच्चाटने विद्वेषे दीर्घग्रीवा अष्टाङ्गुलवक्त्राः कृशाङ्गा वृत्तेन द्वादशाङ्गुला उच्छ्रयेण चतुर्विंशत्यङ्गुला अङ्गुलैकोष्ठाः षडङ्गुलास्या इति। वश्याकर्षणे तु यथा शिल्पिना घटिता लोकव्यवहारेणेति। स्तम्भने खर्वा वृतोच्छ्रयेण तुल्याः षोडशाङ्गुलाश् चतुरङ्गुलग्रीवाः षडङ्गुलास्याः स्थूलोष्ठा अङ्गुलद्वयेनेति। सर्वकर्मणि शान्त्यादिवश्यादिकर्मण्युक्ता ग्राह्या इति कलशनियमः।

यहाँ कलश अन्दर ढके हुए अवस्थों में १२ अङ्गुल और खुले हुए अवस्था में १६ अङ्गुल होते हैं। २० अङ्गुल परिमाणों में ऊँचे इस प्रकार नीचे की ओर कलश के गर्भों को मुख या ओष्ठ पर्यन्त २० अङ्गुल लंबे कहा गया है। दो अङ्गुलों का अर्थ है दो अंगुल लंबे होंठ हैं जिनके यह कहा गया है। मुख तक - ग्रीवा (घाँटी) ६ अङ्गुली के बराबर होने चाहिए। एक होठ से दूसरे होठ तक मुख का मापन आठ अङ्गुल कहा गया है। तीन भाग करके दो भागों से कण्ठ छिद्र को कटा और एक भाग से दो होठों के लिए कहा है। वे चन्द्रमा के तरह ही सफेद होने चाहिए जिससे शान्ति और पुष्टि कृत्य किए जाते हैं वे ही घड़े हैं। स्फ़टिक और चाँदी के घड़े उपलब्ध न होने पर मिट्टी के ही घड़े बनवाकर शालिधान (चावल) के आटे से सफेद करने चाहिए अथवा चन्दन से भी किया जा सकता है। इसे ही मूलतन्त्र में भी भगवान् ने कहा है - मारण में नरकपाल तथा श्मशान के काले अङ्गारों के चूर्ण से मनुष्य के वसा से आलिप्त कर काले करने चाहिए। उच्चाटन में, विद्वेष में लम्बी ग्रीवा युक्त आठ अङ्गुल बराबर घाँटी, पतले शरीर, वृत्त में १२ अंगुल, उपर ऊँचाई में २४ अंगुली, छह अंगुली बराबर होंठ होने चाहिए। वश्यकृत्य तथा आकर्षण कृत्य में जैसे शिल्पी के द्वारा बनाए जाते हैं- वे लोक व्यवहार में जैसे प्रसिद्ध होते हैं वैसा ही करें। स्तम्भन कार्य में छोटे, मोटाइ और चौड़ाई में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बराबर होने चाहिए। १६ अङ्गुलीयुक्त, चार अंगुली बराबर घाँटी, ६ अंगुल के बराबर मोटे मुख तथा दो अंगुल बराबर होठ होने चाहिए। सभी कर्मों में शान्ति – वश्यादि कर्मों में कहे हुए कलश ही ग्राह्य हैं यही कलश नियम है।

ततो वज्रकलशानधिवासयेत्। तत्र मन्त्रपदानि ॐ हं हां हिं हीं हृ हॄ हुं हूं ह्लृ ह्लॄ वज्रपद्मामृतघट सुविशुद्धधर्मधातुस्वभाव सर्वधर्मान् सुविशुद्धधर्म-धातुस्वभावान् कुरु कुरु स्वाहा। मण्डलमध्ये विजयकलशं स्थापयेद् गन्धादिकं दत्त्वेति घटाधिवासनम्।

उसके बाद वज्र कलशों की पूजा करें। उसमें मन्त्र हैं – ॐ हँ हाँ हिं हीं हृ हॄ हूँ ---- कुरु कुरु स्वाहा। मण्डल के मध्य में विजय कलश को स्थापित करके गन्ध आदि देकर उसकी पूजन करना ही घटाधिवासन है।

ततः शिष्याधिवासनम्। आदौ मण्डलाध्येषणकाले मध्ये भूम्यादि-संग्रहेऽन्ते मण्डलप्रवेशकाले च सर्वत्र मण्डलं कृत्वा दन्तकाष्ठं दत्त्वा ततो रक्षां करोति। तत्रैष विधिः। स्नातस्य धौतवस्त्रस्य शान्त्यादि-कर्मानुसारेण तस्यामेव भूम्यां मण्डलं कृत्वोदुम्बरं दन्तकाष्ठं द्वादशाङ्गुलमन्यक्षीरवृक्षजं वा शिरसि पुष्पमालां बद्ध्वा गन्धादिभिरर्चयित्वा पूर्वाभिमुखस्य देयमनेन मन्त्रेण– ॐ आः हूं होः हं क्षः वज्रदन्तकाष्ठ चतुर्विमोक्षमुखविशुद्धस्वभाव कायवाक्चित्तज्ञानमुखदन्तादिमलं विशोधय विशोधय स्वाहा। इति दन्त-काष्ठं दत्त्वान्त्याधिवासने ऊर्ध्वतः क्षिप्तं मण्डले पतितं दन्तकाष्ठं लक्षयेत्। यत्र पतति तेन शिरसा तत्रस्थं कर्मप्रसरादिकं तस्य सिध्यतीति दन्तकाष्ठ-विधिः।

उसके बाद शिष्यों का अधिवास करें। सबसे पहले मण्डल के अध्येषणा के समय में भूमि आदि के संग्रह के पश्चात् जो मण्डल में प्रवेश करने का समय होता है उसी में सभी ओर मण्डल का निर्माण करके दन्तकाष्ठ उसे देकर उसकी रक्षा किया जाता है। वहाँ पर यह विधि है। स्नान करके के बाद धोती पहन कर शान्ति आदि कर्मों के अनुसार उसी भूमि में (वेदी) मण्डल बनाकर उदम्बर का दन्तधावन काष्ठ जो १२ अंगुली के बराबर है या अन्य कोई दूध निकलने वाला भी काठ हो सकता है उसे लेकर शिर में पुष्पों की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

माला धारण करके गन्ध आदि से पूजन करके पूर्व की ओर मुँह करके इस मन्त्र से उसे यह (अधिवासन कृत्य) देना चाहिए–

आः हूँ होः हँ क्षः ---- स्वाहा। इस प्रकार दातून के काष्ठ देकर चार प्रकार के अशुद्धियों के निर्मूल हेतु उसे देने के बाद उसके वस्त्रों के उपर के भाग में दृष्टि देनी चाहिए। उस दन्तकाष्ठ को उपर की ओर आकाश में फेंकना चाहिए तत् पश्चात् जहाँ गिरता है उसी स्थान पर उसके अधिवासन आदि कृत्य करने चाहिए। इससे दन्तकाष्ठविधि पूर्ण होती है।

ततो मण्डलभूमौ शिष्यं प्रवेश्य शिरसि कण्ठे हृदि नाभावुष्णीषे गुह्ये ऊँ आः हूं होः हं क्षः षट्कुलैर्न्यासं कृत्वा वज्रसत्त्वं प्रचोदयेदेभिर्मन्त्रपदैः– ऊँ अ आ अं अः वज्रसत्त्व महासुखवज्र कालचक्र शिष्यस्याभिमुखो भव सन्तुष्टो भव वरदो भव कायवाक्चित्ताधिष्ठानं कुरु कुरु स्वाहा। इति शिष्याधिवासनविधिः॥

उसके बाद मण्डल भूमि में शिष्य को प्रवेश कराने के बाद, शिर में, घाँटी में, हृदय, नाभि, उष्णीष तथा गुह्य में ऊँ, आः, हूँ, होः, हँ, क्षः इस मन्त्र में छह प्रकार न्यास करके वज्र सत्त्व को इस मन्त्र से प्रेरित करना चाहिए – ऊँ अ आ अं अः ---- स्वाहा। यही शिष्य की अधिवासन विधि है।

इदानीं देवतार्चनमुच्यते–

अब देवता पूजन विधि बताते हैं–

रत्नैर् हेमेन्दुपुष्पैर्बहुविविधपटैर्गन्धधूपप्रदीपैर्
घण्टादर्शैर्वितानैर्विविधफलपताकादिभिर्नृत्यवाद्यैः।
कृत्वा पूजां विचित्रामपरदशविधां चात्मशक्तया यथोक्ताम्
आचार्यस्याङ्घ्रिमूले ददति वरसुतो दक्षिणां शुद्धिहेतोः॥

इह पूर्वोक्तविधानेन देवतालम्बनं कृत्वा ततो ज्ञानचक्रं समयचक्रेण सहैकीकृत्यार्घादिकं दत्त्वा पूर्वमन्त्रपदैस्ततो ऽर्चनार्थं प्रथमं गन्धं चन्दनादिकं गृहीत्वाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां बाह्ये कृतमण्डले नायकादीनर्चयेत्। सर्वेषां नामपूर्वं प्रणवं देयम्। अर्चने सर्वकर्मणि नमो ऽन्ते नाम्नो भवति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रत्येकं कर्मणि पुष्ट्याद्यौ स्वाहान्तो वेदितव्य इति। इह सर्वकर्मण्यर्चनाय देवतानां मन्त्रपदानि। तद्यथा मूलतन्त्रे–

यहाँ पर पूर्वोक्त विधि के द्वारा ही देवता का आलम्बन करके ज्ञानचक्र को समयचक्र के साथ एक करके अर्घ्य आदि देकर पूर्व उल्लिखित मन्त्रों से उसके पूजा के लिए सर्वप्रथम गन्ध और चन्दन आदि का ग्रहण करके अंगुष्ठ और अनामिका इन दो अङ्गुलियों से बाहर बनाए हुए वेदी में नायक आदि की पूजा करें। सभी देवताओं के नाम से पहले ॐ लगाना चाहिए। पूजा के अवसर में नामों के अन्त में **नमः** लगाना चाहिए। प्रत्येक पुष्टि कर्म में स्वाहा लगाना होता है। सभी कर्मों के अवसर पर देवता पूजा के मन्त्र बताते हैं। जैसा कि मूलतन्त्र में कहा है–

ॐ बुद्धाय नमः। ॐ धर्माय नमः। ॐ सङ्घाय नमः। ॐ वज्रसत्त्वाय नमः। ॐ प्रज्ञापारमितायै नमः। ॐ स्वभाविककायाय नमः। ॐ धर्मकायाय नमः। ॐ सम्भोगकायाय नमः। ॐ निर्माणकायाय नमः। ॐ ज्ञानवज्राय नमः। ॐ चित्तवज्राय नमः। ॐ वाग्वज्राय नमः। ॐ कायवज्राय नमः। ॐ चतुर्विमोक्षेभ्यो नमः। ॐ चतुर्ब्रह्मविहारेभ्यो नमः। ॐ सप्तत्रिंशद्बोधि-पाक्षिकधर्मेभ्यो नमः। ॐ चतुरशीतिसहस्त्रधर्मस्कन्धेभ्यो नमः। ॐ सर्वधर्म-देशकेभ्यो नमः। ॐ रत्नत्रयाय नमः। ॐ शाक्यमुनये नमः। ॐ कालचक्राय नमः। ॐ दानपारमितायै नमः। ॐ शीलपारमितायै नमः। ॐ क्षान्तिपारमितायै नमः। ॐ वीर्यपारमितायै नमः। ॐ ध्यानपारमितायै नमः। ॐ प्रज्ञापारमितायै नमः। ॐ उपायपारमितायै नमः। ॐ प्रणिधानपारमितायै नमः। ॐ बलपारमितायै नमः। ॐ ज्ञानपारमितायै नमः। ॐ जयघटेभ्यो नमः। ॐ विजयघटेभ्यो नमः। ॐ सर्वचिह्नेभ्यो नमः। ॐ सर्वमुद्राभ्यो नमः। ॐ चिन्तामणये नमः। ॐ धर्मगण्डच्यै नमः। ॐ धर्मशङ्खाय नमः। ॐ कल्पवृक्षाय नमः। ॐ अक्षोभ्याय नमः। ॐ अमोघसिद्धये नमः। ॐ रत्नसम्भवाय नमः। ॐ अमिताभाय नमः। ॐ वैरोचनाय नमः। ॐ लोचनायै नमः। ॐ मामक्यै नमः। ॐ पाण्डरायै नमः। ॐ तारायै नमः। ॐ वज्रधात्वीश्वर्यै नमः। ॐ वज्रपाणये नमः। ॐ खगर्भाय नमः। ॐ क्षितिगर्भाय नमः। ॐ लोकेश्वराय नमः। ॐ सर्वनिवरणविष्कम्भिणे नमः। ॐ समन्तभद्राय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नमः। ऊँ गन्धवज्रायै नमः। ऊँ रूपवज्रायै नमः। ऊँ रसवज्रायै नमः। ऊँ स्पर्शवज्रायै नमः। ऊँ शब्दवज्रायै नमः। ऊँ धर्मधातुवज्रायै नमः। ऊँ उष्णीषाय नमः। ऊँ विघ्नान्तकाय नमः। ऊँ प्रज्ञान्तकाय नमः। ऊँ पद्मान्तकाय नमः। ऊँ यमान्तकाय नमः। ऊँ स्तम्भिन्यै नमः। ऊँ मानिन्यै नमः। ऊँ स्तोभिन्यै नमः। ऊँ अतिवीर्यायै नमः। ऊँ अतिनीलायै नमः। ऊँ सर्वधारिणीभ्यो नमः। ऊँ षडङ्गाय नमः। इति चित्तमण्डलेऽर्चनविधिः। (यही चित्तमण्डल में अर्चन विधि है।)

ततो वाङ्मण्डले। तद्यथा (अब वाणीमण्डल में पूजा करें। इस प्रकार) – ऊँ वज्रचर्चिकायै नमः। ऊँ वज्रवाराह्यै नमः। ऊँ वज्रमहेश्वर्यै नमः। ऊँ वज्रैन्द्र्यै नमः। ऊँ वज्रब्रह्माण्यै नमः। ऊँ वज्रमहालक्ष्म्यै नमः। ऊँ वज्रकौमार्यै नमः। ऊँ वज्रवैष्णव्यै नमः। ऊँ अष्टाष्टकेनचतुःषष्टि–वज्रयोगिनीभ्यो नमः। ऊँ षट्त्रिंशदिच्छाभ्यो नमः। इति वाङ्मण्डले ऽर्चनविधिः। (यही वाङ्मण्डल में पूजाविधि है)

ततः कायमण्डले। तद्यथा (अब कायमण्डल में पूजा करें। इस प्रकार) – ऊँ वज्रविष्णवे नमः। ऊँ वज्रनैर्ऋत्याय नमः। ऊँ वज्राग्नये नमः। ऊँ वज्रोदधये नमः। ऊँ वज्रेन्द्राय नमः। ऊँ वज्रेश्वराय नमः। ऊँ वज्रब्रह्मणे नमः। ऊँ वज्रविनायकाय नमः। ऊँ वज्रकार्तिकेयाय नमः। ऊँ वज्रवायवे नमः। ऊँ वज्रयमाय नमः। ऊँ वज्रयक्षेभ्यो नमः। ऊँ वज्रवारुण्यै नमः। ऊँ वज्रवायव्यै नमः। ऊँ वज्रयामिन्यै नमः। ऊँ वज्रयक्षिण्यै नमः। ऊँ महाबलाय नमः। ऊँ अचलाय नमः। ऊँ टक्किराजाय नमः। ऊँ नीलदण्डाय नमः। ऊँ सुम्भराजाय नमः। ऊँ रौद्राक्ष्यै नमः। ऊँ वज्रशङ्खलायै नमः। ऊँ चुन्दायै नमः। ऊँ भृकुट्यै नमः। ऊँ मारीच्यै नमः। ऊँ प्रत्येकमासभेदेन षष्ट्युत्तर-त्रिशतवज्रतिथिदेवीभ्यो नमः। ऊँ षट्त्रिंषत्प्रतीच्छाभ्यो नमः। ऊँ वज्रजयाय नमः। ऊँ वज्रकर्कोटकाय नमः। ऊँ वज्रवासुकये नमः। ऊँ वज्रानन्ताय नमः। ऊँ वज्रतक्षकाय नमः। ऊँ वज्रमहापद्माय नमः। ऊँ वज्रकुलिकाय नमः। ऊँ वज्रशङ्खपालाय नमः। ऊँ वज्रपद्माय नमः। ऊँ वज्रविजयाय नमः। इति कायमण्डले। (यही कायमण्डल में पूजाविधि है)

ततः श्मशानेषु। तद्यथा (अब श्मशान भूमि में पूजा करें। इस प्रकार)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

– ॐ श्वानास्यायै नमः। ॐ शूकरास्यायै नमः। ॐ व्याघ्रास्यायै नमः। ॐ जम्बुकास्यायै नमः। ॐ गरुडास्यायै नमः। ॐ उलूकास्यायै नमः। ॐ गृधास्यायै नमः। ॐ काकास्यायै नमः। ॐ सर्वभूतेभ्यो नमः। इत्यष्टश्मशानेषु। (यही आठ श्मशानों में पूजा प्रकार है)

ततो बाह्यलोकदेवतानाम् (अब, बाहर के लोकदेवताओं की पूजा करें) – ॐ वज्रचन्द्राय नमः। ॐ वज्रसूर्याय नमः। ॐ वज्रमङ्गलाय नमः। ॐ वज्रबुधाय नमः। ॐ वज्रबृहस्पतये नमः। ॐ वज्रशुक्राय नमः। ॐ वज्रशनैश्चराय नमः। ॐ वज्रकेतवे नमः। ॐ वज्रराहवे नमः। ॐ वज्रकालाग्नये नमः। ॐ वज्रध्रुवाय नमः। ॐ वज्रागस्त्याय नमः। ॐ सर्वनक्षत्रेभ्यो नमः। ॐ द्वादशराशिभ्यो नमः। ॐ षोडशकलाभ्यो नमः। ॐ दशदिक्पालेभ्यो नमः। ॐ वज्रनन्दिकेश्वराय नमः। ॐ वज्रमहाकालाय नमः। ॐ वज्रघण्टाकर्णाय नमः। ॐ वज्रभृङ्गिने नमः। ॐ सर्वक्षेत्रपालेभ्यो नमः। ॐ सर्वदूतीभ्यो नमः। ॐ हारीत्यै नमः। ॐ सर्वसिद्धिभ्यो नमः। ॐ धर्मचक्राय नमः। ॐ भद्रघटाय नमः। ॐ दुन्दुभ्यै नमः। ॐ बोधिवृक्षाय नमः। ॐ गुरुबुद्धबोधिसत्त्वेभ्यो नमः। इत्यर्चनविधिः। (यही अर्चन विधि है।)

ततो रत्नैरिन्द्रनीलादिभिर्हेमपुष्पैर्बहुविविधपटैः पञ्चवर्णैर्वस्त्रैर्गन्ध-धूपप्रदीपैर्घण्टादर्शैर्वितानैर्विविधफलैः पञ्चवर्णपताकाभिर्नृत्यैर्वाद्यैः पूजां कृत्वापि दशविधामिति तन्त्रोक्ताम्। एवं शिष्यो यथात्मशक्त्या यथोक्तपूजां कृत्वा तत आचार्यस्याङ्घ्रिमूले मण्डलं कृत्वा ददाति वरसुतो दक्षिणां शुद्धिहेतोः॥

इसके बाद रत्नों से, इन्द्रनील आदि सुवर्ण पुष्पों से एवं विभिन्न पाँच वर्णों के गन्ध-धूप-दीप-घण्टा-आदर्श-आदि एवं फलों से पञ्चवर्णयुक्त पताकाओं से, नृत्य तथा वाद्यों से पूजा करनी चाहिए वही दशविध पूजा है। इस प्रकार शिष्य अपने सामर्थ्य के अनुसार पूजा करने के बाद आचार्य के चरणों के समीप में ही मण्डल बनाकर उचित एवं उत्तम दक्षिणा आचार्य को देता है। जिससे शुद्धि होती है।

द्रव्यात्मानं त्रिशुद्ध्या ससुतदुहितरं कन्यकां गोत्रजान्याम्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अद्यैवाहं जिनानां शरणमधिगतो रौद्रसंसारभीतः।
युष्मत्पादाब्जयोर्वै भवभयहरयोः कायवाक्चित्तशुद्ध्या
इत्यध्येष्यो गुरुः स्यात्सकनककुसुमैर्मण्डलं कारयित्वा॥

द्रव्यात्मानं त्रिशुद्ध्या कायवाक्चित्तशुद्ध्या ससुतदुहितरं ददाति कन्यकां गोत्रजान्यां यदि स्वकीया नास्ति। एवं दक्षिणां दत्त्वा ततो ऽध्येषणां करोति प्रणिधानं च। अद्यैवाहं जिनानां शरणमधिगत आबोधिसीम्नः। युष्मत्पादाब्जयोर्वै भवभयहरयोः कायवाक्चित्तशुद्ध्येत्यध्येष्यो गुरुः स्यात्सकनककुसुमैर्मण्डलं कारयित्वा॥

ततः प्रणिधानं करोति।

द्रव्य का अपने शुद्धि के लिए प्रयोग करके काय, वाक् और चित्त के शुद्धि द्वारा लड़की (कन्या) को गुरु को देता है यदि अपनी नहीं है तो अपने गोत्र में उत्पन्न कन्या को ही देता है। इस प्रकार दक्षिणा देने के बाद अध्येषणा करता है तथा प्रणिधान-स्तुति भी करता है। आज ही मैं भगवान् बुद्ध के शरण में गया हूँ - जब तक बोधि प्राप्त नहीं होता है। आपके चरण कमल जो समस्त भयों के नाशक हैं, उनमें शरणागत हूँ जिससे काय, वाक् और चित्त शुद्ध होते हैं, इसके बाद गुरु भी सुवर्ण पुष्पों के मण्डल को बनाकर शिष्य को अपने में ग्रहण कर लेता है। यही प्रणिधान है।

वज्रं घण्टां च मुद्रां गुरुमपि शिरसा धारयामीष्टवज्रे
दानं दास्यामि रत्ने जिनवरसमयं पालयाम्यत्र चक्रे।
पूजां खड्गे करोमि स्फुटजलजकुले संवरं पालयामि
सत्त्वानां मोक्षहेतोर्जिनजनककुले बोधिमुत्पादयामि॥

वज्रं घण्टां च मुद्रां गुरुमपि शिरसा धारयामीष्टवज्रे वज्रकुले स्थित इदं समयं गृह्णामि। दानं दास्यामि रत्ने रत्नकुले स्थितः पुण्यसम्भाराय दशविधं दानं दास्यामि।

वज्र, घण्टा, मुद्रा और गुरु को भी अपने शिर में धारण करता हूँ। इस प्रकार इष्ट वज्र में, वज्रकुल में स्थित होकर इस वज्र सिद्धान्त को ग्रहण करता हूँ। दान करुँगा - रत्न में, रत्नकुल में स्थित होकर पुण्यसम्भार के लिए वह दान भी दश प्रकार का है, जिसे मैं दुंगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लोहरत्नान्नगोवाजिगजकन्यावसुन्धराः।
इष्टा भार्या स्वमांसानि दानं दशविधं मतम्॥ इति।

वह दश प्रकार का दान है – लोहा, रत्न, गौ, अन्न, घोड़ा, हाथी, कन्या, भूमि, भार्या और अपना (स्वयं शरीर का) मांस।

चिन्तामणिं साधयित्वा दानं दास्यामीति प्रणिधानम्। जिनवरसमयं पालयाम्यत्र चक्रे चक्रकुले स्थितः पञ्चामृताद्यं गोकुलदहनं स्कन्धेन्द्रिय-समूहं रक्षामीति प्रणिधानम्। पूजां खड्गे करोमि खड्गकुले स्थितः सन् गुरुबुद्धबोधिसत्त्वानामन्येषामपि पूजां सर्वोपकरणैः करोमीति प्रणिधानम्। स्फुटजलजकुले पद्मकुले स्थितो वर्णावर्णाभिगमने स्फुटपद्मसम्पर्के संवरं ब्रह्मचर्यं पालयामीति शीलसम्भारायेति प्रणिधानं करोमि। सत्त्वानां मोक्षहेतोर्जिनजनककुल एकशूकवर्जे स्थितः सन् बोधिमुत्पादयामि शून्यताकरुणात्मिकां महामुद्रासिद्धिमिति प्रणिधानं करोमि।

स्नातो गन्धानुलिप्तो व्रतनियमयुतः पूर्वभूम्यां निवेश्य
सिद्ध्यर्थं दन्तकाष्ठं जिनवरकुलिशैश्चाभिमन्त्र्य प्रदेयम्।
जिह्वायां चामृतं वै जिनवरसमयैर्धूपमावेशनार्थं
मन्त्रं हूँकारमेकं त्वरलपिसहितं चोदनं क्रोधभर्तुः॥

इति प्रणिधाने कृते सत्यभिषेकाय प्रार्थितो गुरुः हृष्टतुष्टः सन् शिष्यं स्नातं गन्धानुलिप्तं व्रतनियमयुतं पूर्वभूम्यां मण्डलबाह्ये निवेश्य सिद्ध्यर्थं दन्तकाष्ठं पूर्वोक्तविधिना जिनवरकुलिशैरिति ॐ आः हूँ एभिः सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा तत उल्लालयित्वा मण्डले क्षिपेत्। येन दिग्विभागेन पतति तत्कर्मप्रसरं तस्य सिद्ध्यति। पूर्वोक्तशान्त्यादिकमष्टदिक्षु। ततो मुखे चुलुकत्रयमुदकस्य प्रक्षिप्य शुद्धिं कृत्वा मण्डले काण्डपटं दत्त्वा पूर्वभूम्यामानयित्वा शिष्यं ततस्तस्य जिह्वायां पञ्चामृतं दद्यात्। जिनवरसमयैः पञ्चामृतपञ्चप्रदीपैः पूर्वं धूपं साधयित्वा तदेव धूपं देवतावेशनार्थम्। तत्र मन्त्रं हूँकारमेकम्। अरलपिसहितमिति। ॐ अररररललललल वज्रावेशय हूँ इत्यनेन मन्त्रेण चोदनं क्रोधभर्तुः क्रोधावेशनमित्यर्थः। अस्य कोटिजापेन दशलक्षहोमेन पूर्वसेवां कुर्यात्। स्मरणमात्रेण क्रोधावेशं करोति। तस्येदं लक्षणम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चिन्तामणि मन्त्र को सिद्ध करने के बाद दान दुँगा यही संकल्प है। साथ ही बुद्ध के विशिष्ट सिद्धान्त का पालन करुँगा, चक्र और चक्रकुल में स्थित होकर पञ्चामृत आदि तथा इन्द्रिय समूह का दहन अर्थात् कन्ध और इन्द्रियों के नियमों का पालन करुँगा, यही प्रणिधान है। खड्गकुल में स्थित होकर खड्ग में पूजा करुँगा – गुरु, बुद्ध और बोधिसत्त्वों तथा अन्य महसत्त्वों का भी – सभी प्राप्त उपकरणों के द्वारा, यही प्रणिधान है। स्फुट जलज कुल, जो पद्मकुल है, में स्थित होकर वर्णावर्णाभिगमन में स्फुट पद्मसम्पर्क में संवर स्वरूप ब्रह्मचर्य का पालन करता हूँ इस प्रकार शील सम्भार के लिए प्रणिधान करता हूँ। प्राणियों के मोक्ष के लिए जिनों के जनक कुलों में एक शुक्र वज्र में स्थित होकर बोधि का उत्पादन करुँगा, जो शून्यता और करुणा से अभिन्नात्मक है महामुद्रासिद्धि करुँगा यही प्रणिधान है।

इस प्रकार प्रणिधान करके अभिषेक के लिए प्रार्थना करने के बाद अत्यन्त हर्षित होकर गुरु स्नान किए हुए शिष्य को सुगन्धित द्रव्यों से अनुलिप्त तथा व्रत नियमों में रखकर पूर्वभूमि में, बाह्यमण्डल में रखकर सिद्धि के लिए दन्तकाष्ठ को पूर्वोक्तविधि से जिनवर कुलिश इस प्रकार ऊँ आः हूँ आदि मन्त्रों से सात बार अभिमन्त्रित करके उसे ऊपर उठाकर पहले हिलाकर फिर मण्डल में निक्षिप्त कर दें। जिस दिशा में वह गिर जाता है वहीं पर उसकी सिद्धि होती है। पूर्वोक्त शान्ति आदि आठ दिशाओं में वह कृत्य होता है। उसके बाद तीन बार आचमन करके तीन अञ्जली जल को ऊपर उछाल दें फिर मण्डल में दुर्वा निर्मित गुच्छे को समर्पित करके पूर्वभूमि में लाकर शिष्य के जीभ में पञ्चामृत पान करा दें। जिनवरसमयों से पञ्चामृत और पञ्च प्रदीपों के पहले धूप दिखा दें, उसी धूप को देवता के आवेश के लिए उपयोग किया जाता है। उसके बाद हूँ मन्त्र का उच्चारण करें। अरलपि के साथ वह हूँ होना चाहिए। ऊँ अररर ----- हूँ इन मन्त्र से प्रेरित करने के बाद क्रोधभर्ता का आवेश करें। इस मन्त्र का एक करोड़ जाप करके दशलाख होम करके उसकी सेवा करें। इसके स्मरणमात्र से क्रोध का आवेश होता है। यही इसका लक्षण है।

आविष्टः क्रोधराजः प्रहरणसुकरैस् तर्जयन्मारवृन्दमिति। इह शिष्ये क्रोधराज आविष्टः सन् प्रहरणशोभितकरैः स्थावरं जङ्गमं यं हन्ति तं शतचूर्णं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करोति। यं तर्जयति तर्जन्या मारवृन्दं धर्मविहेठकं तं भूम्यां पातयति निश्चेष्टतां नयति। तथा प्रत्यालीढादिपादैर्बहुविधकरणैर्नृत्यते वज्रनृत्यमिति। इह यः शिष्यः प्राक्किञ्चिन्नाटच्चलक्षणं न जानाति स एव क्रोधाविष्टः सन् वज्रनृत्यं करोतीत्यन्तरिक्षे बहुविधकरणैरिति नृत्यते। अथ हास्यं करोति तदा हूंकारमिश्रं भयदमपि रिपोर्मारसमूहस्येति। तथा पूर्वमज्ञो ऽसौ यः शिष्यः स क्रोधाविष्टो मनुष्यादीनामगम्यध्वनिना गीतं करोति। अनेक-तन्त्रान्तरेषु यदुक्तमिति। अतः क्रोधराजाविष्टो निर्लज्जो निर्विशङ्को भवति गुणवशात्क्रोधस्वभावात्। देवतान्या च सौम्येत्यथ लोचनादिदेवता सौम्येति क्रोधावेशनियमः। अत्रापि विस्तरेणापरदशक्रोधानां दशप्रकृतयो मुद्राबन्धेन वेदितव्याः। येन चिह्नेन यस्योत्पादः सा च तस्य हस्तमुद्रा भवति। स तया ज्ञातव्य इति नियमः। अन्यदावेशलक्षणं विस्तरभयान्नोक्तम्॥

क्रोधराज का आवेश हो चुका है शिष्य में, इसीलिए कहा है – सरलरीति से वह मार के समूह को तर्जित करता है। मारने में समर्थ होता है। यहाँ शिष्य में क्रोधराज आविष्ट होने पर प्रहरण में कुशल होकर स्थावर और जङ्गम को भी वह हनन कर सकता है। जिसे प्रहार करता है उसे चूर्ण बना देता है, जिसको वह तर्जित करता है अपने अंगुली से ही मार के समूह को जो धर्म विरोधी है को, पृथिवी में निश्चेष्ट करके गिरा देता है। जो शिष्य पहले से ही कुछ नाटच्य आदि लक्षण को नहीं जानता है वही क्रोध से आविष्ट होकर वज्रनृत्य करता है। इस प्रकार अन्तरिक्ष में बहुविध सामग्री सहित नृत्य करता है। जब वह हास्य करता है उस समय हूँकार का मिश्रण करके भय को देने वाले मार समूह का भी उपहास करता है। पहले से अज्ञशिष्य क्रोधाविष्ट होकर मनुष्यों के द्वारा अज्ञात ऐसी ध्वनि से युक्त गीत गाता है। जिसके विषय में अनेकों तन्त्रोंमें उल्लेख किया गया है। अतः क्रोधराज से आविष्ट वह निर्लज्ज, निःशङ्क होता है, गुणों के वशीभूत और क्रोध स्वभाव से आविष्ट होकर दूसरी देवता भी सौम्य होती है जो क्रोधावेश के नियम से ही सम्बन्धित है। यहाँ विस्तारपूर्वक अन्य दश क्रोधों के दश प्रकृतियाँ है, जिन्हें मुद्राबन्ध से जान लेना चाहिए। जिस चिह्न से जिसकी उत्पत्ति होती है वही उसकी हस्तमुद्रा होती है। उस मुद्रा से ही उसका परिचय होता है, यही नियम है। दूसरा आवेश का लक्षण भी है जिसे विस्तार के भय से नहीं बता रहे हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीमावेशोपशमनादिकमुच्यते -

अब, आवेश के उपशमन का वर्णन करते हैं -

त्यक्तावेशस्य पश्चाच्छिरसि च हृदये मूर्ध्नि नाभौ च कण्ठे
गुह्ये रक्षां जिनैश्च स्वकुलभुविगतैः कारयेत्स्वत्रिवज्रैः।
दत्ताङ्गे पीतवस्त्रस्य पिहितनयन स्यात्र शिष्यस्य वेशः
संवृत्यर्थं व्रतानि प्रवरगतिगतान्येव देयानि तानि॥

इह यदा शिष्यः क्रोधदेवतादिभिरधिष्ठितस्तदाचार्येण प्रष्टव्यो यत्किञ्चित्कार्यमभिमतम्। ततः ऊँ आः हूं त्र्यक्षरैः पुष्पमभिमन्त्र्य शिरसि दातव्यम्। तदावेशं त्यजति। स्वस्थानं गच्छति। एवं त्यक्तावेशो भ्वति। ततस्त्यक्तावेशस्य पश्चाच्छिरसि रक्षां जिनैश्चेति वचनात्। ऊँ कारेण शिरसि हृदये हूंकारेण मूर्ध्न्युष्णीषे हंकारेणे त्युपायस्य स्वत्रिवज्रैः कायवाक्चित्तैरिति। एवं नाभौ होकारेण कण्ठे आःकारेण गुह्ये क्षःकारेणेति प्रज्ञायाः स्वत्रिवज्रैः कायवाक्चित्तैरिति। अत्रोभयोः कायवाक्चित्त-वज्रविषये दीर्घो हूंकारो वाग्वज्रं ह्रस्वश्चित्तवज्रमन्यत्र यतो ऽस्ति। ततो रक्षां कृत्वा दत्ताङ्गे पीतवस्त्रस्य पिहितनयनस्यात्र मण्डले शिष्यस्य प्रवेशो विधेयः। प्रथमं संवृत्यर्थं व्रतान्याबोधिपर्यन्तम्। संवृतिः पुण्यादिसम्भारः। तस्यार्थं तदर्थं तानि प्रवरगतिगतानीति। प्रवरा भद्रकल्पे सप्त विपश्यादयः शाक्यमुनिपर्यन्तास्तथागताः। तेषां गतिः पुण्यशीलज्ञानसम्भारात्मिका। तस्यां गतानि प्रवरगतिगतान्येव देयानि तानि शिष्यायाचार्येणेति तथागतनियमः॥

जब भी शिष्य क्रोध आदि देवताओं के द्वारा अधिष्ठित होकर उन्मत्त होता है तब आचार्य यह पूछें कि तुम क्या करना चाहते हो आदि अभीष्ट का प्रश्न करें और उसे पूरा करने के बाद **ऊँ आः हूँ** इन तीन अक्षरों से अभिमन्त्रित पुष्प उसके शिर में रख देवें, तब वह शिष्य तत्काल ही आवेश त्याग देता है। अपने पूर्वअवस्था में लौट जाता है। अपने स्थान में स्थित होता है। जब वह शिष्य आवेश त्याग देता है तब शिर में जिनों के द्वारा यह रक्षित है इत्यादि वचनों से शिर में अभिषेक करें। ऊँ कार से शिर में, हूँ कार से हृदय में, मूर्धा में और उष्णीष में हँकार से उपासना करने के बाद अपने तीन वज्रों से अर्थात्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काय, वाक् और चित्त से उपासना करें। इसी प्रकार नाभी में होकार से, कण्ठ में आःकार से, गुह्य में क्षःकार से प्रज्ञा का अपने तीन वज्रों से उपासना करें। यहाँ पर काय, वाक् और चित्त वज्रों के विषय में दीर्घ हूँ कार, वाग्वज्र हुँ कार तथा चित्तवज्र जैसा पहले बताया गया है। उसके बाद रक्षा करके अङ्ग में पीलावस्त्र से आँखें ढक कर इस मण्डल में शिष्य का प्रवेश करायें। पहले संवृति के लिए बोधिपर्यन्त व्रतों का निर्देश किया है। संवृति सत्य पुण्य आदि सम्भार कहा गया है। उसके लिए, उसके कार्य हेतु, वे ही प्रवर के गति में स्थित होते हैं। भद्रकल्प में विपश्वी आदि प्रवर शाक्यमुनि पर्यन्त होते हैं। उनकी गति पुण्य, शील तथा ज्ञान सम्भारात्मक कहे गए हैं। उसमें गए हुए प्रवर के गति में ही स्थित हैं। वे ही आचार्य अपने शिष्य को देते हैं यही तथागत नियम है।

तत्र व्रतान्याबोधिपर्यन्तमाह भगवान् -

बोधिप्राप्ति पर्यन्त व्रत करने के लिए भगवान् कहते हैं -

हिंसासत्यं परस्त्रीं त्यजत परधनं मद्यपानं तथैव
संसारे वज्रपाशः स्वकुशलनिधनं पापमेतानि पञ्च।
यो यत्काले वभूव त्रिदशनरगुरुस्तस्य नाम्ना प्रदेया
एषाज्ञा विश्वभर्तुर्भवभयमथनी पालनीया सदैव॥

हिंसासत्यं परस्त्रीं त्यजत परधनं मद्यपानं तथैवेति पञ्चव्रतानि नियम इत्यर्थः। कस्मात्। यतः संसारे वज्रपाशः स्वकुलशनिधनमिमानि पापकर्माणि पञ्च। अतो न कर्तव्यानीति नियमः। कस्य। विश्वभर्तुरिति यो यत्काले बभूव तथागतस्त्रिदशनरगुरुस् तस्य नाम्ना प्रदेया एषाज्ञा विश्वभर्तु-र्भवभयमथनी पालनीया सदैवा यथा कुलपुत्रैः कुलदुहितृभिः पालिता पुण्यसम्भारायेति तथागतनिमयात्पञ्चशिक्षापदी॥

हिंसा, असत्य, परस्त्री, परधन, मद्यपान वे न करें वे ही पञ्चव्रत कहे हैं। क्योंकि संसार में वे ही वज्रपाश हैं। हमेशा बन्धन में डालने वाले हैं, जो अपने कुशल का वध करते हैं। अतएव वे पाँच पाप कृत्य होने से छोड़ना है या कभी इनमें प्रवृत्त नहीं होना है। यही नियम है। किसका नियम है? यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विश्वभर्ता का नियम है। जो तथागत जिस काल में उत्पन्न हुए हैं वे ही देवता और मनुष्यों के गुरु कहे गए हैं। उन्हीं के नाम से यह आज्ञा देनी चाहिए क्योंकि विश्वभर्ता की आज्ञा ही संसार के भय से रक्षा करती है उसे हमें पालन करना चाहिए। कुलपुत्रों और कुलपुत्रियों के द्वारा - पुण्य सम्भार के लिए तथागत नियम से पञ्चशिक्षापदी के नाम से कहा गया है।

द्यूतं सावद्यभोज्यं कुवचनपठनं भूतदैत्येन्द्रधर्मं
गोबलस्त्रीनराणां त्रिदशनरगुरोः पञ्चहत्यां न कुर्यात्।
द्रोहं मित्रप्रभूणां त्रिदशनरगुरोः सङ्घविश्वासिनां च।
आसक्तिस्त्विन्द्रियाणामिति भुवनपतेः पञ्चविंशद्व्रतानि॥

ततो यदीच्छति तदापराणि देयानि। तत्र द्यूतं सावद्यभोज्यं पूर्वोक्तं कुवचनपठनं भूतधर्मं पितृकार्यं यागकार्यं वेदोक्तं दैत्यधर्मं म्लेच्छधर्मं न कुर्यादित्युपपातकानि पञ्च। तथा पूर्वापराणां दशानामादिमां पञ्चहत्यां न कुर्यात्सर्वदा। गोहत्या बालहत्या स्त्रीहत्या पुरुषहत्या। त्रिदशनरगुरोरिति प्रतिमास्तूपादेर्विसंवादो ऽपरा हत्येति। तथा मित्रद्रोहं प्रभुद्रोहं बुद्धद्रोहं सङ्घद्रोहं विश्वस्तद्रोहमिति पञ्च न कुर्यादिति। तथासक्तिस्त्विद्रि ग्राणामिति। रूपासक्तिः शब्दासक्तिर्गन्धासक्ती रसासक्तिः स्पर्शासक्तिरिति। भुवनपतेर्वज्रसत्त्वस्य नियमेन पञ्चविंशद् व्रतानि पालनीयानि शिष्यैरिति वज्राचार्येण देयानि सेककाले शिष्यायेति व्रतदाननियमः॥

इनके अतिरिक्त भी नियम पालनीय हैं जिन्हें शिष्य को देना चाहिए। वे हैं - द्यूतक्रीड़ा, असमय भोजन, कुवचन पाठ न करें। भूतधर्म, पितृकार्य, यागकार्य - जो वेदोक्त हैं तथा दैत्यधर्म एवं म्लेच्छधर्म भी न करें। वे पाँच उपपाप हैं। फिर वे पाँच हत्यायें भी कभी शिष्य को नहीं करना चाहिए। वे हैं - गोहत्या, बालहत्या, स्त्रीहत्या, पुरुष हत्या, प्रतिमा या स्तूप आदि का विरोध अथवा निन्दा भी हत्या हैं इन्हें न करें।

इसी प्रकार मित्रद्रोह, प्रभुद्रोह, सङ्घद्रोह तथा विश्वस्त द्रोह भी शिष्य को नहीं करना चाहिए। इन्द्रियों की आसक्ति भी त्याग देनी चाहिए। रूप के प्रति आसक्ति, शब्दासक्ति, गन्धासक्ति, रसासक्ति और स्पर्शासक्ति की भी त्याग करनी चाहिए। भुवनपति वज्रसत्त्व के नियम से वे २५ व्रत शिष्य को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पालन करना चाहिए – इस प्रकार वज्राचार्य शिष्य को अभिषेक के अवसर पर व्रतनियमों को प्रदान करें।

इदानीं मण्डलप्रवेश उच्यते –

अब मण्डल प्रवेश बता रहे हैं –

श्रीमन्त्रेणाभिमन्त्र्य करकमलपुटे पुष्पमेकं प्रदेयम्
आदौ भ्राम्य त्रिवारान् करकमलपुटान्मण्डले पुष्पमोक्षः।
यस्मिन् स्थाने सुपुष्पं पतति नरपते तत्कुलं तस्य नूनं
पश्चात्सप्ताभिषेकस्त्रिविध इह तथानुत्तरः संप्रदेयः॥

इह प्रथमं व्रतदानानन्तरं पीतवस्त्रेण रक्तवस्त्रेण वा सर्वकर्मणि मुखं बन्ध्येत्। शान्त्यादिषु देवतावर्णवर्णेन सूक्ष्मवस्त्रेण। अनेन मन्त्रेण– ॐ द्वादशाङ्गनिरोधकारिणे हूं फट्। ततश्चक्षुरादीनि निरोधयित्वा कल्याणमित्रमादौ भ्राम्य त्रिवारान्मण्डले। ततः पूर्वद्वारे आचार्यो नायकमूर्त्या स्थितः। यदि देवता मण्डल उत्थिता प्रत्यालीढपादेन तदाचार्य उत्थितः शिष्याय सेकं ददाति। अथ निषण्णा तदा निषण्णो ददाति। ततः कल्याणमित्रेण समर्पितस्य शिष्यस्य शिरसि शङ्खोदकेन प्रोक्षणं कृत्वा ॐ आः हूं इति त्र्यक्षरैः पुष्पमेकं सप्ताभिमन्त्रितं तस्य करकमलपुट आसमन्ताद्देयं पुष्पाञ्जलिविशुद्ध्या। ततः करकमलपुटाद् बाह्ये मण्डलस्य विजय-कलशोपरिपुष्पमोक्षः कार्यः। यतो रजोभूम्यां पुष्पादिकं न दातव्यम्। दत्ते रजो विलोपो भवति। प्रतिष्ठापितमण्डलरजोविलोपात् स्तूपभेद इति। तेन मण्डलबाह्ये पूर्वद्वारे विजयकलशोपरि पुष्पक्षेपः कर्तव्यः कुलपरीक्षार्थम्। अन्यथा सहस्रहस्तमण्डले कुतः पुष्पं पतिष्यति शिष्येण क्षिप्तं पूर्ववज्रार्चिषं त्यक्त्वा। वज्रज्वालापि तत्र सपादहस्तशतं भवति। कथं तां लङ्घयित्वा देवताधिष्ठानेन विना कुलदिक्षु पुष्पं पतिष्यति। तस्माद्विजयकलशे पञ्चचिह्नानि कृत्वा तत्र पुष्पक्षेपः कार्यः। तेन गन्धादिकं मण्डलबाह्ये न रजो भूम्याम्। रजोमण्डलं भगवतः कायो ज्ञेयः।

यहाँ इस प्रकार व्रतदान के अनन्तर पीले वस्त्र या लाल वस्त्र के द्वारा सभी कर्मों के अवसर पर मुख ढक देना चाहिए। शान्ति आदि कर्मों में देवताओं के वर्णों के अनुरूप सूक्ष्मवस्त्रों से ढकना चाहिए। इस मन्त्र से – ॐ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

---- ढकना चाहिए। उसके बाद चक्षु आदि का निरोध करके सबसे पहले कल्याण मित्र को तीन बार मण्डप में घुमाना चाहिए। फिर पूर्वद्वार में नायक मूर्ति में आचार्य स्थित होता है। यदि देवता मण्डल में स्थित या खड़ी है या एक पैर पीछे और दूसरा पैर आगे करके खड़ी है तो तब आचार्य खड़ा होकर शिष्य को अभिषेक देता है। यदि देवता बैठी है तो बैठकर ही अभिषेक देता है। अब, कल्याण मित्र के द्वारा समर्पित शङ्खोदक शिष्य के शिर में प्रोक्षण करने के बाद ऊँ आः हूँ इस मन्त्र से एक पुष्प को सात बार अभिमन्त्रित करके उसके हाथ में देना चाहिए जिससे शुद्धि होती है। उस पुष्प को हाथ से बाहर मण्डल के ऊपर स्थापित विजय कलश में समर्पित कर देना चाहिए। उसके बाद जमीन में पुष्प आदि प्रक्षेपण न करें। पुष्प प्रक्षेपण से धूल हट जाता है। प्रतिष्ठापित मण्डल के धूल हटने से रजो लोप होता है। उससे स्तूप भेद हो जाता है। इससे बाह्यमण्डल में, पूर्वद्वार में विजयकलश के ऊपर पुष्प का प्रक्षेप करना चाहिए - कुल परीक्षा के लिए। अन्यथा सहस्रहस्तमण्डल में पुष्प का प्रक्षेपण या पतन हो सकता है? शिष्य के द्वारा या पूर्वाचार्यों से प्रक्षिप्त के अतिरिक्त तो संभव ही नहीं है। वज्र जवाला भी वहाँ पर सपाद सौ हस्त संख्या होती है। कैसे उसे लङ्घित करके देवता के अधिष्ठान के बिना कुल दिशाओं में पुष्प का पतन संभव होगा? इसीलिए विजयकलश में पाँच चिह्न बनाकर वहाँ पर पुष्प का प्रक्षेपण करें। इसी से गन्ध आदि मण्डल के बाहर रखना चाहिए। किन्तु रजो भूमि में नहीं। रजो मण्डल ही भगवान् का काय है यह जान लेना चाहिए।

नेत्रपटं यौगपद्येन च्छोटयेत्। अथ प्राक् पुष्पक्षेपं कृत्वा पश्चाच्छोटयेदनेन मन्त्रेण— ऊँ दिव्येन्द्रियाण्युद्घाटय स्वाहा इति। नेत्रोद्घाटनं कृत्वा यस्मिन्स्थाने सुपुष्पं त्र्यक्षराभिमन्त्रितं पतति तत्रस्था देवता तस्य कुलदेवता भवति। तया कर्ममुद्रासिद्धिरिति नियमः। ततस्तस्य कुलदेवतां दर्शयित्वा पश्चात्सप्ताभिषेक उदकादिकस्त्रिविध इह यथा कलशादिकः। तथा कर्ममुद्रां पूजयित्वानुत्तरो वक्ष्यमाणः संप्रदेय इत्याचार्यस्य तथागतनियमः॥

अब ढके हुए आँखों को एक ही बार खोल देना चाहिए। पहले पुष्प का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रक्षेप करके फिर इस मन्त्र से खोल देना चाहिए– मन्त्र है– ऊँ दिव्येन्द्रिय – ––––– स्वाहा। नेत्रों को खोलने के बाद जिस स्थान में वह पुष्प गिर जाता है उस स्थान में स्थित देवता ही उसकी कुल देवता है यह जान लेना चाहिए। उससे कर्म मुद्रा की सिद्धि होती है यह नियम है। फिर उसे उसकी कुल देवता दिखाकर फिर सप्ताभिषेक उदकादि तीन प्रकार से विधि कहा गया है। जैसा कि कलश आदि। फिर कर्ममुद्रा की पूजा करके अनुत्तर विधि देना चाहिए जो बताया जाने वाला है। यही आचार्य का तथागत नियम है।

इदानीं सप्तसेकस्य विधिरुच्यते–

अब सप्तसेक विधि बताया जाता है–

नागै राजंश्चतुर्भिर्मणिकनकघटैर्मृण्मयैर्वा सरत्नैर्
ओषध्या गन्धयुक्तैर्जयविजयघटैः स्नापयेद्देवतीनाम्।
मौली बुद्धप्रभेदैर्ददति वरगुरुः शक्तिभिः पट्टमेव
वज्रं घण्टार्कचन्द्राद् व्रतमपि विषयैः स्वेन्द्रियैर्योजनीयम्॥
क्रोधै मैत्र्यादि नाम स्फुटजिनपतिनाज्ञा प्रदेया समात्रा।
वज्रं घण्टां प्रदाय प्रवरकरुणया देशयेच्छुद्धधर्मम्॥

इह नागैरित्यष्टाभिश्चतुर्भिर्वा। जयविजयघटैः। पञ्चभिर्जयघटैः पञ्चभिर्विजयघटैरष्टघटपक्षे। त्रिभिर्जयघटैस्त्रिभिर्विजयघटैश्चतुर्घटपक्षे। मणिकनकैस् तदभावे मृण्मयैः सरत्नैरोषध्या गन्धयुक्तैरिति। तत्रौषध्यः पूर्वोक्तगन्धकक्षपुटे नेत्रादिभागैः संग्राह्याः। पञ्चविंशतीनां मध्ये यथा-लाभतः पञ्च ग्राह्या आचार्येण मूलतन्त्रोक्तविधानेन। तत्र भगवानाह –

यहाँ नाग अर्थात् आठ अथवा चार घटों के द्वारा कहा गया है। जयविजय घट का अर्थ पाँच जय घट अथवा पाँच विजय घटों से कहा गया है जो आठ घटों के पक्ष में है। चार घटों के पक्ष में तीन जय घट और तीन विजय घट से तात्पर्य है। मणि द्वारा निर्मित, उनके अभाव में मिट्टी से निर्मित जो रत्नों से पूरित होते हैं जिनमें सुगन्धिपूर्ण औषधियाँ डाली जाती हैं। उसमें औषधि पूर्वोक्त गन्ध से पूर्ण नेत्रादि भागों से ग्राह्य होते हैं। २५ में से जैसा उपलब्ध होता है उसी अनुसार पाँच ग्रहण करने चाहिए – मूलतन्त्रोक्तविधि से आचार्य इसे करते हैं। जैसा कि भगवान् ने कहा है –

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गन्धकक्षपुटे राजन्नोषधीः पातयेत् क्रमात्।
नेत्रेन्द्वग्न्यादिभिर्भागैब्राह्म्याद्याः पञ्चपञ्चकैः॥
ब्राह्मी नारायणी रौद्री ईश्वरी परमेश्वरी।
ऐन्द्री लक्ष्मी च वाराही कौमारी चर्चिका तथा॥
पार्थिवी वारुणी ज्योतिर्वायवी खेचरी तथा।
माता च भगिनी पुत्री भागिनेयी स्वजा तथा॥
ब्राह्मणी क्षत्रिणी वैश्या शूद्री डोम्बी तथा स्मृता।
इत्योषध्यो महासिद्धिं भुक्त्वा ऋद्धिप्रदाः सदा॥ इति।

गन्ध कक्ष पोटली में क्रमशः औषधियों का पातन करें, नेत्रों से चन्द्र से, अग्नि और सूर्य के भागों से जो ब्राह्मी आदि पाँच भाग हैं उनके द्वारा यह कार्य सम्पन्न किया जाता है। ब्राह्मी, नारायणी, रौद्री, ईश्वरी, परमेश्वरी, ऐन्द्री, लक्ष्मी, वाराही, कौमारी, चर्चिका, पार्थिवी, वारुणी, ज्योति, वायवी, खेचरी, माता, भगिनी, पुत्री, भाञ्जी, ब्राह्मणी, क्षणिणी, वैश्या, शूद्री तथा डोम्बी देवतायें कही गयीं हैं। इत्यादि औषधि रूप देवियाँ जो महासिद्धि का भोग करके हमेशा ऋद्धि के दाता के रूप में प्रसिद्ध हैं।

तत्र ब्राह्मीति ब्रह्मदण्डी भाग २। नारायणी विष्णुक्रान्ता भाग १। रौद्रीति रुद्रजटा भाग ३। ईश्वरी प्रसिद्धा भाग ४। परमेश्वरी देवदाली भाग ५। इति प्रथमपञ्चकन्यासः।

ब्राह्मी ब्रह्मदण्डी भाग दो हैं। नारायणी विष्णुक्रान्ता भाग एक हैं। रौद्री रुद्रजटा भाग तीन हैं। ईश्वर ही प्रसिद्ध भाग चार हैं। परमेश्वरी देवदाली भाग पाँच हैं। यही प्रथम पञ्चक न्यास है।

ऐन्द्रीतीन्द्रवारुणी भाग ३। लक्ष्मीति लक्ष्मणा भाग ४। वाराही वाराहक्रान्ता भाग ५। कौमरीति कर्णिका भाग २। चर्चिकेत्यधः पुष्पिका भाग १। इति द्वितीयपञ्चकन्यासः।

ऐन्द्री यह इन्द्र वारुणी भाग तीन हैं। लक्ष्मीति लक्षणा भाग चार हैं। वाराही वाराहक्रान्ता भाग पाँच हैं। कौमारी यह कर्णिका भाग दो हैं। चर्चिका यह अधःपुष्पिका भाग एक है। यही द्वितीय पञ्चक न्यास है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पार्थिवी मुषली भाग ५। वारुणी रुदन्ती भाग २। ज्योतिरिति ज्योतिष्मती भाग १। वायवी लज्जालुका भाग ३। खेचर्यर्का भाग ४। इति तृतीयपञ्चकम्।

पार्थिवी मुषली भाग पाँच हैं। वारुणी रुदन्ती भाग दो हैं। ज्योति अर्थात् ज्योतिष्मती भाग एक हैं। वायवी लज्जालुका भाग तीन हैं। खेचरी अर्का भाग चार हैं। यही तृतीय पञ्चक कहा गया है।

मातेति पुत्रंजारी भाग १। भगिनी सहदेवा भाग ३। पुत्रीति कृताञ्जलिर्भाग ४। भागिनेया ऽजकर्णा भाग ५। स्वजा मोहनी वटपत्रिका भाग २। इति चतुर्थपञ्चकन्यासः।

माता यह पुत्रंजारी भाग एक है। भगिनी सहदेवा भाग तीन है। पुत्री यह कृताञ्जली भाग चार है। भागिनेया अजकर्णा भाग पाँच है। स्वजा मोहनी वटपत्रिका भाग दो है। यही चतुर्थपञ्चकन्यास है।

ब्राह्मणीति बृहती भाग ४। क्षत्रिणी भृङ्गराजो भाग ५। वैश्या यष्टिमधु भाग २। शूद्री कण्टकारी भाग १। डोम्बी मयूरशिखा भाग ३। इति पञ्चमपञ्चकन्यासः।

ब्राह्मणी यह बृहती भाग चार है। क्षत्रिणी भृङ्गराज भाग पाँच है। वैश्या यष्टिमधु भाग दो है। शूद्री कण्टकारी भाग एक है। डोम्बी मयूरशिखा भाग तीन है। यही पाँचवा पञ्चक न्यास है।

एवं यथासंख्यं धान्यादिसस्यसमूहः। धान्यं महाधान्यं माषाः श्वेतचणकाः कृष्णतिला इति प्रथमपञ्चकम्। कोद्रवा मुद्गाः कलायाः शुक्लतिला गोधूमा इति द्वितीयपञ्चकम्। मोष्ठं त्रिपुटाः कृष्णसर्षपा यवा माषा इति तृतीयपञ्चकम्। मसूरिकाः शुक्लसर्षपाः कङ्गुस्तुवरिका वर्वटिका इति चतुर्थपञ्चकम्। अतसी वरटी वर्णा कुलत्थाः कृष्णचणका इति पञ्चमपञ्चकम् इति पञ्च सस्यानि यथालब्धानि ग्राह्याणि कक्षपुटभागेन। अत्र भागा अङ्गुलिसंख्याः।

इस प्रकार यथासम्भव धान्यादिसस्य का समूह ओषधि कहा गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धान्य, महाधान्य, भाष, सफेद चने, काले तिल यही प्रथम पञ्चक है। कोद, मूँग, कलाय, सफेद तिल, गेहूँ – यही द्वितीय पञ्चक है। मसूर, सफेद सरसों, कङ्गुस्तुवरिका, वर्वटिका – वे चौथे पञ्चक कहे गए हैं। अतसी, वरटी, वर्णा, कुलत्था, काले चने – वे ही पाँचवें पञ्चक कहे गए हैं। वे ही पाँच सस्य बताए गए हैं। जैसे उपलब्ध होते हैं उन्हें लेना चाहिए। कक्ष पुट भाग के द्वारा एक भाग अङ्गुली के संख्या से होते हैं।

ततो रत्नानि। ब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रजातीनि वज्राणि। तथेन्द्रनीलपद्मराग-चन्द्रकान्तकर्केतनमरकतानीति प्रधानानि। तथा लोहानि सुवर्णरूप्यताम्र-तीक्ष्णायो ऽयःकान्तानि। तथा मध्यमरत्नानि मुक्ताप्रबालराजपट्टशूल-मणिषड्बिन्दुकाश्चेति। तथाधमानि स्फटिकजीवजातिडोहरिकाचहरित-मणय इत्येतानि यथाविभवतो ग्राह्याणि। अथ देवनागानां मणय आज्ञाचक्रवर्तिनो महारत्नाभिषेके पञ्चवर्णा भवन्ति। तदभावे पञ्चवर्णानि सौरभ्यपुष्पाणीति नियमो दरिद्राणाम्। अत्र हरितरत्नं विजयशङ्खे। नीलरत्नं पूर्वापरजयविजयघटे। कृष्णं पूर्वाग्नेयघटे। रक्तं दक्षिणनैर्ऋत्यघटे। श्वेतमुत्तरेशानघटे। पीतं पश्चिमवायव्यघटे। एवमयःकान्तं तीक्ष्णं ताम्रं रूप्यं सुवर्णम्। तथौषध्यः। एकभागिका जयविजयघटे। द्विभागिकाः पूर्वाग्नौ। त्रिभागिका यमदैत्ये। चतुर्भागिका उत्तरेशाने। पञ्चभागिका पश्चिमवायव्य इति। तथा गुटिकाभेदेन सस्यानि। तथा पूर्वोक्तकक्ष-पुटगन्धद्रव्याणि पञ्चेति। एवं लोहानि रत्नानि वनौषध्यः सस्यानि गन्धद्रव्याणि घटेषु क्षिप्त्वा तैः पञ्चविंशतिभिः पुनः पोट्टलिकां बद्ध्वा विजयशङ्खे क्षिपेत्तोयपूर्णे। तेन पञ्चसु जन्मस्थानेष्वभिषेचयेदुष्णीषे स्कन्धबाहुसन्धौ सव्यवामे। एवं स्फिच्चकटिसन्धौ। ततः कुलदेवता-विशोधनाय पुष्पक्षेपमन्त्रः– ॐ सर्वतथागतकुलविशोधनि स्वाहा। अनेन मन्त्रेणाचार्यः पुष्पमोक्षं शिष्यं कारयेत्। अनेन मन्त्रेण चक्षुरुद्घाटनम्– ॐ दिव्यनयनमुद्घाटयामि स्वाहा इति। ततः कुलदेवतामण्डलनायकमादि कृत्वा दर्शयेन्मण्डलं समस्तम्। ततः पूर्वद्वारे कुलशुद्धिं कृत्वाचार्यः शिष्यं वामहस्तेन सञ्चाल्य कर्मवज्रिणा सार्धं प्रदक्षिणं कृत्वोत्तरद्वारं नीत्वा तत्र कायशुद्ध्यर्थं तारादेवीमन्त्रैः सर्वकलशेषु तोयं गृहीत्वा विजयशङ्खे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रक्षिप्योदकाभिषेके पुनः पञ्चसु जन्मस्थानेष्वभिषेचयेद् अनेन मन्त्रेण– ॐ आ ई ॠ ऊ ॡ पञ्चधातुविशोधनि स्वाहा। ततो मुकुटाभिषेके पञ्चसु जन्मस्थानेष्वभिषेचयेद् अनेन मन्त्रेण– ॐ अ इ ऋ उ लृ पञ्चतथागतपरिशुद्ध स्वाहा। ततो रत्नहेममुकुटं वस्त्रमुकुटं वा बन्धयेत्। एवमभिषेद्वयेन धातु-स्कन्विशुद्धचैव कायविशुद्धिर्भवति। कायवज्रभूम्यां कायविशुद्धिं कृत्वा ततो दक्षिणावर्तेन पुनर्दक्षिणद्वारे वाग्विशुद्धचर्थं नीत्वा शिष्यं पञ्चसु जन्मस्थानेष्वभिषिच्य पट्टाभिषेके ऽनेन मन्त्रेण– ॐ अ आ अं अः ह हा हं हः हो फ्रें दशपारमितापरिपूरणि स्वाहा इति। ततो रत्नपट्टं स्वर्णपट्टं वालाभे पुष्पमालां ललाटे बन्धयेदिति। ततो वज्रवज्रघण्टाभिषेके पञ्चसु जन्मस्थाने-ष्वभिषिच्यानेन मन्त्रेण– ॐ हूं हो सूर्यचन्द्रविशोधक स्वाहा इति। ततो वज्रवज्रघण्टां शिरसि दत्त्वा शङ्खोदकेनाभिषेचयेदिति। ततोऽभिषेकद्वयेन वाग्वज्रं शोधयित्वा वज्राङ्गुष्ठं दत्त्वा दक्षिणावर्तेन पुनः प्रदक्षिणं कृत्वा पूर्ववक्त्रे चित्तवज्रविशोधनार्थं पञ्चसु जन्मस्थानेष्वभिषेचयेद्वज्रव्रताभिषेके ऽनेन मन्त्रेण– ॐ अ आ ए ऐ अर् आर् ओ औ अल् आल् विषयेन्द्रिय-विशोधनि स्वाहा।

इसके बाद रत्नों की बारी आती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियाँ ही वज्र हैं। इन्द्र, नील, पद्मराग, चन्द्रकान्त, कर्केतन और मरकत ही प्रधान हैं। और लोहा, सुवर्ण, चाँदी, ताम्र तीक्ष्णाय वे अयस्कान्त हैं। तथा मध्यम रत्नों में मुक्ता, प्रबालराज, पट्टशूल, मणि एवं षड्बिन्दु हैं। अधम रत्नों में स्फटिक, जीव, जाति, डोहरि, काच हरितमणि हैं इन्हें अपने सामर्थ्य के अनुसार लेना चाहिए। अब देवतागणों के मणियाँ आज्ञाचक्रवर्ती के महारत्नाभिषेक में पञ्चवर्ण होते हैं। उनके अभाव में पञ्चवर्ण सौरभ्य पुष्प ही कहलाते हैं यही दरिद्रता का नियम है। हरित रत्न के अभाव में विजय शङ्ख का प्रयोग होता है। उसी प्रकार नील रत्न पूर्वापरजयविजयघट में प्रयुक्त होता है। काला पूर्व आग्नेय घड़े में होता है। लाल दक्षिण नैॠत्य के घड़े में होता है। पीला पश्चिम व्यायव्य घड़े में होता है। इस प्रकार अयस्कान्त, तीक्ष्ण, ताम्र, रौप्य तथा सुवर्ण के होते हैं। तथा औषधियाँ भी हैं। एक भाग जय-विजय घड़े में, द्विभाग पूर्व की अग्नि में, तीन भाग यमदैत्य में, चतुर्भाग उत्तर और ईशान में, पाँचवा भाग पश्चिम वायव्य में होते हैं। जैसे गुटिका के भेद से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सस्य होते हैं– भिन्न तथा पूर्वोक्त कक्षपुट गन्धद्रव्य भी पाँच होते हैं। इसी प्रकार लौह रत्न, वनौषधियाँ, धान और सुगन्धित द्रव्य घड़ों में प्रक्षिप्त कर उनकी संख्या २५ होती है, उन्हीं से फिर पोटलिका बनाकर विजय शङ्ख में निक्षिप्त करें जहाँ पानी भी पूर्ण होना चाहिए। इससे पाँच जन्मस्थानों में अभिषेक करें तथा उष्णीष में और स्कन्धों में भी अभिषेक करें। फिर कटि के निम्न भाग में भी अभिषेक करें। फिर कुलदेवता के विशोधन के लिए पुष्प प्रक्षेपण मन्त्र इस प्रकार है – ॐ सर्वतथागत कुलविशोधनि स्वाहा। इस मन्त्र से आचार्य शिष्य के द्वारा पुष्प अर्पित करायें। इस मन्त्र से आँख खोल देना चाहिए – ॐ दिव्यनयनम् उद्घाटयामि स्वाहा। उसके बाद कुलदेवता मण्डल के नायक को आगे करके समस्त मण्डल का दर्शन करायें। उसके बाद पूर्वद्वार में कुलशुद्धि करके आचार्य अपने वाम हाथ से शिष्य को हिलाकर कर्मवज्री के साथ प्रदक्षिणा करके उत्तरद्वार में ले जाकर वहाँ पर कायशुद्धि के लिए तारा देवी के मन्त्रों से सभी कलशों में पानी लेकर विजय शङ्ख में प्रक्षिप्त करें। फिर उदक अभिषेक में फिर पाँचों जन्मस्थलों में अभिषिक्त करें इस मन्त्र से – ॐ आ ई ॠ ऊ ॡ पञ्चधातु विशोधनि स्वाहा। फिर मुकुटाभिषेक में पाँच जन्मस्थानों में इस मन्त्र से अभिषिक्त करें – ॐ अ इ ऋ उ ऌ पञ्चतथागत परिशुद्ध स्वाहा। उसके बाद रत्नहेममुकुट या वस्त्र के मुकुट का बन्धन करें। इस प्रकार दो अभिषेकों से धातु और स्कन्धों के विशुद्धि के द्वारा कायविशुद्धि होती है। काय वज्र भूमि में काय विशुद्धि करके दायें की ओर घुमकर फिर दायें द्वार पर वाग्विशुद्धि के लिए पाँच जन्मस्थानों में अभिषिक्त करके पट्टाभिषेक करें इस मन्त्र से – ॐ अ आ अं अः ह हा हँ हः हो फ्रें दशपारमिता परिपूरणि स्वाहा। फिर रत्नपट्ट को या सुवर्ण पट्ट को उनके अभाव में पुष्पपट्ट को ललाट में बाँध देवे। फिर वज्रवज्र घण्टाभिषेक में पाँच जन्मस्थानों में निम्न मन्त्र से अभिषेक करें – ॐ हूँ हो सूर्यचन्द्र विशोधक स्वाहा। फिर वज्र – वज्रघण्टा को शिर में देकर शङ्खोदक के द्वारा अभिषेक करें। फिर अभिषेक द्वय से वाग्वज्र का शोधन करके वज्राङ्गुष्ठ को देकर दक्षिण परिक्रमा द्वारा फिर प्रदक्षिणा करके पूर्व मुख में चित्तवज्र के विशोधन के लिए पाँच जन्मस्थानों में अभिषिक्त करें – इस मन्त्र से – ॐ अ आ ए ऐ अर् आर् ओ औ अल् आल् विषयेन्द्रिय विशोधनि स्वाहा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ततः श्रोत्रादिषु पुष्पं दत्त्वा पुनर्नामाभिषेके पञ्चसु जन्मस्थानेष्व-भिषिच्यानेन मन्त्रेण– ॐ ह हा य या र रा व वा ल ला चतुर्ब्रह्मविहारविशुद्ध स्वाहा इति। ततो हस्तपादेषु पुष्पमालां बद्ध्वा कटकनूपुरादीनामभावे ततो नामाभिषेकेण व्याकुर्यात्। अमुकवज्रस्त्वमिति कृत्वा। ततो ज्ञान-विशुद्धिनिमित्तं चित्तवज्रं शोधयित्वाभिषेकद्वयेन पुनर्दक्षिणावर्तेन शिष्यमानयित्वा पश्चिमवक्त्रे पञ्चसु जन्मस्थानेष्वनुज्ञाभिषेके ऽभिषिच्यानेन मन्त्रेण– ॐ हं क्षं धर्मचक्रप्रवतर्क स्वाहा इति। अभिषेकं दत्त्वा काय-वाक्चित्तज्ञानवज्राणि सप्ताभिषेकैर्विशोध्य ततः शिष्याय वज्रं वज्रघण्टां करे दत्त्वा अमुकवज्र ताभ्यामाचार्यो वज्रं वज्रघण्टां प्रदाय प्रवरकरुणया देशयेच्छुद्ध धर्ममित्यनेन सार्धश्लोकद्वयेन। तद्यथा–

अब, इसके बाद श्रोत्र आदि में पुष्प देकर फिर नामाभिषेक में पाँच जन्मस्थानों में अभिषेक किए जाने पर इस मन्त्र का उच्चारण किया जाता है – ॐ ह हा य या र रा व वा ल ला चतुब्रह्मविहार विशुद्ध स्वाहा। फिर हाथ और पैरों में पुष्पमाला को बाँधकर कटकनूपुरादि के अभाव में, फिर नामाभिषेक के द्वारा व्याकृत करना चाहिए। अब यह वज्र हो। फिर ज्ञानविशुद्धिनिमित्त चित्तवज्र को शोधन करके दो अभिषेकों से फिर दक्षिणावर्त के द्वारा शिष्य को लाकर पश्चिमवक्त्र में पञ्च जन्मस्थान में अनुज्ञाभिषेक में इस मन्त्र से अभिषेक किया जाता है– ॐ हँ क्षं धर्मचक्रप्रवर्तक स्वाहा। अभिषेक देकर काय, वाक्, चित्तज्ञान वज्र सप्त अभिषेकों से शोधित करके फिर शिष्य को वज्र और वज्रघण्टा को उसके हाथ में देकर आप वज्र हैं इस प्रकार उन दोनों से आचार्य वज्र और वज्रघण्टा देकर प्रवर करुणा के द्वारा शुभधर्म के द्वारा दो और आधा श्लोकों से देशना करें। जैसाकि–

कुर्यात् प्राणातिपातं खलु कुलिशकुले ऽसत्यवाक्यं च खड्गे
रत्ने हार्यं परस्वं वरकमलकुले ऽप्येव हार्या परस्त्री॥
मद्यं दीपाश्च बुद्धाः ससकलविषयाः सेवनीयाश्च चक्रे
डोम्ब्याद्याः कर्तिकायां ससकलवनिता नावमन्याः खपद्मे।
देया सत्त्वार्थहेतोः सधनतनुर् इयं न त्वया रक्षणीया
बुद्धत्वं नान्यथा वै भवति कुलसुतानन्तकल्पैर्जिनोक्तम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तोयं तारादिदेव्यो मुकुट इह जिनाः शक्तयो वीरपट्टो
वज्रं घण्टार्कचन्द्रौ व्रतमपि विषया नाम मैत्र्यादियोगः।
आज्ञा सम्बोधिलक्ष्मीर्भवभयमथनी कालचक्रानुविद्धा
एते सप्ताभिषेकाः कलुषमलहरा मण्डले संप्रदेयाः॥

इति सप्ताभिषेकविधिं मण्डले कृत्वा ततः शिष्याय बुद्धाधिष्ठानं चिन्तयेत्। आचार्यो ज्येष्ठकनिष्ठाद्यर्थं संवत्सरादिकमुद्घोषयेत्। इहामुक-संवत्सरे ऽमुककल्किराजधर्मदेशनायाममुकमासे ऽमुकपूर्णिमायाममुक-वारेऽमुकतिथावमुकनक्षत्रेऽमुकयोगेऽमुककरणे मयामुकवज्राचार्येणामुक-शिष्योऽभिषिक्तः परमादिबुद्धेऽन्ये वा मण्डले सप्ताभिषेकैः। व्याकृतो-ऽनुज्ञातो मया लौकिकसिद्धिसाधनायाकनिष्ठभुवनपर्यन्तं नायकत्वेन सर्वसत्त्वानां पुण्यज्ञानफलाप्तये इति सप्ताभिषेकनियमः।

सप्ताभिषेक विधि को मण्डल में करके फिर शिष्य के लिए बुद्धाधिष्ठान का चिन्तन करें। आचार्य ज्येष्ठ और कनिष्ठ के लिए संवरसरादि का उद्घोष करें। यहाँ इस सम्वत्सर में, अमुक कल्किराज धर्मदेशना में, अमुकमास में, इस पूर्णिमा में, इस बार में, इस तिथि में, इस नक्षत्र में, इस योग में, इस करण में, मैं अमुक वज्राचार्य के द्वारा अमुक शिष्य का अभिषेक किया गया है। परम आदि बुद्ध में या अन्य बुद्ध में सप्त अभिषेकों के द्वारा। व्याकृत और अनुज्ञ मैंने प्रदान किया है। लौकिक सिद्धि साधना के लिए अकनिष्ठ भुवन पर्यन्त नायकत्वरूप से सभी सत्त्वों का पुण्यज्ञान फल प्राप्ति के लिए यही सप्ताभिषेक नियम है।

इहान्यतन्त्रान्तरे यदुक्तं पञ्चतथागतविशुद्ध्या पञ्चाभिषेका बाल-जनावतारणे। वैरोचनेनोदकाभिषेको रत्नसम्भवेन मुकुट इति। तत्र पूर्वापरविरोधः। सर्वतन्त्रेषु मंण्डले पुष्पमोक्षेण शिष्यस्य कुलदेवता। तथा मुकुटिन्या तत्कुलमुद्रया तस्य सिद्धिरिति भगवतो नियमः। तेन नामसङ्गीत्यां पञ्चबुद्धा त्ममुकुट इति वचनात्। यत्र पुष्पं पतति स तथागतो मध्ये मौलौ भवति न सर्वत्र रत्नसम्भवः। एवं लघुतन्त्रे तोयादिविशुद्धिर्नास्ति। अपरविधेर्बलवत्त्वादिति।

अन्य कुछ तन्त्रों में पञ्चतथागत के विशुद्धि से पञ्चाभिषेक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बालजनावतारण के लिए कहा गया है एवं वैरोचन के द्वारा उदकाभिषेक एवं रत्नसंभव से मुकुट कहा गया है - इसमें पूर्वापरविरोध दृष्टिगोचर होता है। सर्वतन्त्रों में मण्डल में पुष्प के निक्षेप द्वारा शिष्य की कुलदेवता कही गयी है। उस मुकुटिनी के द्वारा उस कुलमुद्रा से उसकी सिद्धि होती है यही भगवान् का नियम है। इससे नामसङ्गीति में पञ्चबुद्धात्म मुकुट कहा गया है। जहाँ पुष्प का पतन होता है वह तथागत मध्य में मूल होते हैं सभी जगह रत्नसम्भव नहीं होते। इस प्रकार लघुतन्त्र में तोय आदि विशुद्धि नहीं होती। दूसरे विधि की बलवत्ता के द्वारा ही यह होता है।

इदानीं कुर्यात् प्राणातिपातमित्याद्यर्थ उच्यते— इह प्राणाति-पातादयः समया द्विधा नेयार्थेन नीतार्थेन बाह्या अध्यात्मिकाश्चेति। तत्र बाह्ये प्राणातिपातं भगवान्यत् कुर्यात्तत् पञ्चानन्तर्यकारिणां बुद्धशासना-पकारिणां समयभेदिनामिति। तदेव पञ्चानन्तर्यं पूर्वापरं ज्ञात्वा। इह कश्चित् पूर्वं पञ्चानन्तर्यकारी पश्चात् पुण्यकर्ता भवति चण्डाशोकधर्माशोकवत्। तस्मात्तस्यापकारतो नरकं भवति मन्त्रिणं शुभाशुभकर्मापरिज्ञानात्। तेन यावत् पञ्चाभिज्ञा न भवन्ति तावन्मन्त्रिणा क्रूरकर्म न कर्तव्यं शान्तिपुष्टि-वश्याकृष्टिभिर्विना। एवं मृषावादः परोपकारतो ऽदत्तादानमपि परस्त्री-ग्रहणमपि समयसेवा वर्णावर्णाभिगमनं स्वशरीरपर्यन्तं दानमपि न स्वार्थत इति नियमः। यदा आमरणान्तं पञ्चानन्तर्यं करोति तदा पूर्वसाधितं मन्त्रं क्रोधकुले अक्षोभ्यसमाधिनानेन मारणे कुर्याद्भगवानिति नेयार्थः। एवममार्गे पतितानाम् अभ्युद्धरणाय मृषावाक्यं वक्तव्यं न स्वार्थतः। एवमदत्तादानं प्रेतगतिगमननिवारणाय न स्वार्थतः। तथा परस्त्रीग्रहणं निर्यग्गतिगमन-निवारणाय न स्वार्थतः। समयान् पञ्चामृताद्यान् सेवयेत् कुलग्रहविनाशाय। एवं कर्ममुद्राप्रसिद्ध्यर्थं डोम्ब्याद्याः स्त्रियो नावमन्येत। पुण्यसम्भाराय महादानं ददाति। एव खड्गकुले रत्नकुले पद्मकुले चक्रकुले कर्तिकाकुले मन्त्रान् साधयित्वा सामर्थ्ययुक्तः सन् योगी सर्वं कुर्याद्यथा लोके हास्यं न भवतीति नेयार्थः।

अब प्राणातिपात के विषय में बता रहे हैं - यहाँ प्राणातिपात आदि सिद्धान्त दो प्रकार के हैं नेयार्थ और नीतार्थ तथा बाह्य एवं आध्यात्म के भेद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से। यहाँ बाह्य में जो प्राणातिपात होता है भगवान् दूसरा ही करते हैं वह भी पञ्च आनन्तर्य कारी, बुद्धशासन के विरोधी तथा सिद्धान्तभेदियों को दृष्टि में रखकर। वहीं पञ्चानन्तर्य है जिसे पूर्वापर का ज्ञान करके किया जाता है। जैसे कोई पहले पञ्चानन्तर्यकारी होते हुए भी बाद में पुण्यकर्ता होता है चण्डाशोक एवं धर्माशोक के तरह, अतएव शुभ और अशुभ के ज्ञान न होने से उस अपकार से उसके लिए नरक उत्पन्न होता है। इसीसे जब तक पञ्चअभिज्ञ नहीं होते तब तक मन्त्री (मन्त्रज्ञ) को क्रूर कर्म नहीं करने चाहिए - विना शान्तिपुष्टि वश्य - आकृष्य कर्मों के (यही बुद्ध नियम है)। इस प्रकार झूठ बोलना, यहाँ तक कि परोपकार के लिए भी, अदत्त दान ग्रहण करना, परस्त्रीग्रहण करना, सिद्धान्त ग्रहण, वर्णावर्णाभिगमन, जब तक जीवन है तब तक स्वार्थ के लिए दान करना भी वर्जित है। यही नियम है। जब मृत्यु पर्यन्त पञ्चानन्तर्य करता है तब पूर्वसाधित मन्त्र को क्रोधकुल में अक्षोभ्यसमाधि के द्वारा मारण करना चाहिए यह नेयार्थ है। इसप्रकार अमार्ग में पतित लोगों के उद्धार के लिए ही झूठ बोलना है न कि अपने स्वार्थ के लिए। एवमेव, अदत्तादान भी प्रेतगति में गए हुए प्राणियों की उस गति को रोकने के लिए लेना है न कि अपने स्वार्थ के लिए। तिर्यक (तीरछी) योनि में गए हुए प्राणियों के कल्याणार्थ परस्त्रीग्रहण करना है न कि अपने स्वार्थ के लिए। कुल के झगड़े को नष्ट करने के लिए पञ्चामृत आदि समय को लेना है न कि अपने स्वार्थ के लिए। इसी प्रकार कर्ममुद्रा के प्रसिद्धि के लिए डोम्बी आदि स्त्रियों का अपमान नहीं करना चाहिए। पुण्यसम्भारा के लिए महादान देना है। इसी प्रकार खड्गकुल में, रत्नकुल में, पद्मकुल में, चक्रकुल में, कर्तिकाकुल में, मन्त्रों की सिद्धि करके सामर्थ्य युक्त होकर योगी सब कुछ करें जिससे लोक में उपहास न हो। यही नेयार्थ है।

इदानीं नीतार्थ उच्यते– इह स्वशरीरे प्राणस्यातिपातः प्राणातिपातः। कुलिशकुले उष्णीषे निरोधं कुर्यात्। तेन प्राणातिपातेन योगी ऊर्ध्वरेता भवतीति नियमः। असत्यवाक्यं च खड्गे। इहासत्यं नामाप्रतिष्ठितवचनं नेयार्थेन। नीतार्थेन सर्वसत्त्वरुतं वाक्यं यौगपद्येन सत्त्वानां धर्मदेशकं तदेव हृदये ऽनाहतध्वनिरिति नियमः। रत्ने हार्यं परस्वम्। परस्वमिति इह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परो वज्रसत्त्वः। तस्य स्वं रत्नं चिन्तामणिस्तस्यापहरणं रत्नकुले कण्ठेऽष्टम-भूमिस्थान इति नियमः। वरकमलकुले ऽप्येव हार्या परस्त्रीति। परस्त्री महामुद्रा तस्या हरणं परस्त्रीग्रहणम्। सा हार्या कमलकुले ललाटे दशमभूमिस्थान ऊर्ध्वरेतसा इति नियमः।

अब नीतार्थ का वर्णन करते हैं– यहाँ अपने शरीर में प्राण का अतिपात (मारण) ही प्राणातिपात है। कुलिश कुल में उष्णीष में निरोध करें। उप प्राणातिपात से योगी ऊर्ध्वरेता हो जाता है। असत्य वाक्य खड्ग में प्रयोग होता है। यहाँ असत्य का तात्पर्य अप्रतिष्ठित वचन से है यह नेयार्थ है। नीतार्थ के द्वारा सभी प्राणियों के द्वारा अभिव्यक्त वाक्य एक साथ प्राणियों को धर्मोपदेशक होता है वही हृदय में अनाहत ध्वनि के रूप में है, यह नियम है, परस्व रत्न के रूप में ग्राह्य है। पर का अर्थ वज्रसत्त्व है। उसका रत्न ही चिन्तामणि है उसके अपहरण रत्नकुल में कण्ठ में अवस्थित आठवाँ भूमि स्थान है यह नियम है। वरकमल कुल में ही परस्त्री अपहरण योग्य होती है। परस्त्री महामुद्रा है उसका हरण ही परस्त्रीहरण कहा गया है। उसे कमल कुल अर्थात् ललाट में दशभूमिस्थान में उर्ध्वरेतस योगी के द्वारा रखा जाता है यही नियम है।

मद्यं दीपाश्च बुद्धाः ससकलविषयाः सेवनीयाश्च चक्र इति। इह मद्यं सहजानन्दम्। दीपा गोक्वादिकानि पञ्चेन्द्रियाणि। अध्यात्मनि बुद्धाः पञ्चामृताश्चक्रे नाभिकमले सेवनीया भक्षणीयाः। बाह्ये विण्मूत्रशुक्रास्त्रावः कर्तव्य इति नीतार्थः। डोम्बाद्याः स्त्रियः कर्तिकायां गुह्यकमले नावमन्याः खपद्मे योनौ मन्थाने ब्रह्मचर्येणेति। बाह्ये शुक्राच्यवनेनेति नियमः। देया सत्त्वार्थहेतोः सह धनेन पुत्रकलत्रादिभिः सार्द्धं स्वतनुः प्रदेया पुण्यसम्भा-रार्थम्। एवं शीलसम्भारार्थं स्त्रियो नावमन्याः खपद्मे। अतः पुण्यशील-सम्भाराभ्यां ज्ञानसम्भारः। एवं सम्भारत्रयेण सम्यक्सम्बुद्धत्वं ते भवति हे कुलपुत्र नान्यथानन्तकल्पैर्यज्जिनैरुक्तमिति विशुद्धधर्मदेशनानियमः। इह सर्वतन्त्रेषु।

यहाँ मद्य सहजानन्द अवस्था है। दीप पञ्च ज्ञानेन्द्रिय हैं। बुद्ध और पञ्चामृत नाभिकमल चक्र में सेवनीय–भक्षणीय हैं। नीतार्थ में विष्ठा, मूत्र और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शुक्र का स्त्राव करना यह अर्थ है। डोम्बी आदि स्त्रियाँ कर्तिका में, गुह्यकमल में अपमानित न हों और आकाश कमल में - योनि में मन्थान में सेवनीय हैं- ब्रह्मचारी के द्वारा। बाह्य में शुक्र के (अपतन) अक्षरण के द्वारा सेव्य हैं। समग्र प्राणियों के हित के लिए धन के साथ पुत्रकलत्र आदि के साथ अपनी पुत्री भी दे देनी है - पुण्यसम्भार के लिए। इस प्रकार शीलसम्भार के लिए स्त्रियों का अपमान आकाश कमल में न करें। अतः पुण्य-शील संभार के द्वारा ज्ञान सम्भार का उदय हो जाता है। इस प्रकार तीन सम्भारों से सम्यक्सम्बुद्धत्व शिष्य की होती है - तुम्हारी होती है हे कुलपुत्र! अन्यथा अनन्त - कल्पों में जो जिनों ने कहा है वही विशुद्ध धर्मदेशना नियम है। यहाँ सभी तन्त्रों में।

अपरशुद्धिश्च या सान्येत्यादिनोच्यते।
अन्या धात्वादिशुद्धितः॥ ४ ॥

दूसरी शुद्धि भी अन्या सा इत्यादि वाक्यों से बताया गया है। अन्या शुद्धि प्रकार धातु आदि की शुद्धि से बताया गया है॥

उदकं धातुसंशुद्धिर्मौली स्कन्धविशोधनम्।
पट्टः पारमिताशुद्धिर्वज्रघण्टा महाक्षरम्॥ ५॥

उदक (पानी) धातु की शुद्धि, मौली, स्कन्ध विशोधन, पट्ट, पारमिताशुद्धि, वज्रघण्टा एवं महाक्षर बताए गए हैं॥

बुद्धभाषा न विच्छिन्ना अर्केन्द्वेकत्रशोधनम्।
विषयेन्द्रियसंशुद्धिः स्याद्वज्रव्रतमच्युतम्॥ ६॥
नाम मैत्र्यादिशुद्धिः स्यादनुज्ञा बुद्धशोधनम्।
एते सप्त सेका देया वर्तयित्वा तु मण्डलम्॥ ७॥

इह तोयाभिषेको यः स पृथिव्यादिपञ्चधातुशुद्धिर् निरावरणतेति। सावरणपृथिव्यादिपञ्चधातूनां लोचनादिपञ्चविद्याभिर् एव पूरणात्तोया-भिषेकं लक्षयतीत्यर्थः। एवं मौलीति मुकुटाभिषेको रूपादिपञ्चस्कन्ध-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शोधनं निरावरणता। रूपादिपञ्चस्कन्धानां वैरोचनादिभिरेव पूरणं मुकुटाभिषेक इति यावत्। धूमादयो दश पारमिताः। तेषां शुद्धिः परिपूरणं पृथगालम्बनम्। तदर्थं वीरपट्टाभिषेकः। वज्रं महाक्षरं घण्टा बुद्धभाषेत्युक्तम्। सकलसंसारदुःखेनाभेद्यं यत्तद्भिन्नत्वेन महाक्षरसुखमेव वज्रम्। अनन्तदेवमनुष्यादीनां तत्तद्रुतैर् अविच्छिन्ना धर्मामृतदेशनार्थाअनाहतध्वनिस्वभावा वज्रघण्टा। अर्केन्द्वेकत्रेति। प्राणापानयोः सव्यावसव्यवाहयोरेकत्वेनावधूत्यां प्रवेशः। तदर्थं वज्रवज्रघण्टयोः कराभ्यामालिङ्गनाभिनयः कर्तव्यः। वज्रवज्रघण्टाभिषेकश्चतुर्थः। वज्रव्रताभिषेको रूपादिविषयचक्षुरादीन्द्रियसंशुद्धिः। प्राकृतविषयेन्द्रियविज्ञानानां निरोधाद्दिव्यचक्षुरादीन्द्रियैर्दिव्य विज्ञानानां शून्यताबिम्बविषयेऽजस्रप्रवृत्तिनियमेन महामुद्रासिद्धिप्रापकत्वाद् वज्रव्रताभिषेकः पञ्चमः। ब्राह्मणादिवर्णानामेककल्कत्वाभिप्रायेणामुकवज्र इति नामकरणान् मैत्र्यादिचतुर्ब्रह्मविहारपरिपूर्त्या सर्वकालं रागद्वेषादिविशुद्धिर्निरावरणत्वेनेति नामाभिषेकः षष्ठः। अपरिमितसत्त्वधातोर्यथाशयवशेन संवृतिपरमार्थविभागेन परमगुह्यवज्रयानदेशनार्थमनुज्ञाभिषेको बुद्धत्वनिष्पादकः सप्तमः। एते सप्ताभिषेका रजोमण्डलं विहाय नान्यत्र पटादिमण्डले देयाः। कुम्भादयस्तु सेका मण्डलवर्तनमन्तरेणापि देयाः॥

यहाँ पर जलाभिषेक का अर्थ है पृथिवी आदि पञ्च धातुगणों की शुद्धि अर्थात् आवरणरहितता। आवरणयुक्त पृथिवी आदि पञ्च धातुओं की लोचना आदि पञ्च विद्याओं के द्वारा ही पूर्ण होने से तोयाभिषेक की बात कही गई है। मुकुटाभिषेक ही पञ्च स्कन्धों को शोधन यानी निरावरणता है। रूप आदि पञ्च स्कन्धों की वैरोचन आदि से ही पूर्ति होती है। रूप आदि पञ्च स्कन्धों की वैरोचन आदि से ही पूर्ति होती है यही मुकुटाभिषेक है। धूम आदि दशपारमितायें हैं। उनकी शुद्धि–परिपूरण ही पृथक् आलम्बन है। उसके लिए वीर पट्टाभिषेक कहा गया है। वज्र महक्षर घण्टा बुद्धभाषा जो कहा गया है – समस्त संसार के दुःख से अभेद्य होने से महाक्षर सुखरूप वज्र है। अनन्तदेव और मनुष्य आदि के कथनानुसार अविच्छिन्न धर्मामृत देशना के अर्थ अनाहत ध्वनि स्वभाव युक्त वज्रघण्टा है। प्राण और अपान का दक्षिण एवं वाम नासिका में जो वहाव होता है उनका एकीकरण करके अवधूती में वहाव ही अर्क इन्दु एकत्र का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थ है। उसके लिए वज्र और वज्रघण्टा का हाथों से आलिङ्गन का अभिनय करना चाहिए। वज्र और वज्रघण्टाभिषेक चौथा है। वज्रव्रत का अभिषेक रूपादि विषय और चक्षुरादि इन्द्रियों की शुद्धि ही है। प्राकृत विषय इन्द्रिय तथा विज्ञानों के निरोध से दिव्य चक्षुरादि इन्द्रिय, दिव्य विज्ञानों के उत्पत्ति पूर्वक उनके द्वारा शून्यता विषयबिम्ब में निरन्तर प्रवृत्ति के नियम से महामुद्रा की सिद्धि होने से वज्रव्रताभिषेक पञ्चम की पूर्णता होती है। ब्राह्मण आदि वर्णों का एक ही बीज होने से इसी अभिप्राय के कारण अमुक (यह) वज्र यह नाम रखने से मैत्री आदि चार ब्रह्मविहार के परिपूर्ति के द्वारा सर्वदा राग द्वेश आदि विशुद्धि पूर्वक आवरण साहित्य के उपलब्ध होने से घण्टा अभिषेक कहा गया है। अपरिमित सत्त्व धातु का यथा आशय के वश से संवृति और परमार्थ के विभाग पूर्वक परम गुह्य वज्रयान के देशना के लिए अनुज्ञाभिषेक बुद्धत्व का निष्पादक सप्तम अभिषेक कहा गया है। वे ही सात अभिषेक रजो मण्डल को छोड़कर अन्य किसी भी पटादि मण्डल में नहीं देने चाहिए। कुम्भ आदि तो अभिषेक मण्डल में न रहने पर भी देने ही होंगे।

पूर्वोद्दिष्टैकादशसेकानां मध्ये लौकिकलोकोत्तरसिद्धिसौधसोपान-भूतानधरसंवृतिरूपान् सप्तसेकान् व्याख्याय योगिसंवृतिभूतान् लौकिक-सिद्धिसाधनान् परमार्थनुकूलांस्त्रिविधसेकान् कुम्भ इत्यादि-नोद्दिशति–

पहले बताए गए एकादश अभिषेकों में से लौकिक, लोकोत्तर सिद्धि रूपी विशाल भवन के सोपानभूत उपर के संवृतियों को सात अभिषेकों में व्याख्या करके योगिसंवृति के रूप में रह रहे लौकिक सिद्धि साधनों को परमार्थ कुल के तीन प्रकार के अभिषेकों को कुम्भ इत्यादि वाक्य से व्याख्या करते हैं–

कुम्भो गुह्याभिषेकश्च प्रज्ञाज्ञानाभिधानकः।

दिग्वर्षं यावदेका भवति दशविधा दर्शनस्पर्शनीया
तस्मादालिङ्गनीयाः सरसजलधयः सेवनीयाश्चलाद्याः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विंशद्वर्षोर्ध्वमुद्रा परमभयकरा कोधभूतासुरांशा
सेकार्थं षट्चतस्त्रः समसुखफलदाश्चापरा भावनार्थम्॥
श्रीप्रज्ञास्पर्शनं यत् प्रथममपि कुचे कुम्भसेकः स एव
गुह्याद्गुह्याभिषेको भवति शशधरास्वादनालोकनाभ्याम्।
प्रज्ञाज्ञानाभिषेके सकलजिनकुलैः शोधयित्वाङ्गवक्त्रैर्
मुद्रा शिष्याय देया जिनमपि गुरुणा साक्षिणं चात्र कृत्वा॥
सर्वालङ्कारयुक्तां द्रुतकनकनिभां द्वादशाब्दां सुकन्यां
प्रज्ञोपायात्मकेन स्वकुलिशमणिना कामयित्वा सरागाम्।
ज्ञात्वा शिष्यस्य शुद्धिं कुलिशमपि मुखे क्षेपयित्वा सबीजं
पश्चाद्देया स्वमुद्रा त्वथ पुनरपरा धूममार्गादियुक्ता॥
त्रस्ता विभ्रान्तचित्ता शठपरवशगा व्याधियुक्ता प्रसूता
क्रुद्धा स्तब्धार्थलोभानृतकलहरता स्वाङ्गहीनाविशुद्धा।
एताः प्रज्ञाभिषेके सुनिपुणगुरुणा वर्जनीया नरेन्द्र
पूर्वोक्ता बुद्धभक्ता गुरुसमयधरा वन्दनीयार्चनीयाः॥

इदानीमुत्तराभिषेकविधानं कलशादित्रयमुत्तरसेक उच्यते। इह कलशादिसेकार्थं मुद्रां दशवर्षं यावद्वर्जयेत् कुमारिकाम्। यत एका प्रज्ञापारमिता दशविधा भवति दानादिविशुद्ध्या प्रतिवार्षिका। अत्रापि यावद्दन्तपातो न भवति तावज्ज्ञानधातुरव्ययत्वात्। ततो दन्तपाता-दाकाशधातुः। एवं धातुद्वयेन कुमारिकाक्षतयोनिः। सा तेन दर्शनीया स्पर्शनीया पूजनीयेति। तस्माद्दशवर्षादेकादशवर्षमादिं कृत्वा यावद्विंशति-वर्षाण्यालिङ्गनीया। षड्भिः सह चतस्त्रः सेवनीया वायुधात्वादयः। अतो वायुधातुरेकादशवर्षे। द्वादशे तेजः। त्रयोदशे तोयम्। चतुर्दशे पृथिवीति चतस्त्रः। पञ्चदशे शब्दः। षोडशे स्पर्शः। सप्तदशे रसः। अष्टादशे रूपम्। एकोनविंशतिमे गन्धः। विंशतितमे धर्मधातुरिति। ततो विंशतिवर्षादूर्ध्वं मुद्रा परमभयकरा क्रोधभूतासुरांशा इति। इह विंशतिवर्षादेकविंशतिवर्ष-मारभ्य प्रत्येकं वार्षिका यथासङ्ख्यम् अतिनीला। अतिबला। जम्भी। मानी। स्तम्भी। मारीची। चुन्दा। भृकुटी। वज्रशृंखला। रौद्राक्षीति दशक्रोध-देव्यः। तत एकत्रिंशद्वर्षादष्टौ भूतांशाः– चर्चिका। वाराही। रौद्री। ऐन्द्री। ब्राह्मणी। महालक्ष्मी। कौमारी। वैष्णवीति। तत एकोनचत्वारिंशद्वर्षादष्टाव-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुरांशाः– श्वानास्या। शूकरास्या। व्याघ्रास्या। जम्बुकास्या। गरुडास्या। उलूकास्या। गृधास्या। काकास्येति। षट्चत्वारिंशद्वर्षाणि यावन् मुद्रा भावनार्थम्। सेकार्थं पुनः षट् चतस्रः समसुखफलदास्तेजोधातुमारभ्य यावद्धर्मधातुरिति। वायुधातुररजस्त्वान्न ग्राह्यति नियमः।

कुम्भ और गुह्याभिषेक वे दोनों ही प्रज्ञा और ज्ञान के वाचक हैं।

अब, यहाँ उत्तराभिषेक विधान जो तीन कलशों की विधि है वही उत्तर सेक कहा गया है – वर्णन करते हैं। कलश आदि अभिषेक के लिए मुद्रा को दश वर्ष पर्यन्त की कुमारिका का वर्जन करने को कहा है। क्योंकि वही एक प्रज्ञापारमिता दश प्रकार की होती है – दान आदि की शुद्धि से एक एक वर्ष क्रम से, अतः उसे वर्जित किया गया है। यहाँ भी जब तक दाँत नहीं गिर जाते तब तक ज्ञान धातु रहता है अव्यय होने से। दन्तपात से आकाश धातु का उदय होता है। इस प्रकार दो धातुओं से कुमारिका अक्षत योनी होती है। इससे दर्शनीया, स्पर्शनीया और पूजनीया होती है। अतः ११ वर्ष से लेकर २० वर्षों तक की कन्या आलिङ्गन योग्य होती है। छहों के साथ चार सेवनीय हैं – वायु आदि धातु। वायुधातु ११वें वर्ष में होता है। १२वें में तेज। १३वें वर्ष में जल होता है। १४वें वर्ष में पृथिवी होती है यह ४था है। १५वें वर्ष में शब्द। १६ वर्ष में स्पर्श। सत्रहवें वर्ष में रस। १८वें वर्ष में रूप। १९वें वर्ष में गन्ध। २०वें वर्ष में धर्मधातु की उपस्थिति होती है। उसके बाद परम भयकरी मुद्रा उपस्थित होती है। जो क्रोधरूपी असुरों का अंश है अतएव भयकरी मुद्रा कही गयी है। यहाँ २०वें वर्ष के बाद २१वें वर्ष से प्रतिवर्ष यथाक्रम – अतिनीला, अतिबला, जम्भी, मानी, स्तम्भी, मारीची, चुन्दा, भृकुटी, वज्रशृंङ्खला, रौद्राक्षी – वे दश क्रोधदेवियाँ प्रकट होती हैं। फिर ३१वें वर्ष से ८ भूतांश होते हैं। वे हैं – चर्चिका, वाराही, रौद्री, ऐन्द्री, ब्राह्मणी, महालक्ष्मी, कौमारी तथा वैष्णवी। फिर ३९ वर्ष से ८ असुरांश होते हैं। वे हैं – श्वानास्या, शूकरास्या, व्याघ्रास्या, जम्बुकास्या, गरुडास्या, उलूकास्या, गृध्रास्या और काकास्या। ४६ वर्षों तक मुद्राभावना के लिए ही है। अभिषेक के लिए फिर ६ और चार समान सुख और फल देने वाली तेज धातु से आरम्भ का धर्मधातु तक संसेवनीय है। वायुधातु में रजोगुण होने से सेवन नहीं किया जाता है। यही नियम है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इहोत्तराभिषेको द्विधा। एकः सत्त्वावतारणार्थं मार्गपरिज्ञानाय तन्त्रश्रुताधिकारायेति। अपरो महाचार्यपददानाय देशककरणायेति।

उत्तराभिषेक दो प्रकार का है। एक – प्राणियों को बोधि में अवतरित करने के लिए, मार्ग ज्ञान के लिए और तन्त्र में पारङ्गत कराने के लिए है। दूसरा महाचार्य पद देने के लिए एवं उस ज्ञान की व्याख्या में सामर्थ्य लाने के लिए है।

अतः पूर्वाभिषेके तावत् त्रस्ता विभ्रान्तचित्तादिदोषरहिता द्वादशाब्दादिसुकन्या परिपाचिता शिष्येण गुरोः समर्पणीया। ततो ऽध्येषणादिकं कृत्वा शिष्यो गुरुमध्येषयति वक्ष्यमाणस्तुत्या। ततस्तुष्टो गुरुर्लोकसंवृत्या स्तनस्पर्शनं कारयति स्वमुद्रायाः। तेन कलशाभिष्कः स एव। ततो गुह्यपूजां कृत्वा शिष्यायामृतं ददाति मुद्रारविन्दं चालोकयति। तेन गुह्याभिषेको भवति शशधरास्वादनालोकनाभ्याम्। ततः प्रज्ञाज्ञानाभिषेके पञ्चकुलकलापिनीं कृत्वा ॐकारादिबीजैस्ततो मुद्रा शिष्याय देया पाणिव्याप्तिद्वन्द्वकरणाय च गुरुणा। जिनं वज्रसत्त्वं साक्षिणं कृत्वा। यथायं दुर्भगः सत्त्वो ऽस्याधिकाराय भावनादिके तन्त्रश्रवणाय न शिष्याणां तन्त्रदेशनाय मण्डललेखनायेति प्रथमं शिष्यावतारणाभिषेकनियमः। तथा हसितेनाचार्यो द्विगुणात्मकशुक्रसुखेन देवविशुद्ध्या। गुह्य इतीक्षणेन त्रिगुणात्मकविशुद्ध्या। पाणिव्याप्तिरिति चतुर्गुणात्मकविशुद्ध्या। द्वन्द्वमिति पञ्चगुणात्मकशुक्रसुखेन देवविशुद्ध्येति। लौकिकसंवृत्या सत्त्वावतारणाय चतुर्विधो ऽभिषेकः।

अतः प्रथम अभिषेक में त्रस्त दोष तथा विभ्रान्त चित्त दोषरहित, १२ वर्ष की सुकन्या जो परिपक्व है, शिष्य गुरु को समर्पित कर दे। फिर अध्येषण आदि करके शिष्य गुरु से प्रार्थना करता है – वक्ष्यमाण स्तुति वाक्यों द्वारा। फिर प्रसन्न गुरु लोक संवृति के द्वारा अपने मुद्रा से स्तन स्पर्श कराता है। उससे ही कलशाभिषेक होता है। फिर गुह्य पूजा करके शिष्य को अमृत पान कराता है साथ ही उसके मुख को भी देखता है। उससे गुह्याभिषेक होता है – चन्द्रआस्वादन तथा सूर्य का आलोक पूर्वक। उसके बाद प्रज्ञाज्ञानाभिषेक में पञ्चकुल में अवस्थितकरके ॐ कार आदि बीजों से मुद्रा शिष्य को देना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चाहिए – गुरु अपने दोनों हाथों में द्वन्द्वमुद्रा के द्वारा देता है। जिन अर्थात् वज्रसत्व को साक्षी बनाकर करना चाहिए। दुर्भाग्यशील प्राणी अपने अधिकार के लिए भावनादिक्रम में तन्त्रश्रवण के लिए शिष्यों को तन्त्र की देशना हेतु तथा मण्डललेखन के लिए भी पहले शिष्यावतारण अभिषेक नियम बताया गया है। इस प्रकार आनन्दित होकर आचार्य दो गुने शुक्र सुख से देवविशुद्धिपूर्वक उसे देता है। गुह्य इस प्रकार के इक्षण द्वारा त्रिगुणात्मक विशुद्धि से होता है। पाणिव्यासिका अर्थ चतुर्गुणात्मक व्यासि है। द्वन्द्व का अर्थ पञ्चगुणात्मक शुक्र सुख के द्वारा देव विशुद्धि कहा गया है। लौकिक संवृति से सत्त्वों के अवतरणार्थ चार प्रकार का अभिषेक बताया गया है।

ततः सर्वतन्त्रे श्रुते ज्ञाते सटीके महाधिपतित्वाय यथानुक्रमेणोक्ता दशविद्याः। समर्पणीया गृहस्थशिष्येन गुरवे। अत्र मूलतन्त्रे भगवानाह–

फिर सभी तन्त्रों के सुनने एवं जानने के बाद महाधिपति के लिए यथाक्रम दश प्रकार के बताए गए हैं। गृहस्थ शिष्य अपने गुरु को समर्पित कर दें। यहाँ मूल तन्त्र में भगवान् ने कहा है –

भागिनेया दुहित्री च भगिनी जननी तथा।
भार्याया जननी चैव मातुलस्य तथाङ्गना॥
पितुर्भ्रातुस्तथा भार्या भगिनी जनकस्य तु।
स्वमातुर्भगिनी चैव स्वभार्या वररूपिणी॥
ताराद्या धर्मधात्वन्ता दशविद्याः स्वगोत्रजाः।
सेककाले प्रदातव्याः शिष्येण मोक्षकाङ्क्षिणा॥
न ददाति गुरोर्विधा यद्येताः कुलरक्षणात्।
तदा सेको न दातव्यो ह्यन्याभिर्गृहवासिनाम्॥
मण्डले चभिषिक्ताभिरन्याभिः शूद्रजादिभिः।
भिक्षूणां श्रामणेराणां दातव्यो गुरुणा नृप॥
वाय्वाद्यास्तु क्रमाच्छूद्री क्षत्रिणी ब्राह्मणी तथा।
वैश्या डोम्बी च कैवर्ती नटिका रजकी तथा॥
चर्मकारी च चण्डाली धर्मधात्वन्तजा दश।
महाविद्याः समाख्याता भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भाञ्जी, पुत्री, बहन, माता और पत्नी की माता, मामा की पत्नी, पिता के भाई की पत्नी, पिता की बहन, माता की बहन, अपनी सुन्दरी भार्या, तारा आदि धर्मधातु पर्यन्त अपने गोत्र में समुत्पन्न दशविद्यायें अभिषेक के समय में मोक्ष के आकाङ्क्षी शिष्य अपने गुरु को समर्पित कर दे। गुरु की विद्या को कुल की रक्षा के लिए अन्य गृहस्थों को यह शिष्य अभिषेक न दें। मण्डल में अभिषिक्त अन्य शूद्र कुलों में समुत्पन्न कन्याओं के द्वारा गुरु भिक्षु-श्रामणेरों को अभिषेक दे सकता है। क्रमशः वायु आदि ही शूद्री, क्षत्रिणी, ब्राह्मणी, वैश्या, डोम्बी, कैवर्ती, नटिका, रजकी, चर्मकारी तथा चाण्डाली वे दश धर्मधातु से समुत्पन्न हैं। वे महाविद्या हैं, भुक्ति और मुक्तिरूप फल देने वाली हैं।

एवमुक्तक्रमेण दशपारमितादशवशितादशभूमिदशवलान्याभि-विशुद्धानि भवन्तीत्याधिपत्यकरणाय दशमुद्रा देया मण्डलाचार्य-पदाभिलाषिणेति तथागतनियमः। एवं दशमुद्राः समर्प्य शिष्यो गुरोस्तथा आदेशं प्रार्थयति। इदानीं मया किं कर्तव्यं हे भगवन् सर्वपारमिताप्राप्त। तत आचार्यो ब्रूते– इमां स्वकीयां भार्यां गृहीत्वा दशानां मध्ये तथा सार्धं ममाध्येषणां कुरु। भिक्षुश्रामणेराणां चण्डाली स्वभार्या कर्तव्या। ततो गुरुनियमेन तां गृहीत्वा कनकादिकुसुमैर्मण्डलं द्वे कुरुतः। ततो ऽध्येषयतः–

इस प्रकार के क्रम से दशपारमिता, दशवशिता, दशभूमि और दश बलों के द्वारा विशुद्ध होते हैं, इससे आधिपत्य करने के लिए दश मुद्रायें देने चाहिए जो अपने को मण्डलाचार्य पद में अभिषिक्त करना चाहता है उस आचार्य के लिए यह नियम है। इस प्रकार दश मुद्राओं को समर्पित करके शिष्य गुरु को आदेश के लिए प्रार्थना करता है। सर्वपारमिता प्राप्त करने वाले हे गुरुदेव! इस समय मुझे क्या करना चाहिए? फिर गुरु बोलते हैं - यह अपनी पत्नी को लो और दशस्त्रियों के बीच में उसके साथ रहकर मेरी अध्येषणा (प्रार्थना) करो। भिक्षु और श्रामणेर चाण्डाली को अपनी भार्या बनायें। फिर गुरु के नियमानुसार उसे लेकर सुवर्ण आदि पुष्पों से दो मण्डल बनायें। उसके बाद प्रार्थना करें -

नमस्ते कालचक्राय सर्वावरणहानये।
परमाक्षरसुखापूर्ण ज्ञानकाय नमो ऽस्तु ते॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शून्यताकरुणाभिन्नं बोधिचित्तं यदक्षरम्।
तेन सेकेन मे नाथ प्रसादं कुरु साम्प्रतम्॥
पुत्रदारादिभिः सार्धं दासो ऽहं तव सर्वदा।
आबोधिमण्डपर्यन्तं नान्यो ऽस्ति शरणं मम॥

सभी आवरण को नष्ट करने वाले काल चक्र को नमस्कार है। हे परमाक्षरसुखापूर्ण! हे ज्ञानकाय (कालचक्र) आपको नमस्कार है। शून्यता और करुणा से अभिन्न जो अक्षर बोधिचित्त है उसके अभिषेक से हे नाथ इस समय मेरे ऊपर कृपा करें। पुत्र, पत्नी आदि के साथ मैं आपके शरणागत हो गया हूँ। जब तक ज्ञान (बोधि) उत्पन्न न हो तब तक मेरा कोई दूसरा शरण नहीं है। आप ही मेरे सब कुछ हैं। मैं शरणागत हूँ।

इत्यध्येषितवन्तं सपत्नीकं शिष्यं दृष्ट्वाचार्यः शब्दवज्रां सर्वालङ्कारानपसार्य नग्नीकृत्यालिङ्गयति। गृहिणस्तु भार्याया मातरम्। ततः पूर्वे तारा। दक्षिणे पाण्डरा। उत्तरे मामकी। पश्चिमे लोचना। आग्नेये स्पर्शवज्रा। नैर्ऋत्यां रसवज्रा। ईशाने रूपवज्रा। वायव्ये गन्धवज्रेति। योगिनीचक्रं नग्नं मुक्तकेशं कर्तिकाकपालहस्तं विरचयेन्नवविद्याभिर्यथानुक्रमेणेति। एवं पूर्वाभिषेकस्तोयादिना सप्तविधः। तत उत्तराभिषेकः सामान्यकर्ममुद्रया। उत्तरोत्तराभिषेकः पूर्वोक्ताभिः शूद्रजादिभिर्मुद्रासमर्पणाय दशभिः। अष्टभिर्घटैर्जयविजयाभ्यां स्नापयेद्भिक्षुम्। श्रामणेरं तासां मध्ये षड्भिर्मुद्राभिश्चतुर्भिः कलशैः स्नापयेज्जयविजयाभ्यामपि। गृहस्थं तासां नवानां मध्य एकया स्वभार्ययैकेन विजयघटेनाभिषेचयेत् पूर्वोक्तविधिना। ततो मुद्रां समर्पयेत् कलशसेकदानार्थमिति।

इस प्रकार प्रार्थना करने वाले पत्नी सहित अपने शिष्य को देखकर आचार्य शब्दवज्र को उसके सभी अलङ्कारों को हटाकर नग्न करके आलिङ्गन करता है - कराता है। गृहस्थियों के लिए तो पत्नी की माता को करना है। इसके बाद पूर्व में तारा, दक्षिण में पाण्डरा, उत्तर में मामकी, पश्चिम में लोचना, आग्नेय में स्पर्शवज्रा, नैऋत्य में रसवज्रा, ईशान में रूपवज्रा, वायव्य में गन्धवज्रा है - इस प्रकार योगिनीचक्र को नग्न करके केशों को खुले करके अपने शिर को काट कर अपने ही हाथों में धारण करने वाले बनायें, ९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(नवीन) विद्याओं से यथा अनुक्रम करना चाहिए। इस प्रकार पूर्वाभिषेक पत्नी आदि से सात प्रकार कहा गया है। सामान्य कर्ममुद्रा से फिर उत्तरभिषेक होता है। उत्तरोत्तराभिषेक पूर्वोक्त शूद्र आदियों के द्वारा मुद्रा समर्पण के लिए दश विद्यायें हैं। आठ घड़ाओं से जय-विजयों के द्वारा भिक्षु को स्नान करायें। उनके मध्य में श्रामणेर को ६ मुद्राओं और चार कलशों से जय विजय घटों से स्नान करायें। (नव) ९ में से गृहस्थ को एक भार्या के द्वारा एक विजय घट से अभिषिक्त करें पूर्वोक्त विधि के द्वारा। तब फिर मुद्रा का समर्पण करें - कलश अभिषेक देने के लिए, यही नियम है।

अत्र सर्वालङ्कारयुक्तां द्रुतकनकनिभां द्वादशाब्दां सुकन्यां विंशति-वर्षपर्यन्तां प्रज्ञोपायात्मकेन देवतायोगेन स्वकुलिशमणिना कामयित्वा सरागां रजस्वलाम्। ज्ञात्वा शिष्यस्य शुद्धिमुत्तरोत्तराभिषेके कुलिशमपि मुखे क्षेपयित्वा सबीजम्। पश्चाद्देया स्वमुद्राचार्येण यालिङ्गिताथवा पुत्रस्य भार्यां स्वयमाचार्यो ऽभिगच्छति। ततः सेकक्षणे प्राप्ते शिष्याय पुनः स्वभार्यां समर्पयेत्। अत्र प्रज्ञायाः स्तनस्पर्शम् उपायः करोति। गुरुः शिष्यभार्यायाः करोति कलशाभिषेके। गुह्याभिषेके शिष्यभार्याया मुखे वज्रं क्षिपेत् शिष्यस्याक्षिणी बद्ध्वा गुरुः प्रज्ञाया नरनासिकां चूषयेत्। ततो भार्याज्ञानेन स्वमुद्रां समर्पयेदाचार्य इति सर्वत्र सेकविधिर्महाधिपत्ये। यदि दश मुद्रास्तदा यां यां कामयितुं समर्थः शिष्यस्तां तां समर्पयेत्। अर्धरात्राद् घटिकाद्वयोर्ध्वं यावत् सूर्योदयं ततो विसर्जयेद्गणचक्रं विसृज्य च शिष्याय संवरं दद्यात्। इदं यन्मया कथितं संवृत्या विरमान्तं सहजक्षणं यद् बिन्दुत्रयान्तं तद्विवृत्या न भवति। विवृत्याच्युतं सुखं योगिनाम्। तेनेदं त्वया महासुखं रक्षणीयम्। तदुक्तं मूलतन्त्रे -

यहाँ सर्वालङ्कारयुक्त, सुन्दरकनकयुक्त, १२ वर्षीय सुकन्या को जो २० वर्ष तक की हो, प्रज्ञोपायात्मक देवतायोग से, स्वकुलिशमणि के द्वारा, चाह कर जो रागवती है तथा रजस्वला भी हुई हो उन्हें ग्रहण करें। उत्तरोत्तराभिषेक में शिष्य की शुद्धि को जानकर मुख में कुलिश भी निक्षिप्त करें बीज सहित। बाद में अपनी मुद्रा, आलिङ्गित कन्या अथवा पुत्र की भार्या भी हो सकती है स्वयं आचार्य उन्हें ग्रहण करते हैं। फिर अभिषेक काल में शिष्य को अपनी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भार्या आचार्य समर्पित करते हैं। यहाँ उपाय प्रज्ञा का स्तनस्पर्श करता है। गुरु शिष्य की भार्या का स्तन स्पर्श करता है कलशाभिषेक के अवसर पर। गुह्य के अभिषेक में शिष्य की भार्या के मुख में वज्र को क्षेपण करें। शिष्य के आँख ढककर गुरु प्रज्ञा के नरनासिका का आलम्बन करता है। फिर भार्या ज्ञान के द्वारा स्वमुद्रा अर्पित करता है यही सभी जगह अभिषेक का महात्म्य है। यदि दश मुद्रायें हैं तब जो जो कामना करने में समर्थ होता है शिष्य, गुरु उसे वह सब कुछ दे दे। आधा रात के दो घड़ी पश्चात् सूर्योदय से पहले तक गणचक्र को विसर्जित कर दें। उसे विसर्जन के बाद शिष्य को संवर देना चाहिए। यह जो मैंने कहा है वह संवृति से कहा है और विरम तक सहजक्षण को जो बिन्दुत्रय के अन्तिम तक है उसे विवृति से नहीं होता है। विवृति से योगियों को अच्युत सुख उपलब्ध होता है। अतएव तुम्हें इस महासुख की रक्षा करनी चाहिए। जैसा की मूलतन्त्र में कहा गया है –

कर्ममुद्राप्रसङ्गेऽपि ज्ञानमुद्रानुरागणे।
रक्षणीयं महासौख्यं बोधिचित्तं दृढव्रतैः॥
भगे लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य बोधिचित्तं न चोत्सृजेत्।
भावयेद् बुद्धबिम्बं तु त्रैधातुकमशेषतः॥
अनेन रक्षितेनैव बुद्धत्वमिह जन्मनि।
शीलसम्भारसम्पूर्णं पुण्यज्ञानसमन्वितम्॥
दशपारमिताप्राप्ताः सम्बुद्धास्त्र्यध्ववर्तिनः।
अनेन सर्वसम्बुद्धैर्धर्मचक्रं प्रवर्तितम्॥
अतः परतरं नास्ति ज्ञानं त्रैधातुकेश्वरम्।
शून्यताकरुणाभिन्नं स्वपरार्थप्रसिद्धये॥
यदि पालयसि मे पुत्र संवरं सर्वतायिनाम्।
तदा लप्स्यसि सम्बोधिं सर्वबुद्धैरधिष्ठितः॥
अथ रागाभिभूतात्मा न पालयसि संवरम्।
गृहीत्वा पुरतो भर्तुस्तदा यास्यसि रौरवम्॥
मृदुचित्ताद्यदा योनौ बोधिचित्तं च्युतं भवेत्।
पद्मबाह्यं तदा ग्राह्यं ज्ञात्वा मुद्रां स्वजिह्वया॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर्ममुद्रा के प्रसङ्ग में भी ज्ञानमुद्रा के अनुरक्ति के अवसर पर, महासौख्य की रक्षा करनी चाहिए जो बोधिचित्त है, यही दृढव्रत परायण बोधिसत्त्वों का कर्तव्य है। भग में लिङ्ग को प्रतिष्ठापित करके बोधिचित्त को कभी नहीं त्यागना चाहिए। साथ ही अशेष त्रैधातुक बुद्धबिम्ब का ध्यान करें। इस रक्षा से इसी जन्म में बुद्धत्व की प्राप्ति होती है। वह व्यक्ति शीलसम्भार सम्पन्न एवं पुण्य तथा ज्ञान से युक्त हो जाता है। जब, दशपारमितायें प्राप्त होती हैं – जो तीन मार्गों में अवस्थित हैं इसे ही सभी बुद्धों ने धर्मचक्र का प्रवर्तन कहा है। तीनों लोकों में इससे बड़ा कोई भी ज्ञान नहीं है। जो शून्यता है वही करुणा से अभिन्न भी है – स्व और परार्थ की सिद्धि के लिए ही कहा गया है। हे पुत्र सभी बुद्धों का जो मार्ग है शिक्षा है, उसे यदि तुम पालन करते हो तो तब तुम निश्चय ही सम्बोधि प्राप्त करोगे जिसे सभी बुद्धों ने प्राप्त किया है। यदि रागों से आकर्षित होकर गुरु की शिक्षा लेकर भी इस शिक्षा का तुम पालन नहीं करते हो तो तु निश्चय भी रौरव नामक नरक में गिर जाओगे। मृदु चित्त से जब तुम योनि में प्रविष्ट होते हो तब बोधिचित्त च्युत हो जाता है। इसीलिए पद्म के बाह्य ही उसे बोधिचित्त का ग्रहण करना चाहिए, अपने ही जिह्वा से उस ज्ञानमुद्रा का ग्रहण एवं अनुभव करना चाहिए।

संवरं दत्त्वाचार्यः शिष्याय शिष्यो ऽपि गुरुदक्षिणां दत्त्वा पुनर्मण्डलं कृत्वा प्रार्थयेत्। भगवान्मे सेकप्रक्रियाप्रसादं करोतु। ततः शिष्य-मामन्त्रयेद्गुरुः। शृणु त्वं पुत्र यथा संवृत्या षोडशानन्दलक्षणं सर्वसत्त्वानां सुखं साधारणमेकविंशत्यधिकशतादिवृत्तैरुद्धृतं परमादिबुद्धान्मञ्जुवज्रेण कामा क्षोभमित्यादिभिः।

शिष्य को संवर देकर आचार्य तथा गुरुदक्षिणा देकर शिष्य प्रार्थना करें – हे भगवन् मुझे आप अभिषेक क्रिया का प्रसाद दें। फिर गुरु शिष्य का आमन्त्रण करे। हे पुत्र तुम सुनो जैसे संवृति से १६ आनन्द लक्षण होते हैं उन्हें, सभी प्राणियों के सुखात्मक सभी के लिए समान १२१ से निकाला हुआ परम आदि बुद्ध से मञ्जुवज्र ने, उसे ही यहाँ बताया गया है।

कामा क्षोभं करोति स्वमनसि जगतः पूर्णतां याति पूर्णा
पूर्णाज्वालासुबिन्दुं स्त्रवति शशधरं द्रावयित्वोत्तमाङ्गात्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओड्डाकृष्टं प्रकृत्या ददति वरसुखं बिन्दुमोक्षत्रयान्त
आलोकस्पर्शसङ्गं क्षरणसुखमथानन्दभेदादिनैतत्॥
कामानन्दं करोति प्रथममपि नृणां चक्षुरालोकनेन
पश्चात् पूर्णा प्रसङ्गे पुनरपि परमानन्दमेव स्वकाये।
ज्वाला बिन्दुं स्त्रवन्ती रमति च विरमानन्दवज्रेण पद्म
ओड्डा बिन्दुत्रयान्ते क्षरगतसहजानन्दवज्रं करोति॥
कामानन्दस्तु कम्पाक्षरणमपि चतुष्केण योगः स एकः
पूर्णा शक्तत्युद्भवो वै भवति च परमानन्द एव द्वितीयः।
ज्वाला बिन्दुश्च धूर्मा पुनरपि विरमानन्द एवं तृतीय
ओड्डा नादश्च निद्रा भवति च सहजानन्द एवं चतुर्थः॥

इह सर्वस्य जगतः कामा मनसि क्षोभं करोति प्रथमानन्दमिति। ततः पूर्णतां याति पूर्णावस्था ललाटे बोधिचित्तपूर्णत्वात् प्रज्ञालिङ्गनादिना द्वितीयः परमानन्द इति। ततः पूर्णादुत्तमाङ्गान्मैथुने ज्वालावस्था बिन्दुं स्त्रवति शशधरं द्रावयित्वा तृतीयं विरमानन्दं करोतीति। तत ओड्डावस्था बिन्दुच्यवनकाले कायवाक्चित्तबिन्दूनामवसाने चतुर्बिन्दुनिर्गमकाले सहजानन्दं करोतीति।

संसार के सभी कामनायें आनन्द के रूप में मन में क्षोभ उत्पन्न करते हैं। फिर पूर्णता में वे जाते हैं। पूर्णावस्था ललाट में अनुभूत होती है चित्त के पूर्णता के और प्रज्ञा के आलिङ्गन आदि से दूसरा परमानन्द उपस्थित होता है। उसके बाद पूर्ण, उत्तमाङ्ग से मैथुन में ज्वालावस्था स्वयं बिन्दु का स्राव करती है- चन्द्रमा को पिघालकर जिससे तीसरा विरमानन्द का उत्पादन होता है। फिर ओड्डावस्था की उपस्थिति होती है जब बिन्दु का च्यवनकाल होता है, काय, वाक् चित्त बिन्दुओं के अवसान में चार बिन्दुओं के विसर्जन काल में सहजानन्द की स्थिति होती है।

एवं प्रतिपदादिपञ्चपञ्चकलाभिराकाशवायुतेजउदकपृथ्वी-स्वरूपाभिर्नन्दाभद्राजयारिक्तापूर्णानामभिर् अ इ ऋ उ लृ क। अ ए अर् ओ अल् च। ह य र व ल ट इत्येतत्स्वरधर्मिणीभिः। एवं पञ्चभ्यानन्दपूर्णा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दशमी परमानन्दपूर्णा। पूर्णिमा विरमानन्दपूर्णा। सहजानन्द इति षोडशी कला सर्वधातूनां समाहारो मेलापकः समाजः संवर इति। एवं रागो बोधिचित्तस्य शुक्लपक्षः। विरागः कृष्णपक्ष इति। यथा नामसङ्गीत्याम् –

इस प्रकार प्रतिपदा से पाँच-पाँच कलाओं के द्वारा आकाश, तेज, वायु, जल, पृथिवी स्वरूपों से युक्त नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, पूर्णा नामों से, अ इ ऋ उ लृ क। अ ए अर् ओ अल् च। ह य र व ल ट इन स्वर धर्मियों के द्वारा भी वह स्थिति होती है। यह पञ्चमी स्थिति आनन्दपूर्ण है। दशवीं परमानन्दपूर्णा है। पूर्णिमा विरमानन्दपूर्ण है। सहजानन्द षोडशी कला है, वही सभी धातुओं का समाहार मेलापक समाज ही संवर कहा गया है। इस प्रकार राग ही बोधिचित्त का शुक्लपक्ष है। विराज कृष्णपक्ष है। जैसे की नामसङ्गीति में कहा गया है –

विरागादिमहारागो विश्ववर्णोज्ज्वलप्रभः॥
सम्बुद्धवज्रपर्यङ्को बुद्धसङ्गीतिधर्मधृक्। इति।

तथा –

सर्वाकारो निराकारः षोडशार्धार्धबिन्दुधृक्।
अकलः कलनातीतश्चतुर्थध्यानकोटिधृक्॥

विराग आदि में है जिसमें वह महाराग वही विश्ववर्णात्मक अत्यन्त उज्वल है। वही सम्बुद्ध एवं वज्रपर्यङ्क है वही बुद्धपर्यन्त धर्म का धारक होता है। और सर्वाकार, निराकार, ४ बिन्दुओं का धारक है। अकल भी कलनातीत भी, चार ध्यान कोटियों का धारक भी है।

इति भगवतो नियमः। विवृत्या पञ्चमपटले महामुद्राज्ञानं विस्तरेण ज्ञातव्यं नात्र विस्तारितम्॥

यही भगवान् का नियम है। विवृति के द्वारा पञ्चमपटल में महामुद्रा का ज्ञान विस्तारपूर्वक जानना चाहिए। यहाँ संक्षेप में ही कहा गया है न कि विस्तारपूर्वक।

इदानीं षोडशानन्दानां चतुर्योगा उच्यन्ते कामेत्यादिना। इह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वसत्त्वानां जाग्रत्स्वप्रसुषुप्ततुर्यावस्थाभेदेन कायवाक्चित्तज्ञानयोगः। ते चानन्दादिभेदेन षोडश। तत्र कामा इति कायानन्दः। आनन्द इति वागानन्दः। कम्पेति चित्तानन्दः। अक्षर इति संज्ञया ज्ञानानन्दः। एवं चतुष्केणानन्दयोग एक इति। तथा पूर्णेति कायपरमानन्दः। अत्र परमानन्दादित्रयो ऽन्तादिना वाक्चित्तज्ञानवज्राणि च्छन्दोवशादिति। अतः परमानन्द इति वाक्परमानन्दः। उद्भवश्चित्तपरमानन्दः। शक्तिरिति ज्ञानपरमानन्द इति द्वितीयो योगः। ज्वाला इति कायविरमानन्दः। विरमानन्द इति वाग्विरमानन्दः। घूर्मेति चित्तविरमानन्दः। बिन्दुरिति ज्ञानविरमानन्द इति तृतीयो योगः। तथा ओड्डा इति कायसहजानन्दः। सहजानन्द इति वाक्सहजानन्दः। निद्रेति चित्तसहजानन्दः। नाद इति ज्ञानसहजानन्दः। एवं चतुर्विधः कायः। निर्माणसम्भोगधर्मस्वाभाविकभेदेन कायश्चतुर्धा वाक् चतुर्धा चित्तं चतुर्धा ज्ञानं चतुर्धेति। एवं षोडशानन्दभेदाः श्रीतन्त्रे विस्तरेण द्रष्टव्या इति षोडशानन्दान्तं सहजमिति नियमः।

काम इत्यादि वाक्यों से अब, षोडशानन्दों का चार योग बता रहे हैं। यहाँ सभी प्राणियों का जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया अवस्था के भेद से काय, वाक्, चित्त तथा ज्ञानयोग हुए हैं। वे आनन्द आदि के भेद से १६ होते हैं। काम ही कायानन्द है। आनन्द वागानन्द है। कम्पा चित्तानन्द है। अक्षर ज्ञानानन्द है। इन चारों से आनन्द योग हुआ करता है। पूर्णा काय परमानन्द ही है। यहाँ परमानन्द आदि तीन अन्त आदि वाक् चित्त ज्ञान वज्र छन्दों के परवश हो कर यहाँ हैं। अतः परमानन्द ही वाक्परमानन्द है। उद्भव ही चित्तपरमानन्द है। शक्ति ज्ञान परमानन्द है यही द्वितीय योग है। ज्वाला काय विरमानन्द है। विरमानन्द वाग्विरमानन्द है। घूर्म चित्तविरमानन्द है। बिन्दु यह ज्ञान विरमानन्द है जो तृतीय योग है। फिर ओड्डा यह काय सहजानन्द है। नाद ज्ञान सहजानन्द है। इस प्रकार चार प्रकार का काय है। निर्माण-सम्भोग-धर्म-स्वभाव कायों के भेद से काय चार प्रकार का है - इसी प्रकार वाक्, चित्त और ज्ञान भी चार प्रकार के हैं। एवं १६ आनन्दों के भेद से श्रीतन्त्र में विस्तारपूर्वक वर्णित हैं उन्हें वही देखना चाहिए। यहाँ १६ आनन्दान्त सहज आनन्द तक यही नियम है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लौकिकसिद्धिसाधनांस्त्रिविधसेकानुद्दिश्य लोकोत्तरसिद्धेरसाधारणकारणमेकादशं सेकमाह– पुनर् इत्यादि।

लौकिक सिद्धि साधना को त्रिविध सेकों को उद्देश करके लोकोत्तर सिद्धि के असाधारण कारण को लेकर ११ प्रकार के अभिषेक के विषय में कह रहे हैं।

पुनरेव महाप्रज्ञा तस्या ज्ञानाभिधानकः॥ ८॥

फिर भी महाप्रज्ञा को उस सिद्धि के ज्ञान का वाचक कहा गया है॥

महाप्रज्ञेति। अविकल्पितसङ्कल्पा वक्ष्यमाणा महामुद्रा। तस्या भावनया ज्ञानम्। तज्जं महाक्षरं महासुखमेकादशसेकः। डाकिनीवज्रपञ्जरे ऽप्येकादशैव सेका उक्ताः। तथा हि -

समग्र विकल्प रहित ही महामुद्रा है। भावना के द्वारा उसका ज्ञान ही ज्ञान है। उस ज्ञान से समुत्पन्न महाक्षर महासुख ११वाँ अभिषेक है। डाकिनी वज्र पञ्जर में ११ प्रकार के ही अभिषेक कहे गए हैं। जैसा कि -

प्रथमं तोयसेकेन द्वितीयं मौलिसेकतः॥
तृतीयं पट्टसेकेन चतुर्थं वज्रघण्टया।
पञ्चमं स्वाधिपेनैव नामसेकं तु षष्ठमम्॥
बुद्धाज्ञा सप्तमं सेकं कलशसेकमष्टमम्।
नवमं गुह्यसेकेन दशमं प्रज्ञाभिषेकतः॥
तत्त्ववज्रप्रयोगेण सर्वान्वज्रव्रतान्ददेत्।
व्याकरोति स्वयं शास्ता एष सेकविधिं स्वयम्॥
आचार्यो नावमन्तव्यः सुगताज्ञां न लङ्घयेत्। इति।

प्रथम जल से अभिषेक, दूसरा मौलि से अभिषेक, तीसरा पट्टअभिषेक, चौथा वज्रघण्टा से अभिषेक, पाँचवाँ स्वाधिपद्वारा, नाम से छठा, बुद्ध की आज्ञा से सातवाँ अभिषेक, आठवाँ कलशाभिषेक, नवम गुह्यसेक, दशवाँ प्रज्ञाभिषेक करके वज्रतत्त्व के अभिषेक द्वारा सभी को वज्रव्रतों का दान करें। इसे स्वयं ही भगवान् शास्ता उपदेश करते हैं। आचार्य का अपमान नहीं करना चाहिए, सुगत की आज्ञा का भी उल्लङ्घन न करें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवमेकादशोऽभिषेकः प्रधानस्तत्त्ववज्रप्रयोगेणेति भगवतो विस्पष्टवचनाच्चतुर्थो वैकादशो वाभिषेकः पृथग्वावगन्तव्यो विद्वद्भिरिति।

इस प्रकार चौथा अभिषेक प्रधान है क्योंकि वज्रप्रयोग के द्वारा भगवान् के वचनों के पुष्टव्याख्या के लिए चौथा या ११वाँ अभिषेक विद्वानों को अलग से जान लेना चाहिए।

यथासंख्यमेषां कुम्भादीनां चतुर्णां सान्वयानि क्षरक्षरस्पन्द-निस्पन्दाख्यानि नामानि।

क्रमशः इन कुम्भों के चार अन्वय क्षरक्षर स्पन्द निस्पन्द नामों से निम्नलिखित नामों से जाना जाना चाहिए।

क्षरः क्षरस्ततः स्पन्दो निःस्पन्दश्च ततोऽपरः।
कायवाक्चित्तसंशुद्ध्या अभिषेकत्रयं क्रमात्॥ ९॥

क्षर-क्षर, स्पन्द, निस्पन्द वे काय, वाक् और चित्त के संशुद्धि के तीन अभिषेक कहे गए हैं॥ १६ ॥

चतुर्थो ज्ञानसंशुद्धिः कायवाक्चित्तशोधकः।
बालः प्रौढस्तथा वृद्धश्चतुर्थस्तु प्रजापतिः॥ १०॥
प्रज्ञास्तनाङ्गसंस्पर्शाद् बोधिचित्तच्युतं सुखम्।
पयोधराभिषिक्तः स बालः प्राप्तं यतः सुखम्॥ ११॥

चौथा ज्ञानसंशुद्धि है। जो काय वाक् और चित्त को पवित्र करता है। बाल, प्रौढ, वृद्ध और चौथा प्रजापति ही है। स्तनाङ्गों के संस्पर्श से प्रज्ञा उत्पन्न होती है। बिन्दु का क्षरण सुख ही बोधिचित्त सुख है। पयोधर से अभिषिक्त ही वह बाल है जिसने वह सुख प्राप्त किया है॥

कायेत्यादि सुगमम्। तथा बालप्रौढवृद्धप्रजापतिसंज्ञकानि। प्रज्ञेति द्वादशाब्दामारभ्य यावद्विंशत्यब्दाम्। तस्याः स्वचेतो रम्याया अभिषेके भव्यायाः स्तनाङ्गस्पर्शेण बोधिचित्तच्युतम् इति। चतुर्दलोष्णीषपद्माच्छु-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रामृतधारायाः षोडशदलललाटकमलकर्णिकायामागमनेन यत् काया-नन्दवागानन्दचित्तानन्दज्ञानानन्दात्मकं सुखानुभवनं तद् बालम्। प्रथकसेकप्राप्तत्वाद्योगी पयोधराभिषिक्तो बाल इत्युच्यते।

प्रज्ञा का अर्थ पूर्ववर्णित १२ वर्ष से लेकर २० वर्ष तक की अवस्था है। उसी की चित्त की रमणीयता के लिए अभिषेक होने वाला है उसे ही स्तनाङ्ग के स्पर्श से च्युति होती है वही बोधिचित्त की स्थिति भी है। चार दलयुक्त उष्णीषकमल से शुक्ररूप अमृतधारा का १६ दलयुक्त ललाट कमल कर्णिका में आगमन से जो कायानन्द, वागानन्द, चित्तानन्द, ज्ञानानन्द रूप सुख का अनुभव होता है वही बाल है। पहले-पहले अभिषेक प्राप्त करने के कारण पयोधरों से अभिषिक्त योगी ही बाल कहलाता है।

गुह्यास्फालाच्चिराज्जातं बोधिचित्तच्युतं सुखम्।
प्रौढो गुह्याभिषिक्तः स गुह्यात् प्राप्तं यतः सुखम्॥१२॥

गुह्य के उत्तेजनापूर्वक होनेवाले स्पन्द से उत्पन्न बोधिचित्त च्युत ही सुख है। प्रौढ ही गुह्य अभिषेक से अभिषिक्त होकर आनन्दित होता है क्योंकि उसने गुह्य से ही सुख प्राप्त किया है॥

गुह्यास्फालाच्चिराज्जातं वज्राग्रे स्पन्दतः सुखम्।
प्रज्ञाज्ञानाभिषिक्तः स वृद्धः स्पन्दं गतो यतः॥१३॥

गुह्य के आस्फालन से बहुत काल के बाद वज्र के अन्त में स्पन्दन से सुख प्राप्त होता है। वही प्रज्ञाज्ञान से अभिषिक्त होने से वृद्ध कहलाता है क्योंकि वही स्पन्द में स्थित हो गया है। आनन्द को उपलब्ध हो जाता है॥

ततस्तस्या गुह्य ईषद्वज्रोद्दोलनेन बोधिचित्तच्युतम् इति। द्वात्रिंश-द्दलकण्ठकमलादष्टदलहृत्कमलकर्णिकायां यत् कायपरमानन्दवाक्परमा-नन्दचित्तपरमानन्दज्ञानपरमानन्दात्मकं सुखानुभवनं तत् पूर्वादतिरिच्य-मानत्वात् प्रौढो गुह्याभिषेकः। ततो गाढोद्दोलनेन स्पन्दं गत इति चतुःषष्टि-दलनाभिकमलाद् द्वात्रिंशद्दलगुह्यकमलागमनेन शुक्रेन्दोः पञ्चदश-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कलात्मकस्याग्रगस्वच्छद्रवस्य स्पन्दाख्यस्य वज्रमणिशुषिरपर्यन्तागमनेन च यदधिमात्रं कायविरमानन्दवाग्विरमानन्दचित्तविरमानन्दज्ञानविरमा-नन्दात्मकं सुखानुभवनं स वृद्धः प्रज्ञाज्ञानाभिषेकः।

गुह्य में थोड़ा सा हलचल होने से बोधिचित्त की च्युति होती है। पहले बाल सुख से विशिष्ट सुख होने से भी प्रौढ सुख कहा गया है। उस प्रौढ से भी अतिशय विशिष्ट आनन्द के कारण उसे वृद्ध प्रज्ञाज्ञानाभिषेक शब्द से अभिहित किया गया है।

महामुद्रानुरागाद्यज्जातं निःस्पन्दतः सुखम्।

महामुद्रा के अनुराग-अभ्यासजन्य जो सुख है वह शब्दातीत है वह गुह्य में होने वाले निःस्पन्दन से उत्पन्न होता है।

महामुद्रेति गगनोद्भवबिम्बम्। तस्याः स्वरसवाहिभावनाख्या-नुरागाज्जातं निःस्पन्दत इति निरुद्धो वज्रमणेर्बाह्यस्पन्दः स्रावः। अच्युत-सुखतया यस्य चन्द्रामृतस्य स कायसहजानन्दवाक्सहजानन्दचित्तसहजा-नन्ज्ञानसहजानन्दात्मको महाज्ञानाख्यश्चतुर्थः सेकश्चतुर्थं तत्पुनस्तथेति वाक्याभिधेयः।

महामुद्रा - आकाश से उत्पन्न बिम्ब है। वज्रमणि का बाह्य स्राव का निरुद्ध होना ही निःस्पन्द है।

महाप्रज्ञाभिषिक्तः स यतो निःस्पन्दतां गतः॥ १४ ॥

महाप्रज्ञा से अभिषिक्त होकर ही वह निस्पन्द भाव को प्राप्त हुआ है॥

प्रजापतिः स विज्ञेयो जनकः सर्वतायिनाम्।
वज्रसत्त्वो महासत्त्वो बोधिसत्त्वो ऽद्वयो ऽक्षरः॥ १५ ॥

वही प्रजापति है वही सभी बुद्धों का जनक हो जाता है। वही वज्रसत्त्व, महासत्त्व, बोधिसत्त्व, अद्वय एवं अक्षर भी है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

असौ समयसत्त्वः स्याद्वज्रयोगश्चतुर्विधः।
कालचक्र इह ख्यातो योगिनां मुक्तिदायकः॥ १६ ॥

यही समय सत्त्व भी है जो चतुर्थ वज्रयोग भी कहलाता है। इसे ही कालचक्र कहा गया है, जो योगियों के लिए मुक्तिदाता भी है॥

असौ निरावरणलोकोत्तरज्ञानाधिगतः सिद्धरसवत् ताम्रादिधातूनां स्वर्णभावेनैव सावरणस्कन्धधात्वादीनां पञ्चतथागतपञ्चदेव्यादिप्रजाभावेन निष्पादकत्वात् प्रजापतिः। तायः स्वदृष्टमार्गोक्तिः। तद्योगात् तायिन-स्तथागतादयः। उदितपरमाक्षरज्ञानस्य योगिनः कायादिव्यवस्थापनं श्रीकालचक्रे कथितम्॥

वे निरावरण होकर लोकोत्तर ज्ञान के प्राप्ति से सिद्धरस के तरह ताम्र आदि धातुओं का स्वर्ण बन जाने के तरह आवरण सहित स्कन्ध धातु आयतन आदि का पञ्चतथागत, पञ्चदेवी आदि प्रजाभाव से निष्पादकत्व होने से प्रजापति कहलाते हैं। ताय का तात्पर्य स्वदृष्ट मार्ग के उक्ति से है। उसके योग से तायी तथागत बुद्ध ही हैं। परमाक्षर ज्ञान प्राप्त योगी का काय आदि की व्यवस्थापना श्रीकालचक्र में कहा गया है। ऐसे योगी जो परमाक्षर ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं, वे कैसे होते हैं श्रीकालचक्र में इस प्रकार वर्णित है –

स्वच्छः कायो ऽणुनष्टः प्रभवति खसमो लक्षणाद्यैः प्रपूर्णः
स्वच्छं त्रैलोक्यमेवावरणविरहितं स्वप्नवद्भाति विश्वम्।
भाषाच्छिन्ना समन्तात् परहृदयगतानेकभाषान्तरेण
चित्तं सत्सौख्यपूर्णं न चलति सहजालिङ्गितं सर्वकालम्॥ इति।

इनका काय अतिशय निर्मल होता है। सारे मल नष्ट हुए होते हैं। आकाश के तरह स्वच्छ एवं व्यापक हो जाता है। समग्र उत्तम लक्षणों से वह पूर्ण हो जाता है। उसके लिए समग्र तीनों लोक ही आवरणरहित प्रतीत होते हैं। समग्र विश्व प्रपञ्च स्वप्न के तरह ही भासित होते हैं। उनका वाग्व्यवहार पूर्ण हो जाता है क्योंकि समस्त सत्त्वों की हृदयगत भाषा में वे निपुण होते हैं। चित्त सुख पूर्ण हो जाता है। तीनों काल में वे सहज आनन्द से थोड़ा सा भी विचलित नहीं होते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कलात्मकस्याग्रगस्वच्छद्रवस्य स्पन्दाख्यस्य वज्रमणिशुषिरपर्यन्तागमनेन च यदधिमात्रं कायविरमानन्दवाग्विरमानन्दचित्तविरमानन्दज्ञानविरमा-नन्दात्मकं सुखानुभवनं स वृद्धः प्रज्ञाज्ञानाभिषेकः।

गुह्य में थोड़ा सा हलचल होने से बोधिचित्त की च्युति होती है। पहले बाल सुख से विशिष्ट सुख होने से भी प्रौढ सुख कहा गया है। उस प्रौढ से भी अतिशय विशिष्ट आनन्द के कारण उसे वृद्ध प्रज्ञाज्ञानाभिषेक शब्द से अभिहित किया गया है।

महामुद्रानुरागाद्यज्जातं निःस्पन्दतः सुखम्।

महामुद्रा के अनुराग-अभ्यासजन्य जो सुख है वह शब्दातीत है वह गुह्य में होने वाले निःस्पन्दन से उत्पन्न होता है।

महामुद्रेति गगनोद्भवबिम्बम्। तस्याः स्वरसवाहिभावनाख्या-नुरागाज्जातं निःस्पन्दत इति निरुद्धो वज्रमणेर्बाह्यस्पन्दः स्रावः। अच्युत-सुखतया यस्य चन्द्रामृतस्य स कायसहजानन्दवाक्सहजानन्दचित्तसहजा-नन्ज्ञानसहजानन्दात्मको महाज्ञानाख्यश्चतुर्थः सेकश्चतुर्थं तत्पुनस्तथेति वाक्याभिधेयः।

महामुद्रा - आकाश से उत्पन्न बिम्ब है। वज्रमणि का बाह्य स्राव का निरुद्ध होना ही निःस्पन्द है।

महाप्रज्ञाभिषिक्तः स यतो निःस्पन्दतां गतः॥ १४ ॥

महाप्रज्ञा से अभिषिक्त होकर ही वह निस्पन्द भाव को प्राप्त हुआ है॥

प्रजापतिः स विज्ञेयो जनकः सर्वतायिनाम्।
वज्रसत्त्वो महासत्त्वो बोधिसत्त्वो ऽद्वयो ऽक्षरः॥ १५ ॥

वही प्रजापति है वही सभी बुद्धों का जनक हो जाता है। वही वज्रसत्त्व, महासत्त्व, बोधिसत्त्व, अद्वय एवं अक्षर भी है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

असौ समयसत्त्वः स्याद्वज्रयोगश्चतुर्विधः।
कालचक्र इह ख्यातो योगिनां मुक्तिदायकः॥ १६ ॥

यही समय सत्त्व भी है जो चतुर्थ वज्रयोग भी कहलाता है। इसे ही कालचक्र कहा गया है, जो योगियों के लिए मुक्तिदाता भी है॥

असौ निरावरणलोकोत्तरज्ञानाधिगतः सिद्धरसवत् ताम्रादिधातूनां स्वर्णभावेनैव सावरणस्कन्धधात्वादीनां पञ्चतथागतपञ्चदेव्यादिप्रजाभावेन निष्पादकत्वात् प्रजापतिः। तायः स्वदृष्टमार्गोक्तिः। तद्योगात् तायिनस्तथागतादयः। उदितपरमाक्षरज्ञानस्य योगिनः कायादिव्यवस्थापनं श्रीकालचक्रे कथितम्॥

वे निरावरण होकर लोकोत्तर ज्ञान के प्राप्ति से सिद्धरस के तरह ताम्र आदि धातुओं का स्वर्ण बन जाने के तरह आवरण सहित स्कन्ध धातु आयतन आदि का पञ्चतथागत, पञ्चदेवी आदि प्रजाभाव से निष्पादकत्व होने से प्रजापति कहलाते हैं। ताय का तात्पर्य स्वदृष्ट मार्ग के उक्ति से है। उसके योग से तायी तथागत बुद्ध ही हैं। परमाक्षर ज्ञान प्राप्त योगी का काय आदि की व्यवस्थापना श्रीकालचक्र में कहा गया है। ऐसे योगी जो परमाक्षर ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं, वे कैसे होते हैं श्रीकालचक्र में इस प्रकार वर्णित है -

स्वच्छः कायो ऽणुनष्टः प्रभवति खसमो लक्षणाद्यैः प्रपूर्णः
स्वच्छं त्रैलोक्यमेवावरणविरहितं स्वप्नवद्भाति विश्वम्।
भाषाच्छिन्ना समन्तात् परहृदयगतानेकभाषान्तरेण
चित्तं सत्सौख्यपूर्णं न चलति सहजालिङ्गितं सर्वकालम्॥ इति।

इनका काय अतिशय निर्मल होता है। सारे मल नष्ट हुए होते हैं। आकाश के तरह स्वच्छ एवं व्यापक हो जाता है। समग्र उत्तम लक्षणों से वह पूर्ण हो जाता है। उसके लिए समग्र तीनों लोक ही आवरणरहित प्रतीत होते हैं। समग्र विश्व प्रपञ्च स्वप्न के तरह ही भासित होते हैं। उनका वाग्व्यवहार पूर्ण हो जाता है क्योंकि समस्त सत्त्वों की हृदयगत भाषा में वे निपुण होते हैं। चित्त सुख पूर्ण हो जाता है। तीनों काल में वे सहज आनन्द से थोड़ा सा भी विचलित नहीं होते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

असावेवाद्वयो ऽक्षर ऊर्ध्वरेता गुह्यनाभिहृत्कण्ठगमनेन यथाक्रमं वज्रसत्त्वादिनामचतुष्टयं लभते। ललाटगः पूर्वोक्तविशुद्धादिचतुर्विध-योगाख्यः। उष्णीषगः कालचक्र इति नामेति षट् सत्त्वाः॥

यही स्थिति अद्वय है, अक्षर है। ऊर्ध्वरेता योगी गुह्य-नाभि-हृदय-कण्ठ में गमन के द्वारा क्रमशः वज्रसत्त्व आदि चार नाम प्राप्त करता है। ललाट में जाकर पूर्वोक्त विशुद्धि से चार योगों को या आनन्दों का अनुभव करता है। जब वही उष्णीष में स्थित होता है तो वही कालचक्र कहलाता है। इस प्रकार ६ प्रकार के सत्त्व बताये गए हैं।

इति श्रीनारोपापादविरचितायां कालचक्रतन्त्रस्य सेकोद्देशटीकायां द्वितीयं दीक्षाप्रकरणं समाप्तम्।

दीक्षा प्रकरण पूरा हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ तृतीयं षडङ्गयोगप्रकरणम्

षडङ्गयोग प्रकरण

इदानीं लोकोत्तरसिद्धेरसाधारणकारणं षडङ्गयोगमुद्देष्टुमाह – अस्यैव साधनं कुर्याद् इत्यादिना। तथा हि प्रतिभासैरचिन्तितैर् इत्यारभ्य विश्वबिम्बं प्रभास्वरम् इत्यन्तेन षडङ्गयोगस्य प्रत्याहाराख्यं प्रथमाङ्गमुद्दिष्टम्। पिहितापिहितेत्यादिश्लोकेन ध्यानाङ्गम्। दृष्टे बिम्बे तत इत्यादिश्लोकेन प्राणायामाङ्गम्। प्राणं बिन्दौ निवेशयेद् इत्यनेन धारणाङ्गमम्युद्दिष्टम्। अनुस्मृत्याद्यङ्गद्वयस्य तु तदथोद्देशसामर्थ्यादुद्देशो ऽपि यथायोगमूहनीयः।

इस समय लोकोत्तरसिद्धि का असाधारण कारण षडङ्गयोग का उपदेश करने के लिए कहते हैं इसी की साधना करनी चाहिए इत्यादि वाक्यों से। जैसा कि अचिन्तित प्रतिभासों के द्वारा इस वाक्य से आरंभ करके प्रभास्वर विश्वबिम्ब वाक्य तक षडङ्ग योग का प्रत्याहार नामक प्रथम अङ्ग का उपदेश किया गया है। पिहितापिहित इत्यादि श्लोक द्वारा ध्यानाङ्ग का निर्देश किया गया है। दृष्टे बिम्बे ततः इत्यादि श्लोक के द्वारा प्राणायाम का अङ्ग बताया गया है। प्राणं बिन्दौ निवेशयेत् इस श्लोक द्वारा धारणा का विवेचन हुआ है। अनुस्मृति आदि दो अङ्गों का अन्य पदार्थों के नाम ग्रहणमात्र से ही उनका व्याख्यान गतार्थ हो जाता है, या वहीं से उन दोनों का भी ऊह करना चाहिए।

षडङ्गयोगश्च सम्यक्सम्बोधिलक्षणाया उत्तमायाः सिद्धेः साधनत्वेनोद्देशनिर्देशप्रतिनिर्देशैः समाजोत्तरे भगवता कथितो यथा–

वह षडङ्गयोग – सम्यक्संबोधिलक्षणात्मक उत्तम सिद्धि के साधन रूप में उद्दिष्ट निर्दिष्ट एवं प्रतिनिर्दिष्ट हुआ है। जैसा कि भगवान् के वचन के रूप में समाजोत्तर तन्त्र में कहा गया है –

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्तर्धानादयः सिद्धिसामान्या इति कीर्तिताः।
सिद्धिमुत्तमामित्याहुर्बुद्धा बुद्धत्वसाधनम्॥
चतुर्विधमुपायं तु बोधिवज्रेण वर्णितम्।
योगतन्त्रेषु सर्वेषु शस्यते योगिनां सदा॥
सेवाविधानं प्रथमं द्वितीयमुपसाधनम्।
साधनं तु तृतीयं वै महासाधनं चतुर्थकम्॥
सामान्योत्तमभेदेन सेवा च द्विविधा भवेत्।
वज्रचतुष्केण सामान्योत्तमा षड्भिरङ्गतः॥
प्रथमं शून्यताबोधिर्द्वितीयं बीजसंग्रहम्।
तृतीयं बिम्बनिष्पत्तिश्चतुर्थं न्यासमक्षरम्॥
एभिर्वज्रचतुष्केण सेवा सामान्यसाधनम्।
सेवा ज्ञानामृतेनैव कर्तव्या सर्वतः सदा॥
सेवां षडङ्गयोगेन कृत्वा साधनमुत्तमम्।
साधयेदन्यथा नैव जायते सिद्धिरुत्तमा॥
प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामो ऽथ धारणा।
अनुस्मृतिः समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते॥
दशानामिन्द्रियाणां तु स्ववृत्तिस्थं तु सर्वतः।
प्रत्याहार इति प्रोक्तः कामाहारं प्रति प्रति॥
पञ्चकामाः समासेन पञ्चबुद्धप्रयोगतः।
कल्पनं ध्यानमुच्येत तद् ध्यानं पञ्चधा भवेत्॥
वितर्कश्च विचारश् च प्रीतिश् चैव सुखं तथा।
चित्तस्यैकाग्रता चैव पञ्चैते ध्यानसंग्रहाः।
गुह्यतन्त्रेषु सर्वेषु विविधाः परिकीर्तिताः॥
गुह्यत्रयोदयस्तर्को विचारस्तत्प्रयोगता।
तृतीयं प्रीतिसङ्काशं चतुर्थं सुखसंग्रहम्॥
स्वचित्तं पञ्चमं ज्ञेयं ज्ञानज्ञेयोदयक्षयम्।
सर्वबुद्धमयं शान्तं सर्वकामप्रतिष्ठितम्॥
पञ्चज्ञानमयं श्वासं पञ्चभूतस्वभावकम्।
निश्चार्य पिण्डरूपेण नासिकाग्रे तु कल्पयेत्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चवर्णं महारत्नं प्राणायाम इति स्मृतम्।
स्वमन्त्रं हृदये ध्यात्वा प्राणं बिन्दुगतं न्यसेत्॥
निरुद्धं सेन्द्रियं रत्नं धारयेद् धारणं स्मृतम्।
निरोधवज्रगते चित्ते निमित्तोद्ग्रहः प्रजायते॥
पञ्चधा तन्निमित्तं तु बोधिवज्रेण भाषितम्।
प्रथमं मरीच्याकारं धूमाकारं द्वितीयकम्॥
तृतीयं खद्योताकारं चतुर्थं दीपमुज्जवलम्।
पञ्चमं तु सदालोकं निरभ्रगगनोपमम्॥
स्थिरं तु वज्रमार्गेण स्फारयेत्तं खधातुषु॥
विभाव्य यदनुस्मृत्या तदाकारं तु संस्फरेत्।
अनुस्मृतिरिति ज्ञेयं प्रतिभासस्तत्र जायते॥
प्रज्ञोपायसमापत्त्या सर्वभावान् समासतः।
संहृत्य पिण्डयोगेन बिम्बं मध्ये विभावयेत्।
झटिति ज्ञाननिष्पत्तिः समाधिरिति संज्ञितम्॥
प्रत्याहारं समापद्य सर्वमन्त्रैरधिष्ठ्यते।
ध्यानज्ञानं समापद्य पञ्चाभिज्ञत्वमाप्नुयात्॥
प्राणायामेन नियतं बोधिसत्त्वैर्निरीक्ष्यते।
धारणाया बलान्नित्यं वज्रसत्त्वः समाविशेत्॥
अनुस्मृतिसमायोगात् प्रभामण्डलं जायते।
समाधिवशितामात्रे निरावरणता भवेत्॥

अन्तर्ध्यान आदि सिद्धियाँ सामान्य सिद्धियाँ हैं, उत्तम सिद्धि तो साक्षात् बुद्धत्व का साधन कहा गया है। चार प्रकार के उपाय बोधिवज्र के द्वारा वर्णित हुए हैं, उनका जिन्हें योगिगण सर्वदा ग्रहण एवं प्रशंसा करते हैं। उनमें प्रथम – सेवा विधान, द्वितीय – उपसाधन, तीसरा साधन है, चौथा महासाधन कहा गया है। सामान्य और उत्तम भेद से सेवा के दो प्रकार हैं।

चार वज्रों के द्वारा विभक्त यह सामान्य और उत्तम भी छह प्रकार का हो जाता है। प्रथम शून्यता ज्ञान है, दूसरा बीज संग्रह है। तीसरा बिम्बनिष्पत्ति है, चौथा अक्षर न्यास कहा गया है। इन चार वज्रों के द्वारा सेवा सामान्य साधन कहा गया है। वह सेवा ज्ञानामृत के द्वारा सर्वदा पूर्ण होने से उसी प्रकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसका आचरण करना चाहिए। षडङ्ग योग के द्वारा सेवा करना ही उत्तम साधन कहा गया है। अन्यथा उत्तम सिद्धि नहीं होती है।

प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, अनुस्मृति और समाधि वे ही षडङ्ग योग कहे गए हैं।

दशों इन्द्रियों को अपने इच्छाजनित विषयों से निवृत्त करना ही प्रत्याहार कहलाता है।

संक्षेप में पञ्चकामों को ही पञ्चबुद्धों के द्वारा प्रयोग किए जाने से ध्यान में परिणति होती है। वह ध्यान भी पाँच प्रकार का है।

वितर्क, विचार, प्रीति, सुख, चित्त की एकाग्रता वे ही ध्यान हैं। गुह्यतन्त्रों से सभी जगह विविध प्रकारों से इन्हीं का आवर्तन किया जाता है।

गुह्य तत्त्वों का चित्त में उदय ही तर्क है वही पहला है, उसका विचारपूर्वक किया गया प्रयोग दूसरा, प्रीतिसङ्काश तीसरा, सुखसंग्रह चौथा, स्वचित्त पञ्चम है, वह चित्त ही ज्ञान और ज्ञेय को जानने में सक्षम होता है। वहीं सर्वबुद्धमय, शान्त, सर्वकामों में प्रतिष्ठित, पञ्चज्ञानमय, श्वासप्रश्वास संयुक्त तथा पञ्चभूत स्वभावात्मक है अतः उसे ही पिण्ड करके अपने नासिका के अग्रभाग में कल्पित करना चाहिए। पञ्चवर्ण रूप जो महारत्न है वही प्राणायाम है। अपने मन्त्र को हृदय में ध्यान करके प्राण को बिन्दु में गया हुआ है ऐसी भावना करनी चाहिए।

इन्द्रियाँ, जो निरुद्ध होने से जिस प्राण रत्न का धारण किया जाता है वही धारणा है। जब चित्त निरोध वज्र में चला जाता है वह तत्काल ही निमित्त का ग्रहण करने लगता है।

वह निमित्त पाँच प्रकार का है यह बोधिवज्र ने कहा है। पहला मरीची (बालू में सूर्यकिरणों के पड़ने से दिखनेवाला जल) स्वरूपवाला, दूसरा धूमाकार, तीसरा - जुगनु के आकार का, चौथा उज्वल दीप जैसा, पाँचवाँ प्रकाशपूर्ण मेघरहित आकाश जैसा दिखता है। उसे वज्रमार्ग के द्वारा स्थिर करना चाहिए आकाश धातु में, तथा उसकी भावना करके अनुस्मृति के द्वारा उसके आकार को प्रकाशित करना चाहिए। इसे ही अनुस्मृति कहा गया है। वहाँ पर सब कुछ प्रकाशमय़ हो जाता है।

प्रज्ञा और उपायरूप समापत्ति योग द्वारा समग्र पदार्थों को संक्षिप्त रूप में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पिण्डीकृत करने के बाद बिम्ब के बीच में ध्यान करना चाहिए। तत्काल ही ज्ञान का उदय हो जाता है उसे ही समाधि कहा गया है।

प्रत्याहार सिद्ध होते ही सभी मन्त्र तत्काल ही सिद्ध होते हैं, ध्यान ज्ञान का आविर्भाव होने से पञ्च ज्ञान का अधिष्ठातृत्व की उपलब्धि होती है। प्राणायामों के द्वारा निश्चय ही बोधिसत्त्वों के द्वारा निरीक्षित हुआ जाता है। धारणा के बल से वज्रसत्त्व साधक में समाहित हो जाता है। अनुस्मृति के आगमन से प्रभामण्डल विस्तारित होता है। समाधि में प्रविष्ट होते ही आवरणों का क्षय हो जाता है।

इत्येषां श्लोकानां संक्षेपतो विवृतिरुच्यते।

इन श्लोकों का संक्षेप में व्याख्या की जाती है।

सेवा ज्ञानामृतेनैवेत्यादि। सेव्यते मुमुक्षुभिरभ्यस्यत इति सेवा। किं तत्। धूमादिबिम्बदर्शनपर्यन्तं प्रत्याहाराङ्गं ध्यानाङ्गं च। सा खलूत्तमा सेवा ज्ञानामृतेनैव षडङ्गयोगेनैव कर्तव्या निष्पाद्या सर्वतः सर्वात्मना सदा सर्वकालम्। एवकारो ऽवधारणे। एष हि ज्ञानामृताख्यः षडङ्गयोगः॥

सेवाज्ञानामृतेनैवेत्यादि – मुमुक्षुओं द्वारा सेवन किए जाने के कारण ही सेवा कहा गया है। वह क्या है? धूम से लेकर बिम्बदर्शनपर्यन्त प्रत्याहार का अङ्ग और ध्यान का अङ्ग है। वह सेवा जो उत्तम है क्योंकि ज्ञानामृत द्वारा और षडङ्गयोग के द्वारा ही निष्पादित होती है सर्वतः पूर्ण रूप से सर्वकाल, इस प्रकार **एव** शब्द द्वारा निश्चयात्मकता द्योतित होता है। यह ज्ञानामृत नामक षडङ्ग योग ही है।

प्रत्याहार इत्याद्युद्देशपदानां निर्देशप्रतिनिर्देशावाह– दशानामित्यादिभिः श्लोकैः। तत्रेन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्चेन्द्रियाणि। तेषां दशानामिन्द्रियाणां विषयविषयिणां स्ववृत्तिः स्वस्मिन्नात्मन्येव वृत्तिर्वर्तनम्। सत्तामात्रता स्ववृत्तिः। विषयविषयिणां विषयभावोपगमनविषयग्रहणव्यापारोपरतिः स्ववृत्तिरित्यर्थः। तत्र स्थितत्वं स्ववृत्तिस्थं न तु ग्राह्यग्राहकस्वरूपेण प्रवृत्तिः स्ववृत्तिः। अमुमेवार्थमाह – कामाहारं प्रतीति निर्देशेन। काम्यन्ते ऽभिलष्यन्त इति कामा रूपादयो विषयाः। तेषामिन्द्रियैर्यदाहरणं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स कामाहारः। तं कामाहारं प्रति चक्षुरादिभिरिन्द्रियै रूपादिविषयग्रहणं लक्षीकृत्य प्रति निवृत्तिः प्रत्याहार इति प्रोक्तः। बाह्यरूपादिविषयेष्व-प्रवृत्तिश् चक्षुरादीन्द्रियैश्चक्षुर्विज्ञानादीनाम्, अध्यात्मविषयेष्वेव प्रवृत्तिर् मांसचक्षुरादीन्द्रियैर्मांसचक्षुर्विज्ञानादीनाम्। अध्यात्मनि शून्यतावलम्बनेना-कल्पितं सर्वभावदर्शनं शून्ये प्रतिसेनादर्शनं कुमारिकाया इवेति प्रत्याहाराङ्ग-मुच्यत इत्यर्थः॥

प्रत्याहार यह उद्देश्य पदों का निर्देश और प्रति निर्देश कहा गया है – दशानाम् इत्यादि श्लोकों से। यहाँ पर इन्द्रियाँ और उनका विषय, उसमें दशों इन्द्रियों का विषय और विषयों की स्ववृत्ति अर्थात् अपने आप में रहना ही स्ववृत्ति है। सत्तामात्र स्ववृत्ति है। विषय और विषयी का विषयभाव में परिणत होना और विषय ग्रहण व्यापार की उपरति = निवृत्ति ही स्ववृत्ति है। उसमें स्थित स्ववृत्ति में स्थित होना है न कि ग्राह्य और ग्राहक रूप से प्रवृत्ति होना है। इसी अर्थ को कहा है – कामाहार के प्रति प्रतीति निर्देश के द्वारा। जिन्हें चाहा जाता है या अभिलषित होने से वे कामरूप आदि विषय हैं। उन्हें इन्द्रियों के द्वारा आहरण करना, प्राप्त करना ही कामाहार है। उस कामाहार के प्रति चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा रूपादि विषय ग्रहण को लक्षित करके निवृत्त होना ही प्रत्याहार कहा गया है। बाह्य रूप आदि विषयों में अप्रवृत्ति, चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा चक्षुविज्ञान आदि का आध्यात्म विषयों में ही प्रवृत्ति होना, मांस चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा मांस चक्षु विज्ञान आदि का। अध्यात्म में, शून्यता के अवलम्बन द्वारा अकल्पित सर्वभावदर्शन शून्य में कुमारि कन्या के द्वारा कल्पना में अनेक विषयों के देखने के समान ही प्रत्याहार का अङ्ग कहा गया है।

द्वितीयमङ्गमाह– पञ्चेत्यादि। पञ्चेत्युपलक्षणमुभयत्र पञ्चकामा इति सर्वे भावाः स्थिरचलात्मकाः। पञ्चबुद्धप्रयोगत इति सर्वबुद्धप्रयोगतः। स्वभावादेव सर्वभावाः सर्वबुद्धमयाः। समासेनेति तेषां सर्वबुद्धमयानां सर्वभावानां योगिप्रत्यात्मवेद्यत्र्यध्वत्रैधातुकप्रतिभासैकरूपेण कल्पनं विकल्पनं विकल्पविभ्रमापगतं प्रबन्धप्रवृत्तं यद्दर्शनं तद्ध्यानमुच्येत। एतमेवार्थं सर्वबुद्धमयं शान्तं सर्वकामप्रतिष्ठितमिति प्रतिनिर्देशेन वक्ष्यति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वितीय अङ्ग का निर्देश करते हैं पञ्च इत्यादि वाक्यों से। पञ्च यह उपलक्षण है क्योंकि दोनों तरफ पञ्चकाम इस प्रकार सभी पदार्थ स्थिर और चञ्चल हैं। पञ्च बुद्ध प्रयोग का अर्थ सभी बुद्धों के ज्ञान से है। स्वभाव से ही सभी पदार्थ सभी बुद्धों के द्वारा प्रयुक्त और सर्वबुद्धमय भी हैं। संक्षेप में कहने का तात्पर्य है उन सभी बुद्धमय पदार्थों का, योगी-प्रत्यात्म-वेद्य त्रि-अध्व त्रैधातुक मात्र में प्रतीति होने से कल्पना करना ही विकल्पन है, उसी विकल्प-रूप विभ्रम से रहित प्रबन्धयुक्त जो दर्शन है उसे ही ध्यान कहा गया है। इसी अर्थ को, जो सर्वबुद्धमय है, शान्त है, सर्व काम-प्रतिष्ठित होने से प्रतिनिर्देश के द्वारा कहा जाएगा।

तच्च ध्यानं वितर्कश्चेत्यादिभेदेन पञ्चविधं भवति। गुह्यत्रयेत्यादि। कायवाक्चित्तात्मकं त्रैकालिकं त्रैधातुकं गुह्यत्रयम्। तस्योच्चितस्थूलाकारेण त्रैधातुकप्रतिभासमात्रत्वेन सकृदुदयो ऽवगतिरवबोधो यः स गुह्यत्रयोदयः। स एव वितर्कः। विचारस्तत्प्रयोगतेति। तस्मिन् वितर्कविषये प्रभोगता आभोगः। स्थावरजङ्गमघटपटादिविशेषेण भावग्रहणं विचारः। प्रीतिसङ्काशं विचारविषयेषु सर्वभावेषु चित्तारोपणहेतुभूतं सौमनस्यम्। सुखसंग्रहमिति। आरोपितचित्तेभ्यः सर्वभावेभ्यः सुखसंपत्तिः कायप्रस्त्रब्धिहेतुकः सुखसंग्रहः।

२- वह ध्यान वितर्क आदि भेदों के कारण पाँच प्रकार का हो जाता है। गुह्यत्रय इत्यादि। काय-वाक्-चित्त ही त्रैकालिक, त्रैधातुक गुह्यत्रय हैं। वह उन्नत और स्थूलाकार होने से त्रैधातुक प्रतिभासमात्र होने से एक ही बार उसका उदय, अवगति और अवबोध भी होता है इसी से वह गुह्य त्रयोदय कहा गया है। वही वितर्क है। विचार और उसका प्रयोग भी। उस वितर्क के विषय में प्रयोग होना ही आभोग है। स्थावर, जङ्गम, घट पट (कपड़ा) आदि विशेषणों के द्वारा भावग्रहण करना ही विचार है। प्रीतियुक्त विचारों के विषयों में अर्थात् सभी पदार्थों में चित्तारोपण का हेतभूत सौमनस्य होता है। सुखसंग्रह का तात्पर्य है आरोपित चित्तों से जो सर्वभावमय है के द्वारा ही सुख संपत्ति होती है उसे ही काय के प्रसब्धि का हेतुभूत सुखों का संग्रह कहा गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वचित्तमित्यादि। ज्ञानस्य चक्षुरादिषट्प्रवृत्तिविज्ञानस्य ज्ञेये रूपादिके धर्मधातुपर्यन्त उदयो ज्ञानज्ञेयोदयः। तस्य क्षयः। चित्तस्य ग्राह्यग्राहक-शून्यत्वलक्षणा चित्तैकाग्रता स्वच्रित्तमित्युक्तम्। तदेवंविधं चित्तं सर्वबुद्धमयं ग्राह्यादिविकल्पशमनाच्छान्तं त्रैधातुकप्रतिभासमात्रत्वेन शून्यतैकनिष्ठम्। सर्वकामप्रतिष्ठितम् इति। सर्वकामाः सर्वभाषाः स्वाभिन्न-प्रतिभासैकरूपेण प्रतिष्ठिताः स्थिता अत्रेति सर्वकामप्रतिष्ठितम्॥

स्वचित्त आदि जो कहा गया है वह – ज्ञान का तात्पर्य है चक्षुरादि षट् प्रवृत्ति ज्ञान के ज्ञेयस्वरूप रूप आदि धर्मधातु पर्यन्त उदय होना हि ज्ञानोदय है। उसका क्षय। चित्त का ग्राह्य-ग्राहक शून्यत्व लक्षणा ही चित्तैकाग्रता को ही स्वचित्त कहा गया है जो सर्वबुद्धमय है, गुह्य आदि विकल्पों के शमन होने से शान्त त्रैधातुक प्रतिभास मात्रत्व होने से शून्यता में प्रतिष्ठित कहा गया है। सर्वकाम का अर्थ है सभी पदार्थ। सभी पदार्थ स्व से अभिन्न प्रतिभास एकता के रूप में प्रतिष्ठित है यहाँ पर इसी से सर्वकाम प्रतिष्ठित होता है।

तृतीयमङ्गमाह– पञ्चज्ञानेत्यादि। पञ्चज्ञानान्यक्षोभ्यादिपञ्चबुद्धाः, ललनापञ्चमण्डलधर्मिणो विज्ञानादिपञ्चस्कन्धाः। तन्मयं श्वासं वाम-नासापुटे। इस पञ्चभूतशब्देन रसनापञ्चमण्डलधर्मिणः पृथिव्यादि-पञ्चधातवः। तत्स्वभावं श्वासं पञ्चभूतस्वभावकं सव्यनासापुटे। निश्चार्य पिण्डरूपेणेति। इह पिण्डं सव्यावसव्यमण्डलानामेकत्वं मध्यमायामवधूत्यां प्राणवायोः। स च प्राणवायुर्निश्चार्य पिण्डरूपेण नासिकाग्रे। अत्र नासिकाशब्देन नाभिहृत्कण्ठललाटोष्णीषकमलकर्णिकोच्यते। तं प्राणवायुं निश्चार्य तस्मान्नासिकाया अग्रे कल्पयेद् भावयेत्। कर्णिकायाः कर्णिकामध्ये न सव्यावसव्यकमलदलैः। अयमेव वामदक्षिणवाहि-द्वयनिरोधेन केवलमध्यमावाहिप्राणवायुः पञ्चवर्णं महारत्नमित्युच्यते प्राणायाम इति वज्रजाप इति च मध्यमाभिन्नाङ्गेन जप्तव्यः। प्राणस्य वामदक्षिणनाड्यामप्रचार इति॥

तीसरा अङ्ग यह है – पञ्च ज्ञान इत्यादि। पञ्च ज्ञान अक्षोभ्य आदि पञ्च बुद्ध हैं। ललना आदि पञ्च मण्डल धर्मी का विज्ञान आदि पञ्च स्कन्ध हैं। इससे युक्त प्राण (श्वास) बायें नासिका में अवस्थित है। यहाँ पर पञ्चभूत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शब्द के द्वारा रसना आदि पञ्च मण्डलधर्मी का पृथिवी आदि पञ्चधातु अवस्थित हैं। उस स्वभाव से युक्त प्राण पञ्च महाभूत के स्वभाव वाला होता है वामनासापुट में अवस्थित है। उसे पिण्ड रूप में बाहर करके वाम और दक्षिण नासिका में स्थित उसे एक करके (पिण्ड) मध्यम अवस्था (सुषुम्ना) में करना चाहिए। वही प्राणवायु का अवधूती स्थिति है। वह प्राणवायु को निकालकर पिण्ड के रूप में नासिका के अग्रभाग में रखना ही पिण्डीकरण है। यहाँ नासिका शब्द से केवल नाक को नहीं समझना है किन्तु - नाभि, हृदय, कण्ठ, ललाट, शिर और सहस्त्रार आदि स्थान समझना चाहिए। उस प्राणवायु को उन सभी स्थानों से निकालकर नासिका के अग्र भाग में उसे भावित करना चाहिए। कान मूल (कर्णिका) में सव्य और असव्य कमल दलों के साथ नहीं करना है। यही वाम और दक्षिण में बहने वाले प्राणवायु को निरोध करके केवल मध्यम में बहने वाले प्राणवायु को पञ्च वर्णयुक्त महारत्न कहा गया है यही प्राणायाम है, यही वज्र जाप है, इसे ही मध्यम अभिन्न जप भी कहा गया है। प्राण का वाम दक्षिण नाडी में आगमन न होना भी यही है।

चतुर्थमाह। एवं मनसस् त्राणभूतत्वात् स्वमन्त्रं प्राणं हृदये कर्णिकात्कर्णिकामध्ये ध्यात्वा बिन्दुगतं बिन्दुस्थानं ललाटं तत्र न्यसेन् निरोधयेत्। निरुद्धं सेन्द्रियं रत्नं धारयेद्गमनागमनरहितं कुर्यात्। धारणं स्मृतं धारणाङ्गमुक्तम्॥

चौथा यह है - इस प्रकार मन का त्राणभूत होने से अपने मन्त्र को जो प्राणरूप है उसे हृदय में कर्णिका से कर्णिका में ध्यान करके बिन्दु में स्थित बिन्दु स्थान को और ललाट को भी वहीं पर स्थिर करके निरुद्ध करना चाहिए। निरुद्ध भी इन्द्रियों से युक्त रत्न को धारण करना है और गमनागमन को पूर्ण निरुद्ध करें। धारणा और धारणाङ्ग की व्याख्या की गई।

निरोधवज्रेत्यादिसार्धश्लोकद्वयं प्रत्याहाराङ्गे द्रष्टव्यम्। गुरूपदेशाद् धारणानन्तरं तु पाठो ऽस्य पुस्तकपाठनिरासार्थः। निरोध्यते ऽत्रेति निरोधः। निरोधश्चासौ वज्रश्च निरोधवज्रो ऽवधूतीमार्गः। तत्र गते चित्ते प्राणवायौ निमित्तोद्ग्रहः प्रजायते। निमित्तानां धूमादीनामुद्ग्रहः प्रतिभासो जायते उत्पद्यते। प्रथमद्वितीयनिमित्तविलोमकथनं तु गुरुपराधीनत्वकथनार्थम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निरोध वज्र इत्यादि ढाई श्लोकों के द्वारा प्रत्याहार के अङ्गों की व्याख्या की गई है। गुरु के उपदेशों के द्वारा धारणाओं के बाद तु शब्द पढ़ा गया है वह यहाँ क्रमशः वर्णित विषय को बदलने के लिए ही है। रोकना ही निरोध है। निरोध और वज्र वे दोनों शब्द अवधूती अवस्था है अथात् प्राणनिरोध। चित्त वहाँ लीन होने पर प्राणवायु में निमित्त का ग्रहण हो जाता है। निमित्तों का धूम आदि का उद्ग्रह अर्थात् प्रतिभास (=प्रतीति) होता है। प्रथम और द्वितीय निमित्तों का एक आपस में उलटा करना तो केवल गुरु के अधीनता स्वीकार करने के लिए कहा गया है।

स्थिरं निश्चलीभूतं धारणाङ्गेन महारत्नं कर्तृ। तम् इति चण्डालीं नाभिचक्रात् स्फारयेद् उत्थापयेद् वज्रमार्गेण मध्यमार्गेण खधातुषूष्णीषचक्रे। साप्युष्णीषकमलकर्णिकोत्थिता सती हंकारं द्रावयित्वा कायवाक्चित्तज्ञानस्वभावांश्चतुरो बिन्दूनानन्दादिभेदेन कुलिशमणिकमलकर्णिकां नयेदिति धारणानन्तरं स्वरसतश्चण्डाली ज्वलतीति गुरूपदेशः॥

स्थिर, निश्चल, धारणा का अङ्ग महारत्न (प्राण) ही यहाँ पर कर्ता है। उसे, उस चाण्डाली को नाभिचक्र से ऊपर उठाना चाहिए और वज्रमार्ग से उसे उष्णीष चक्र में स्थापित करना चाहिए। वह भी सहस्रकमल चक्र में स्थित होकर हंकार को द्रवीभूत करके काय-वाक्-चित्त ज्ञान रूप स्वभावों से युक्त चार बिन्दुओं को आनन्द आदि भेदों से कुलिश-मणि-कर्णिका में ले जाकर धारणा के बाद स्वयं ही चण्डाली ज्वलित होती है यही गुरु का उपदेश है।

पञ्चममङ्गमाह - विभाव्येत्यादि। प्रत्याहारध्यानाङ्गाभ्यां यद्विभाव्य स्थिरीकृतं त्रैधातुकप्रतिभासात्मकं संवृतिसत्यमनुस्मृत्या तदाकारं तु संस्फरेत्। तदाकारं तु संवृतिसत्याकारं संस्फरेत्। समस्तनभस्तलव्यापकं पश्येत्। सकलत्रैकालिकत्रिभुवनस्य दर्शनमनुस्मृतिरिति ज्ञेयमनुस्मृत्यङ्गं ज्ञेयमित्यर्थः। अत एवाह - प्रतिभासस्तत्र जायत इति त्रैधा कस्य प्रतिभासः। तत्रैत्यनुस्मृत्यङ्गे जायते॥

पञ्चम अङ्ग इस प्रकार कहा गया है विभाव्य इत्यादि के द्वारा। प्रत्याहार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और ध्यान के अङ्गों के द्वारा चिन्तन करके स्थिरीकृत त्रैधातुक प्रतिभासात्मक संवृतिसत्य का स्मरण करते हुए उसी आकार को भावित करें। उसका आकार तो संवृति सत्य के आकार का ही है उसे ही प्रकाशित करना चाहिए। उसे समस्त आकाशमण्डल में व्याप्त है ऐसी भावना करनी चाहिए। समग्र त्रिकालात्मक – त्रिभुवन का दर्शन ही अनुस्मृति है यह जानने योग्य अनुस्मृति का अङ्ग है जो यहाँ जान लिया गया है। इसीलिए कहा है वहाँ पर प्रतिभास होता है इस प्रकार त्रैधातुक की ही प्रतीति होती है। वहाँ पर जो अनुस्मृति है उसके अङ्ग में उत्पन्न होती है वह स्मृति।

षष्ठमङ्गमाह – प्रज्ञेत्यादि। प्रज्ञोपायसमापत्त्या निष्यन्दादिक्रमेण व्योमकमलोद्गमे ऽक्षरसुखवशाज्ज्ञेयज्ञानैकलोलीभूतत्वेन वैमल्यावस्थायां सर्वभावान् प्रतिभासरूपान् स्थावरजङ्गमान् समासतः संक्षेपात् संहृत्योपसंहृत्य पिण्डयोगेन परमानास्रवमहासुखात्मकप्रभास्वरैकरूपेण भक्षित-सर्वलोहादिधातुरसैकरूपसिद्धरसरूपेणेव तस्य परमानास्रवमहासुखैकरसप्रभास्वरस्य मध्ये बिम्बं संवृतिसत्यात्मकं भावयेत् पश्येत्। अस्य प्रतिनिर्देशः। झटितीत्यादि। ज्ञानस्य सत्यद्वयाद्वैधीभावस्य झटिति निष्पत्तिरधिगमः समाधिरिति समाध्यङ्गसंज्ञितमिति। कालचक्रोत्तरे तु मञ्जुश्रीपादैरतिस्फुटमुक्तः षडङ्गयोगो यथा –

षडङ्ग की व्याख्या करने के लिए प्रज्ञा इत्यादि प्रारंभ करते हैं। प्रज्ञा-उपायों के सामरस्य युक्त निष्यन्दादि क्रम से आकाश कमल में उद्गत अक्षरसुख द्वारा ज्ञेय और ज्ञान के एकाकार से अत्यन्त निर्मल अवस्था में सभी पदार्थों को, प्रतीत स्वरूपों से युक्त स्थावर और जङ्गम पदार्थों को संक्षेप में उपसंहृत करते हुए पिण्डयोग से परम अनास्रव – महासुखात्मक प्रभास्वरूप से सभी लौह आदि धातुओं का भक्षण करने से एक रस सिद्ध हुआ है अतः उसी परम, अनास्रव, महासुखैकरस प्रभास्वर स्वरूप में बिम्ब संवृति सत्यात्मक स्वरूप की भावना करें। इसका प्रतिनिर्देश झटिति आदि से है। ज्ञान की सत्यद्वयात्मक द्वैधीभाव का तत्काल ही निष्पत्ति ही अधिगम है, वही समाधि है अतः समाधि के अंग कहे गए हैं। कालचक्रोत्तर तन्त्र में श्रीमञ्जुश्री ने अति स्पष्ट रूप से कहा है वह षडङ्ग योग ही है। उसे यों प्रकट किया गया है –

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रत्याहारादिषड्भिर्दशबलबलिना शून्यताभावनोक्ता
रात्रौ धूमादियोगः पुनरपि दिवसे व्योम्नि दीपादिको ऽपि।
प्रत्याहारेण योगी गगनतलगतं पश्यति त्र्यध्वरूपं
तत्र ध्यानेन चित्तं दृढमपि कुरुते बाह्यभावान्विहाय॥
प्राणायामैस्तमिन्यां शशिरविरहितं वाहयेत् प्राणवातं
निःश्वासोच्छ्वासहीनं पुनरपि कुरुते धारणाङ्गेन बिन्दौ।
खे ऽनुस्मृत्या स्वबिम्बाच्छशिन इव महारश्मयो निश्चरन्ति
वज्राच्छुक्रं समाध्या व्रजति शिरसि वैमल्यसौख्यप्रपूर्णम्॥ इति॥

प्रत्याहार आदि षड्योगों के द्वारा और दश बलों के बल से ही शून्यता प्रतिपादित हुई है। रात्रि के समय में धूम आदि के सहयोग द्वारा प्रज्वलित अग्नि और दिन में सूर्यरूप दीपक से प्रकाशित आकाश मण्डल में प्रत्याहार द्वारा योगी आकाशतल में व्याप्त त्र्यध्वरूपों को देखता है और ध्यान के द्वारा चित्त को भी दृढ करता है, बाह्य भावों को सर्वथा त्याग देता है। रात्रि के समय में प्राणायाम के द्वारा प्राणवायु को बहाये जिसमें सूर्य और चन्द्र न हों। अर्थात् सूर्य-चन्द्र नाडियों में न बहायें। श्वास को क्रमशः निष्पन्द बनाये, फिर क्रमशः धारणा द्वारा बिन्दु में अपने को समाहित करें। इस प्रकार आकाश में स्थित होकर अनुस्मृति के द्वारा जब योगी एकाग्र होता है उस समय अपने ही बिम्ब से चन्द्र किरणें प्रस्फुटित होती हैं और वज्रधातु से शुक्र निःसृत होते हैं, समाधि के द्वारा शिर स्थान में विमल सुख से पूर्णता अवतरित होती है।

इदानीं प्रत्याहारादिफलमाह– प्रत्याहारं समापद्येत्यादिश्लोक-त्रयेण। प्रत्याहारं समापद्येति धूमादिं दशनिमित्तानुपूर्वेण त्रैधातुकबिम्बदर्शनं प्रत्याहाराङ्गेन स्थिरीकृत्य। यदा च बिम्बदर्शनं स्थिरीकृतं भवति प्रत्याहारेण तदा योगी सर्वमन्त्रैरधिष्ठ्यते वचसा वरदानादिकं ददाति। ध्यानज्ञानं समापद्येति ध्यानाङ्गेन बिम्बे स्थिरचित्तो यदानिमिषचक्षुर्भवति तदा दिव्यचक्षुर्भवति। एवं दिव्यश्रोत्रादिको भवतीति। पञ्चाभिज्ञत्वमाप्नुयादिति। प्राणायामेनेति। यदा शशिरविमार्गरहितो योगी भवति सदा मध्यमावाहक-स्तदा प्राणायामेन शुद्धः सन् निरीक्ष्यते बोधिसत्त्वैः प्रशस्यते च। धारणाया बलादिति नियतं शून्यताबिम्बं ग्राह्यं वज्रसत्त्वो ग्राहकचित्तं समाविशेत्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धारणाया बलेन प्राणस्य गतागतक्षयेणैकलोलीभवति। अनुस्मृति-समायोगादिति। अनुस्मृतिसमायोगो बिम्बालिङ्गनं चित्तस्य सर्वविकल्प-रहितत्वं यदा तदा विमलं प्रभामण्डलं जायते। रोमकूपात् स्फरत्पञ्चरश्मयो निश्चरन्ति। समाधिवशितामात्रादिति। इह ग्राह्यग्राहकचित्तयोरेकत्वेन यदक्षरं सुखं भवति तत् सुखं समाधिरित्युच्यते। तस्य वशितामात्रं तस्मादचलनं ततो निरावरणत्वं भवेत्। परमाक्षरज्ञानलक्षणप्रभास्वरज्ञानवशितामात्रादेव निरावरणता भवेदित्यर्थः। तदुत्तरकालं सत्यद्वयाद्वैधीभावलक्षणभूतन-यात्मकसमाध्यवगमः फलभूतो भवतीति क्रमः॥

इस समय यहाँ पर प्रत्याहारादि के फलों को प्रत्याहारं समा इत्यादि तीन श्लोकों से बताया गया है। प्रत्याहार को प्राप्त करके अर्थात् धूम आदि का दशनिमित्तानुपूर्वक त्रैधातुक बिम्ब दर्शन प्रत्याहार के अङ्गों से स्थिर करके कहा गया है। जब बिम्ब दर्शन स्थिर हो जाता है तब योगी सभी मन्त्रों को जान जाता है और वचनों के द्वारा वरदान आदि देता है। ध्यान ज्ञान प्राप्त करने का अर्थ है ध्यानाङ्गों के द्वारा बिम्बों में जब स्थिर चित्त हो जाता है तब अनिमिषचक्षुवाला हो जाता है और दिव्य चक्षु उपलब्ध होते हैं। साथ ही दिव्यश्रोत्र सम्पन्न भी हो जाता है। पञ्च अभिज्ञत्व आदि प्राप्त करें। इसका अर्थ है प्राणायाम के द्वारा। उस समय वह योगी सूर्य चन्द्र नाडीयों के मार्ग से मुक्त होकर मध्यम वाहक होता हुआ प्राणायाम द्वारा शुद्ध होकर दृष्टि गोचर होता है, बोधिसत्त्वों से प्रशंसित भी होता है। धारणा के बल से का अर्थ है निश्चित रूप से शून्यताबिम्ब को जो ग्राह्य है वज्रसत्त्व स्वयं ही ग्राहकचित्त में समाविष्ट करें। धारणा के बल से प्राण के गतागतक्षयों के द्वारा एक चित्तयुक्त हो जाता है। अनुस्मृति समायोग से तात्पर्य है – अनुस्मृति का समायोग अर्थात् चित्त का बिम्ब को आलिङ्गन करना ही सर्व विकल्पों से रहित होते हुए जब योगी एकाग्र हो जाता है तब अत्यन्त विमल प्रभामण्डल की उत्पत्ति हो जाती है। उसके रोमकूपों से प्रकाशमय पञ्च प्रकार की रश्मियाँ निकलती हैं। समाधिवशिता मात्र से का तात्पर्य है यहाँ ग्राह्य एवं ग्राहक चित्तों की एकता द्वारा जो अक्षर परमसुख उपलब्ध होता है वही समाधि कहलाता है। उसकी वशितामात्र और उससे अचल और उसके बाद निरावरण उपलब्ध होता है। परमाक्षर ज्ञान लक्षण प्रभास्वरज्ञानवशिता मात्र से ही निरावरणता की उपलब्धि होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसके बाद सत्यद्वय की अद्वैधीभाव लक्षणभूत नित्यात्मक समाधि का अवगम फलीभूत होता है यही क्रम है।

श्रीकालचक्रे ऽप्युक्तो विमलप्रभायां विस्तरेण व्याख्यातश्च तद्यथा–

प्रत्याहारो जिनेन्द्रो भवति दशविधो ध्यानमक्षोभ्य एव
प्राणायामश्च खड्गी पुनरपि दशधा धारणा रत्नपाणिः।
डोम्ब्यां चानुस्मृतिः स्यादपि कमलधरः श्रीसमाधिश्च चक्री
एकैकः पञ्चभेदैः पुनरपि च यतो भिद्यते ह्यादिकाद्यैः॥ इति।

अस्यायमर्थः। प्रत्याहार आदिकर्मणि जिनेन्द्र इति ज्ञानस्कन्धः। स च निमित्तभेदेन दशविधो धूममरीचिखद्योतदीपज्वालाचन्द्रादित्यराहुकला-बिन्दुदर्शनभेदेनाकल्पितो ज्ञानस्कन्धः। ध्यानमक्षोभ्य एव दशविधो विज्ञानस्कन्धो विषयविषयिणां दशानामेकत्वं विश्वबिम्बे ध्यानमिति। प्राणायामश्च दशविधः खड्गीति संस्कारस्कन्धः। वामदक्षिणमण्डलैक-लोलीभूतत्वादिति। पुनरपि दशधा धारणा रत्नपाणिरिति वेदनास्कन्धः। प्राणस्य धारणा नाभिहृत्कण्ठललाटोष्णीषकमले गतागतभेदेन दशविधेति। डोम्ब्यां चानुस्मृतिः स्यादपि कमलधर इति संज्ञास्कन्धो दशविधः। स चानुस्मृतिर् डोम्ब्यां मध्यनाड्यां दशकामावस्थाभेदत इति।

चिन्ता काङ्क्षा ज्वरो ऽङ्गे वरमुखकमले शुष्किरन्नाप्रवृत्तिः
कम्पोन्मादश्च धूर्मा प्रभवति मनसो विभ्रमस्तीव्रमूर्च्छा।
धूमाद्या वज्रिणस्ताः प्रकटदशविधाः प्राणिनो ऽङ्गेष्ववस्था
लोके ता मन्मथस्य प्रकटितनियताः को जिनः कः सकामः॥

इति दश। श्रीसमाधिश्च चक्रीति वैरोचनो दशविधः समाधिः। दशवायूनां निरोधत इति। एवं भगवानप्रतिष्ठितनिर्वाणो ऽवाहो वायूनां यत इत्यर्थः॥

श्रीकालचक्र में भी कहा और विमलप्रभा में विस्तारपूर्वक व्याख्या भी हुई है जो इस प्रकार है –

प्रत्याहार आदि श्लोक का यह अर्थ है प्रत्याहार कर्म में जिनेन्द्र ज्ञानस्कन्धात्मक है। वह भी निमित्तों के भेद से दशप्रकार का होता है। धूम,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मरीचि, खद्योत, दीपज्वाला, चन्द्र, सूर्य, राहु, कला, बिन्दु और दर्शन के भेद से कल्पित ज्ञानस्कन्ध है। ध्यान अक्षोभ्य ही है जो दशप्रकार का है और विज्ञानस्कन्ध विषय और विषयी के भेद रूप भी दशों का एकात्मकरूप से विश्वबिम्ब में ध्यान करना ही है। प्राणायाम दशविध है। खड्गी यह संस्कार-स्कन्ध है। वामदक्षिण का एकीभाव का अर्थ है फिर भी दशप्रकार की धारणा जो रत्नपाणि है वही वेदना स्कन्ध है। प्राण की धारणा नाभि-हृदय-कण्ठ-ललाट-शिर कमलों में जाना और आना इस भेद से दश प्रकार है। डोम्बी में स्मरण करना ही वह भी कलधर इस प्रकार संज्ञास्कन्ध दशप्रकार का है। वह अनुस्मृति भी डोम्बी में अर्थात् मध्यनाडी – सुषुम्ना में दश काम भेदों से यही यह सब व्याख्या है।

मन में चिन्ता, आकाङ्क्षा, अङ्गों में ज्वर, मुख में शुष्कता, प्राणों में खाने की अनिच्छा, शरीर में कम्पन, उन्माद, मन में अस्थिरता, विभ्रम और तीव्र मूर्च्छा तथा धूम ये सब वज्री के दशविध प्रकटरूप प्राणी के अङ्गों में लोक में काम के प्रकटित नियत हैं इससे यह सन्देह होता है कौन जिन = बुद्ध हैं और कौन कामयुक्त व्यक्ति है? इस प्रकार वे सब दशविध हैं। श्री समाधि और चक्री यह दश प्रकार का वैरोचन ही है जो समाधि है। दशवायुओं का निरोध का तात्पर्य है – वे ही भगवान् अप्रतिष्ठित निर्वाण स्वरूप है जो वायु की गति को निरुद्ध करने से होता है यही इसका तात्पर्य है।

इदानीं प्रत्याहारादिलक्षणमुच्यते –

इस प्रकार अब प्रत्याहारादि का लक्षण बताया जाता है –

प्रत्याहारो दशानां विषयविषयिणामप्रवृत्तिः शरीरे
प्रज्ञा तर्को विचारो रतिरचलसुखं ध्यानमप्येकचित्तम्।
प्राणायामो द्विमार्गस्खलनमपि भवेन्मध्यमे प्राणवेशो
बिन्दौ प्राणप्रवेशो ह्युभयगतिहतो धारणा चैकचित्तम्॥
चण्डाल्यालोकनं यद् भवति खलु तनौ चाम्बरे ऽनुस्मृतिः स्यात्
प्रज्ञोपायात्मकेनाक्षरणसुखवशाज् ज्ञानबिम्बे समाधिः।
एतन्मुद्रादिभेदैस्त्रिविधमपि भवेत् साधनं विश्वभर्तुस्
तिस्रो मुद्रास्त्रिमात्रास्त्रिविधगतिवशात् कर्मसङ्कल्पदिव्याः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इह प्रत्याहारो नाम शरीरे विषयविषयिणां दशानां सम्बन्धेना-प्रवृत्तिर्विज्ञानस्य शून्यताबिम्बे विषयेषु प्रवृत्तिरन्यैश्चक्षुरादिभिः पञ्चविधै-रिति। तथा तस्मिन्नेव बिम्बे प्रज्ञेत्यालोकनम्। तर्क इति भावग्रहणम्। विचार इति तस्य निश्चयार्थः। रतिरिति बिम्बासक्तिः। अचलसुखमिति बिम्बेन सह चित्तस्यैकीकरणम्। एवं ग्राह्यग्राहकभेदेन ध्यानं दशविधम्। इह प्राणायामो नाम द्विमार्ग इति वामदक्षिणमार्गः। स्खलनं निरोधो मध्यमे मार्गे प्रवेशः। स च दशविधो दशमण्डलनिरोधतः। इह बिन्दाविति ललाटे प्राणप्रवेशः। उभयगतिहत इति गमनागमनरहितः। धारणा प्राणस्य ललाट एकचित्तं नाम। चण्डाल्यालोकनं यत् त्रिभवस्याम्बरे सानुस्मृतिर्दशविधा पूर्वोक्ता। प्रज्ञोपायात्मकेनेति। ज्ञेयज्ञानैकलोलीभूतत्वेनाक्षरणसुखवशाज् ज्ञानबिम्बे समाधिश्चेति। सापि दशविधा प्राणादीनामभावत इति। एवं षडङ्गयोगः साधनम्। एतन्मृद्वादिभेदैस्त्रिविधमपि भवेत् साधनं विश्वभर्तुः कालचक्रस्य। तिस्रो मुद्रास्त्रिमात्रास्त्रिविधगतिवशादिति। बोधिचित्तस्य क्षरगतिर्मृदुमात्रा। स्पन्दगतिर्मध्यमात्रा। निष्पन्दगतिरधिमात्रेति। एवं कर्ममुद्रा क्षरसुखदायिका। ज्ञानमुद्रा स्पन्दसुखदायिका। महामुद्रा निष्पन्दसुख-दायिका। एवं त्रिमुद्राभावना षडङ्गयोगेन भगवतोक्ता। इति षडङ्गयोगो भावनीयो योगिना बुद्धत्वायेति॥

यहाँ प्रत्याहार का अर्थ है शरीर में विषय और विषयी गणों का जो दश हैं, सम्बन्ध द्वारा अप्रवृत्ति होना है और ज्ञान का शून्यता बिम्ब में तथा विषयों में चक्षुरादिइन्द्रियों से प्रवृत्ति जो पाँच प्रकार का कहा गया है। और उसी बिम्ब में प्रज्ञा का दर्शन करना। तर्क का अर्थ भावग्रहण है। विचार का अर्थ अर्थ का निश्चय करना है। रति का अर्थ बिम्ब के प्रति आसक्ति। अचलसुख का अर्थ बिम्ब के साथ चित्त की एकता। इस प्रकार ग्राह्य और ग्राहक के भेद से ध्यान दशप्रकार का है। प्राणायाम का अर्थ दो मार्ग अथवा वाम और दक्षिणमार्ग। स्खलन अथवा निरोध मध्यम मार्ग में प्रवेश होना है। वह दशप्रकार का है जो दश मण्डल के निरोध से होता है। यहाँ बिन्दु में का अर्थ है ललाट में प्राण का प्रवेश। उभयगति हीन का अर्थ गमना-गमन रहित ही है। धारणा-प्राणों का ललानाओं में एकाग्रता। चाण्डाली का आलोकन जो त्रिभवरूप आकाश में अनुस्मृतिपूर्वक होता है वह बतलाया जा चुका है। प्रज्ञोपायात्मकरूप का अर्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है – ज्ञेय और ज्ञान के एकीभावपूर्वक अक्षरणात्मक सुख द्वारा ज्ञानबिम्ब में समाधि ही है। वह भी दश प्रकार प्राणादिकों के अभाव से है। इस प्रकार षडङ्गयोग साधन है। यह कोमल आदिभेदों के द्वारा त्रिविध गति के कारण होता है। बोधिसत्त्व की क्षरगति ही मृदुमात्रा है। स्पन्दगति मध्यमात्रा है। निस्पन्दगति अधिमात्रा है। इसी प्रकार कर्ममुद्रा क्षरसुखदायक है। ज्ञानमुद्रा स्पन्दसुखदायक है। महामुद्रा निस्पन्दसुखदायिका। इस प्रकार त्रिमुद्राभावना षडङ्गयोग द्वारा होती है यह भगवान् ने कहा है। इस प्रकार षडङ्गयोग की भावना करनी चाहिए योगी के द्वारा बुद्धत्व प्राप्त करने के लिए।

इदानीं शून्यताबिम्बसाधनाय दृष्टिरुच्यते –

सेवायामादियोगो नभसि दशविधश्चक्रिणः क्रोधदृष्ट्या
दृष्ट्या विघ्नान्तकस्यामृतपथगतया चोपसाध्ये षडङ्गः।
प्रज्ञासृष्टेन्दुबिन्दोरपि कुलिशमणौ त्र्यक्षरः साधने स्यात्
सौख्यानष्टैकशान्तः सहज इह महासाधने ज्ञानयोगः॥

इह सेवेत्यादि धूमादिनिमित्तभावना सेवा। तस्यां सेवायामादियोगो धूमादिनिमित्तग्रहणं चित्तस्येति। स च दशविधो धूमादिना सार्धं सम्प्रत्ययो भवति। तेन दशविधः। स च चक्रिण इत्युष्णीषस्य। क्रोधदृष्ट्येत्यूर्ध्व-दृष्ट्यानिमिषया निमित्तं भवति। रात्रियोगे चतुर्विधम्। दिवायोगे षड्विधम्। ततो बिम्बम्। एवं बिम्बपर्यन्तं सेवाङ्गं भवति प्रत्याहारेण ध्यानेनेति। दृष्ट्या विघ्नान्तकस्येति। विघ्नान्तको ऽमृतकुण्डलीति तस्य दृष्टिरमृत-स्थानगता ललाटगता। तया दृष्ट्या विघ्नान्तकस्यामृतपथगतया चोपसाध्ये षडङ्गः। चकारात् प्राणायामो धारणा कर्तव्या प्राणस्य बिम्बे दृष्टे सतीत्युपसाधनम्। प्रज्ञासृष्टेन्दुबिन्दोरिति। इह प्रज्ञारागेण सृष्टश्चासाविन्दु-बिन्दुश्च सृष्टेन्दुबिन्दुः। तस्य प्रज्ञासृष्टबोधिचित्तबिन्दोरपि कुलिशमणौ गतस्य यस्त्र्यक्षरो योगो भवति गुह्ये नाभौ हृदये स साधने स्यादिति साधनाङ्गे तृतीये भवति। एवं साधनाङ्गं कर्तव्यम्। सौख्यानष्टैकशान्त इति। इह सौख्येनानष्टेन बोधिचित्तस्य य एकक्षणः स शान्त इत्युच्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सहज इह महासाधने ज्ञानयोग इति। चित्तस्याक्षरसुखेन सहैकत्वमिति महासाधनाङ्गं चतुर्थमिति। एवं ज्ञानसाधने चतुरङ्गम्। देवतासाधन-मुत्पत्तिक्रमेण पूर्वोक्तं लौकिकम्। लोकोत्तरतत्त्वसाधनमुत्पन्नक्रमेण॥

यहाँ पर धूमादिनिमित्त भावना ही सेवा है। उस सेवा में आदि योग ही धूमादि निमित्त ग्रहण चित्त का होता है। वह दश प्रकार का धूम आदि के साथ सम्प्रत्यय होता है। इसीलिए वह दश प्रकार का है। वह चक्री का है अर्थात् सहस्त्रदलकमलचक्र का है। क्रोधदृष्ट्या का अर्थ है ऊर्ध्वदृष्टि निमिष के द्वारा निमित्त होता है। रात्रि के योग में चार प्रकार का है। दिन के योग में ६ प्रकार का है। उसके बाद बिम्ब होता है। इस प्रकार बिम्ब पर्यन्त सेवाङ्ग होता है प्रत्याहार ध्यान के द्वारा दृष्टि से विघ्नान्तक का अर्थ है - विघ्नान्तक अमृत कुण्डली है उसकी दृष्टि ही अमृत स्थान में स्थित अर्थात् ललाट में अवस्थित। उस दृष्टि से विघ्नान्तक का अमृतपथ में अवस्थित होने से षडङ्ग उपसाध्य होता है। चकार से प्राणायाम की धारणा करनी चाहिए, प्राण का बिम्ब में दृष्ट होने पर उपसाधन सम्पन्न होता है। प्रज्ञासृष्टि का अर्थ है - प्रज्ञा राग द्वारा सृष्ट बिन्दु ही सृष्टेन्दु बिन्दु है। उसका प्रज्ञासृष्ट बोधिचित्त बिन्दु का भी कुलिशमणि में स्थित जो त्रि अक्षर युक्त योग है वह गुह्य में, नाभि में और हृदय में साधन के रूप में होता है और वही ध्यानाङ्ग में तृतीय होता है। इस प्रकार साधनाङ्ग होता है। सौख्याष्ट इत्यादि का अर्थ है - बोधिचित्त का जो एकक्षण है वह शान्त कहा जाता है। सहज यहाँ महायान में ज्ञानयोग कहा गया है। चित्त का एकाक्षर सुख के साथ एकत्व का तात्पर्य महासाधानाङ्ग चतुर्थ ऐसा कहा गया है। इस प्रकार ज्ञान के साधन में चतुरङ्ग है। देवता साधन उत्पत्ति क्रम से पूर्वोक्त लौकिक ही है। लोकोत्तर तत्त्वसाधन तो उत्पन्न क्रम से ही है।

इदानीमस्य स्वचित्तस्याभासे प्रवेश उच्यते -

अब, इसके स्वचित्त का आभास में प्रवेश कहा जाता है -

आकाशासक्तचित्तैरनिमिषनयनैर्वज्रमार्गप्रविष्टैः
शून्याद्धूमो मरीचिः प्रकटविमलखद्योत एव प्रदीपः।
ज्वाला चन्द्रार्कवज्राण्यपि परमकला दृश्यते बिन्दुकश्च
तन्मध्ये बुद्धबिम्बं विषयविरहितानेकसम्भोगकायम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इह मन्त्रयाने पारमितायाने च द्विधा योगाभ्यासः। आकाशे योगाभ्यासोऽभ्यवकाशे च। य आकाशे योगमाप्स्यते स रात्रौ निश्छिद्रगृहे ऽन्धकार आकाशासक्तचित्तः, सर्वचिन्तापरिहारेण शून्य एकाग्रमनः कृत्वा दिनमेकं परीक्षयेद्, धूमादिकं निमित्तं पश्यत्यनिमिषनयनो वज्रमार्गं प्रविष्ट इति। इह मध्यमाप्राणप्रविष्टः शून्यादेवाकाशासक्तचित्तैरनिमिषनयनैर्वज्रमार्गप्रविष्टैः शून्याद्धूमो मरीचिः प्रकटविमलखद्योत एव प्रदीप इति निशायोगेन पश्यति। ततो निरभ्रं गगनं पश्यति। ततो गगनात् पुनर्दिवायोगेन गगनोद्भवः स्वयम्भूः प्रज्ञाज्ञानानलो महानिति ज्वाला दृश्यते निरभ्रे गगने। एवं वैरोचनो महादीप्तिर्ज्ञानज्योतिर्विरोचनश् चन्द्राभासः। जगत्प्रदीपः सूर्यः। ज्ञानोल्को वज्राहुः। महातेजाः प्रभास्वरो विद्युत् परमकलेति। विद्याराजो ऽग्रमन्त्रेशो बिन्दुक इति दशधा निमित्तं समाजादौ रात्रियोगेन। नामसङ्गीत्यां दिवायोगेन सन्ध्याभाषान्तरेण भगवतोक्तम्। ततो मन्त्रराजो महार्थकृदिति सर्वाकारं घटपटादिबिम्बदर्शनमिति। तन्मध्ये बिन्दुमध्ये बुद्धबिम्बं विषयविरहितं द्रष्टव्याभावात् कल्पनाभावाच्चानेकसम्भोगकायम्। ततो बिम्बयोगेनानाहतध्वनिर्यः स श्रूयते। एवं निर्माणकायो रूपावभासतः। शब्दावभासतः सम्भोगकाय इत्यर्थः।

इस मन्त्रयान में और पारमितायान में दो प्रकार का योगाभ्यास कहा गया है। आकाश में योगाभ्यास और अभ्यवकाश में - हृदय में भी है। जो योगी आकाश - हृदयाकाश में योग प्राप्त करता है उसे रात्रि में छिद्ररहित घर में अन्धकार में, आकाश में आसक्त चित्त योगी, समग्रचिन्ताओं से रहित होकर शून्य में एकाग्र मनकरके एकदिन बिताये। धूम आदि निमित्त को देखता है अनिमिषदृष्टि सम्पन्न योगी वज्रमार्ग में प्रविष्ट कहा जाता है। यहाँ मध्यमाप्राण में प्रविष्ट होकर शून्य से ही आकाश में आसक्त चित्तों से निर्निमेष नेत्रों से वज्रमार्ग में प्रविष्ट होकर शून्य से धूम और मरीचि जो प्रकट निर्मल खद्योत में ही प्रदीप ऐसा रात्रियोग से देखता है। उसके बाद मेघरहित आकाश को देखता है। उस गगन से फिर दिवायोग द्वारा गगन से उत्पन्न स्वयम्भू प्रज्ञाज्ञान रूपी महान् अग्नि ज्वाला दिखाई देता है निरभ्र आकाश में। इस प्रकार वैरोचन महादीप्ति ज्ञानज्योति विरोचन चन्द्राभास कहा जाता है। जगत्प्रदीप सूर्य है। ज्ञान उल्क वज्राहु कहा जाता है। महातेजस्वी प्रभास्वर विद्युत् परम कला कहा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गया है। विद्याराज अग्रमन्त्रेश बिन्दुक इस प्रकार दश प्रकार का निमित्त समाज आदि में रात्रियोग द्वारा। नामसङ्गीति में दिवायोग द्वारा सन्ध्या भाषान्तर से भगवान् ने कहा है। उसे बाद में मन्त्रराज महार्थकृत् इस प्रकार सर्वाकार घट पट आदि बिम्ब दर्शन कहा जाता है। उसमें बिन्दु के मध्य में बुद्धबिम्ब विषयविरहित द्रष्टा के अभाव के कारण, कल्पना के अभाव से भी अनेक सम्भोगकाय कहा गया है। उसके बाद बिम्बयोग द्वारा अनाहत ध्वनि जो सुनाई देता है। इस प्रकार निर्माणकाय के अवभास से। शब्दावभास से सम्भोगकाय का निर्माण होता है अर्थ है।

आकाशं स्तब्धदृष्ट्या जलधररहितं योगिनालोकनीयं
यावद्वै कृष्णरेखा स्फुरदमलकरा दृश्यते कालनाड्याम्।
तस्यां सर्वज्ञबिम्बं पयसि रविरिवानाविलं विश्ववर्णं
सर्वाकारं स्वचित्तं विषयविरहितं नापरं चित्तमेव॥

अत्र दिवायोग आकाशं स्तब्धदृष्ट्या जलधररहितं योगिनालोकनीयं पूर्वाह्णे ऽपराह्णे च रवेः पृष्ठं दत्त्वा। अन्यथा रविरश्मिभिस्तिमिरं भवति। तेन तद्बाधात् प्रतिदिनमवलोकनीयं यावद् बिन्दुमध्ये कृष्णरेखा बालप्रमाणा स्फुरदमलकरा दृश्यते। कालनाड्यामवधूत्यामन्तर्भूतं सर्वज्ञ-बिम्बं त्रैधातुकमशेषं पयसि रविरिवानाविलं विश्ववर्णं सर्वाकारं स्वचित्तं विषयविरहितं नापरं चित्तमेव। परचित्तं न भवति परचित्तज्ञानाभावतः। तत्र प्रथमं स्वचित्ताभासो मांसचक्षुषा तथागतस्य दृश्यते दिव्यादिचक्षुषा परचित्तज्ञानं दृश्यते तेन धर्मसंग्रह उक्तानि पञ्चचक्षूंषि भगवत इति। एवं ज्ञानक्रमान् मांसचक्षुर्दिव्यचक्षुर्बुद्धचक्षुः प्रज्ञाचक्षुर्ज्ञानचक्षुर्भावनाबलेन भविष्यति। ततो ऽदृष्टं न किञ्चिदस्ति सर्वज्ञस्येति॥

यहाँ पर दिवायोग में आकाश को स्तब्धदृष्टि से जलधररहित अवस्था को योगी द्वारा देखा जाता है पूर्वाह्न और अपराह्न में सूर्य को पीछे करके। अन्यथा रवि रश्मि के द्वारा अन्धकार होता है। उससे उसके बाह्य होने से प्रतिदिन देखना चाहिए और बिन्दु के मध्य में कृष्ण रेखा बाल प्रमाण प्रभायुक्त निर्मल दिखाई देता है। कालनाडी में अन्तर्भूत सर्वज्ञबिम्ब त्रैधातुक अशेष पानी में प्रतिबिम्बित सूर्य के तरह निर्मल विश्ववर्ण, सर्वाकार, स्वचित्त को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयरहित देखना चाहिए दूसरे के चित्त के तरह नहीं देखना चाहिए। परचित्त नहीं होता है, परचित्त ज्ञान के अभाव के कारण। यहाँ सर्वप्रथम चित्त का आभास मांसचक्षु के द्वारा, तथागत के द्वारा दिव्यचक्षु से परचित्त ज्ञान होता है उसे धर्मसंग्रह में वे पाँच भगवान् के चक्षु हैं ऐसा कहा गया है। इस प्रकार ज्ञानक्रमों को मांसचक्षु, दिव्यचक्षु, बुद्धचक्षु, प्रज्ञाचक्षु और ज्ञानचक्षु भावना के बल से होता है। उसके बाद अदृष्ट कुछ भी नहीं है सर्वज्ञ के लिए।

एवंविधश्च षडङ्गयोग आर्यवज्रपाणिपादैरप्युक्तः। इह प्रत्याहारो बाह्यरूपादिविषयेष्वप्रवृत्तिश्चक्षुरादीन्द्रियैश्चक्षुर्विज्ञानादीनामध्यात्मनि विषयेषु प्रवृत्तिर्दिव्यचक्षुरादीन्द्रियैर्दिव्यचक्षुर्विज्ञानादीनामिति। अध्यात्मनि शून्यतालम्बनेनाकल्पितं सर्वभावदर्शनं शून्ये प्रतिसेनादर्शनं कुमारिकाया इवेति प्रत्याहाराङ्गं त्रैधातुकबुद्धबिम्बदर्शनादिति। ततो ध्यानं नाम शून्येषु सर्वधर्मेषु दृष्टेषु सत्सु। प्रज्ञा नाम तेषु चित्तप्रवृत्तिः। वितर्को नाम भावग्रहणं चित्तस्य। विचारो नाम भावग्रहणप्रतिपत्तिः। रतिर्नाम सर्वभावेषु चित्तारोपणम्। अचलसुखं नाम सर्वभावेभ्यः सुखसम्पत्तिः। एवं पञ्चधा ध्यानाङ्गम्। ततः प्राणायामो नाम ललनारसनावामदक्षिणमार्गनिरोधः। अवधूतीमध्यमार्गे प्राणवायोः सदाप्रवृत्तिरिति। पूरककुम्भकरेचकयोगेनावधूत्याम् ॐ कारेण श्वासं हूंकारेण निरोधमाःकारेण निःश्वासं चन्द्रसूर्यराहुस्वभावेन कुरुते योगीति प्राणायामाङ्गम्। ततो धारणा नाम प्राणस्य महेन्द्रवारुणाग्निवायुमण्डले नाभौ हृदि कण्ठे ललाटे प्रवेशो बाह्येऽनिर्गमः। बिन्दौ प्राणप्रवेशनमिति धारणाङ्गम्। ततोऽनुस्मृतिर्नाम स्वेष्टदेवतादर्शनं प्रतिबिम्बाकारं विकल्परहितम्। तस्मादनेकरश्मिस्फुरद्रूपं प्रभामण्डलम्। ततोऽनेकाकारस्फुरद्रूपं त्रैधातुकस्फरणमित्यनुस्मृत्यङ्गम्। ततः समाधिर्नामिष्टदेवतानुरागाद् यदक्षरसुखप्राप्तिस्तस्यामेकीकरणं चित्तस्य, ग्राह्यग्राहकरहितं चित्तं समाध्यङ्गमुच्यते तथागतैः। इह षडङ्गस्य पुनरादिभावनोपदेशस्तन्त्रान्तरेषूक्तः। इह श्रीसमाजोत्तरे सेवोपसाधनं साधनं महासाधनं चेति। तदेव भगवानाह –

**सेवाकाले महोष्णीषबिम्बं विभाव्य यत्नतः।
उपसाधनकाले तु बिम्बं चामृतकुण्डलीम्॥**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधने देवताबिम्बं भावयेद्योगतत्परः।
महासाधनकाले तु बिम्बं बुद्धाधिपं विभुम्॥ इति।

इस प्रकार षडङ्गयोग की व्याख्या आर्यवज्रपाणि ने भी की है। यहाँ प्रत्याहार बाह्य रूपादि विषयों में अप्रवृत्ति चक्षुरादि इन्द्रियों के द्वारा चक्षुविज्ञान आदिओं को अध्यात्म विषयों में प्रवृत्ति, दिव्य चक्षुरादि इन्द्रियों से दिव्य चक्षुविज्ञान आदियों का ऐसा कहा गया है। अध्यात्म में शून्यता के आलम्बन से अकल्पित सर्वभावदर्शन शून्यता में प्रतिसेना का दर्शन कुमारी के भावी कल्पना के तरह प्रत्याहाराङ्ग त्रैधातुक बुद्धबिम्ब दर्शन से उपलब्ध होता है। उसके बाद ध्यान का अर्थ है शून्यात्मक सभी धर्मों के दिखने के बाद ही यह संभव होता है। प्रज्ञा का अर्थ है उनमें चित्त की प्रवृत्ति ही है। वितर्क का अर्थ चित्त के भाव का ग्रहण ही है। विचार का अर्थ भावग्रहण प्रतिपत्ति है। रति का अर्थ सर्वभावों में चित्त का आरोप ही है। अचल सुख का अर्थ सर्वभावों से सुख सम्पत्ति ही है। इस प्रकार पाँच ध्यानाङ्ग हैं। प्राणायाम का अर्थ ललना-रसना वाम दक्षिण मार्ग का निरोध ही है। मध्य मार्ग में प्राणवायु की सदा प्रवृत्ति ही अवधूती है। पूरक-कुम्भक-रेचकों के योग से अवधूती में ऊँकार से श्वास, हूँकार से निरोध, आकार से निश्वास को चन्द्र सूर्य राहु स्वभाव द्वारा योगी करता है इस प्रकार यही प्राणायाम का अङ्ग कहा गया है। इसके बाद धारणा का अर्थ है प्राण का महेन्द्र वरुण अग्नि वायु मण्डलों में, नाभि में, हृदय में, कण्ठ और ललाट में प्रवेश ही धारणा का अङ्ग है। अनुस्मृति का अर्थ स्व इष्ट देवता का दर्शन है जो प्रतिबिम्बाकार एवं विकल्परहित ही है। उसके बाद अनेक रश्मि स्फुरणपूर्वक प्रभामण्डल का उदय होता है। और अनेकाकार स्फुरणयुक्त त्रैधातुक स्फुरण ही अनुस्मृति का अङ्ग है। उसके बाद समाधि अर्थात् इष्ट देवता के प्रति होने वाले अनुराग से जो अक्षर सुख की प्राप्ति होती है उसमें एक होकर चित्त का ग्राह्यग्राहकरहित चित्त ही समाधि का अङ्ग हुआ करता है। यह तथागत ने कहा है। यहाँ षडङ्ग का पुन आदि भावना और उपदेश अन्य तन्त्रों में कहा गया है। श्री समाजोत्तर में सेवा और उपसाधन, साधन तथा महासाधनों का भी विवेचन किया गया है। वही भगवान् कहते हैं –

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अत्र सन्ध्याभाषान्तरेणोष्णीषबिम्बं बुद्धबिम्बं त्रैधातुकमशेषत आकाशे धर्मोदये चित्तवज्रं प्रतिष्ठाप्य सेवाकाले प्रथमकाले प्रत्याहारेण भावयेद् ध्यानाङ्गेन स्थिरीकुर्यादिति। अत्र भगवतः प्रतिज्ञा –

यहाँ सन्ध्याभाषा के अतिरिक्त उष्णीष बिम्ब को और बुद्धबिम्ब को जो त्रैधातुक है, पूर्णरूप से आकाश में धर्मोदय में, चित्तवज्र को प्रतिष्ठापित करके सेवाकाल में, प्रथम काल में प्रत्याहार द्वारा भावित करना चाहिए अर्थात् ध्यानाङ्गों से स्थिर करना चाहिए यही तात्पर्य है। यहाँ भगवान् की यह प्रतिज्ञा है –

सर्वचिन्तां परित्यज्य दिनमेकं परीक्षयेत्।
यदि न स्यात् प्रत्ययस्तत्र तदा मे तन्मृषा वचः॥ इति।

सभी चिन्ताओं को छोड़कर एक दिन बितायें, यदि उसमें ज्ञान न होगा तो मान लेना की मेरा वचन मिथ्या है।

अत्र प्रत्ययो धूमादिकं निमित्तं नान्यन् मन्त्रादिकं दिनेनैकेन साध्यते येन। प्रत्ययो भविष्यति मन्त्रिणाम्। ततो ऽस्तिनास्तिबुद्धिं परित्यज्य निराश्रयां कृत्वा शून्ये गम्भीरो निरालम्बः प्रत्ययो भवति। स प्रत्ययो धूमादिको भाव्यते योगिनेति तथागतनियमः। तथा

करणैर्बन्धसंयोगैः साधयेद्भुवनत्रयम्। इति।

यहाँ धूमादि प्रत्यय ही निमित्त है अन्य मन्त्र आदि नहीं, जिसे एक ही दिन में पूरा किया जाता है। मन्त्रों का निश्चय होता है। इसीलिए है और नहीं है ऐसी बुद्धि को छोड़कर निराश्रित होकर गंभीर शून्य में निरालम्बन ज्ञान होता है। वह प्रत्यय धूमादि है जिसे योगीगण भावित करते हैं यही तथागत का नियम है। तथा बन्ध संयोग रूप करणों से तीनों भुवन की सिद्धि करनी चाहिए।

बुद्धबिम्बं भुवनत्रयं साधयेत् करणैश्चक्षुरादिभिः। स एवोपदेशो गुरुवक्त्रेणावगन्तव्यः। तत्र गुरूपदेशेनाकाशे प्रथमं योगी धूमं पश्यति न मरीचिकामिति स्वानुभवतो ज्ञेयम्। ततो मरीचिका पश्चात्। तदेव धूमादिकं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कल्पनारहितं प्रतिसेनावदिति। एवं प्रथमं धूमनिमित्तं द्वितीयं मरीचिका-निमित्तं तृतीयं खद्योतनिमित्तं चतुर्थं प्रदीपनिमित्तं पञ्चमं निरभ्रगगनसन्निभं निमित्तमिति समाजोत्तरे डाकिनीवज्रपञ्जरे ऽपि भगवतोक्तम्। तदुपरि भगवानाह डाकिनीवज्रपञ्जरे –

बुद्धबिम्ब रूप तीनों भुवनों की सिद्धि करे चक्षुरादि करणों के द्वारा, उस उपदेश को गुरू के मुख से ही जान लेना चाहिए। गुरू के उपदेश से आकाश में पहली बार योगी धूम को देखता है न कि मरीचिका को, अपने अनुभव से ही जान लेना चाहिए। उसके बाद मरीचिका को। वही धूम आदि कल्पना रहित प्रतिसेना के तरह। इस प्रकार पहले धूम आदि निमित्त और दूसरा मरीचिका निमित्त, तृतीय खद्योत निमित्त, चौथा प्रदीपनिमित्त, पञ्चम मेंघरहित गगन ही निमित्त है ऐसा समाजोत्तर डाकिनीवज्रपञ्जर में भी भगवान् ने कहा है। उसके ऊपर भगवान् ने कहा डाकिनीवज्रपञ्जर में –

सर्वज्ञहेतुकं तद्धि सिद्धिनिकटे प्रवर्तकम्।
पश्चान्मायोपमाकारं स्वप्नाकारं क्षणात् क्षणम्॥

इत्यादि। अतो भगवतो वचनादादौ धूमादिनिमित्तभावनाप्रत्ययो भवति। केचित् सिद्धिकाले वदिष्यन्ति। ते सर्वे भगवतः प्रतिज्ञा-भङ्गकारिणः। सर्वचिन्तां परित्यजय दिनमेकं परीक्षयेत् प्रत्ययमिति भगवतो वचनविहेठकाः। यत् सिद्धिकाले लौकिकं धूमादिकं निमित्तं तन् मायास्वप्नोपमं न भवति। साक्षादिह धूमज्वालादिदहनक्रियासामर्थ्यात् तथा कुङ्कुमपुष्परत्नसुवर्णादिवृष्टिरपि। अतः षडङ्गयोगाद्धूमादिकं निमित्तं भवतीति। तथा डाकिनीवज्रपञ्जरे भगवानाह –

सर्वज्ञहेतुवाला ही सिद्धि के समीप में प्रवर्तक होता है। उसके बाद माया के तरह ही स्वप्नवत् दीखता है प्रतिक्षण। इत्यादि। इसीलिए भगवान् के वचनों में धूमादिनिमित्तक भावना का प्रत्यय होता है। कुछ सिद्धिकाल में बताते हैं। वे सब भगवान् के प्रतिज्ञाभङ्ग करने वाले हैं। भगवद् वचन है – सभी चिन्ताओं को छोड़कर एक दिन बिताने पर सब सिद्धि प्राप्त होती है यह वचन रूप प्रतिज्ञा भङ्ग करते हैं। जो सिद्धिकाल में लौकिक धूमादि निमित्त होता है वह माया स्वप्नोपम नहीं होता है। सीधे ही धूम ज्वालादि दहन क्रिया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामर्थ्य होने से और कुङ्कुम पुष्प, रत्न, सुवर्ण आदि की वृष्टि भी होती है। अतः षडङ्गयोग से धूम आदि निमित्त होता है। जैसा कि डाकिनी वज्रपञ्जर में भगवान् ने कहा है –

षडङ्गं भावयेत् तस्मात् स्वाधिष्ठानसमं पुनः।
पश्चात् स्वं लक्षयेच्चिह्नमनुलोमविधिक्रमैः॥

स्वाधिष्ठानचक्र में षडङ्गयोग की भावना करनी चाहिए और अपने आपको अनुलोम के विधि के क्रम से लक्षित करें।

अत्र स्वाधिष्ठानं नाम संवृतेः सत्यदर्शनं प्रत्याहारेण। चिह्नं नाम मेघधूमादिवत् प्रतिभासः। स च प्रथमं दृश्यते प्रदीपपर्यन्तम्। तत आकाशं निरभ्रं निर्मलमिति। तन्त्रेष्वपरं ज्वालादिबिन्दुपर्यन्तं षडन्यनिमित्तं मायाजाले समाधिपटले प्रोक्तं भगवता। तद्यथा –

यहाँ स्वाधिष्ठान का अर्थ है संवृत्ति सत्य दर्शन प्रत्याहार द्वारा, चिह्न का अर्थ आदि के तरह प्रतिभास होना है। वह प्रदीपपर्यन्त पहले दिखाई देता है। उसके बाद आकाश निर्मल, निर्मेघ दिखाई देता है। तन्त्रों में दूसरा ज्वालादि बिन्दु पर्यन्त षडङ्ग योग दूसरे के निमित्त हैं जिसे मायाजाल तन्त्र के समाधिपटल में भगवान् ने कहा है। जो इस प्रकार है –

गगनोद्भवः स्वयम्भूः प्रज्ञाज्ञानानलो महान्॥
वैरोचनो महादीप्तिर्ज्ञानज्योतिर्विरोचनः।
जगत्प्रदीपो ज्ञानोल्को महातेजाः प्रभास्वरः॥
विद्याराजो ऽग्रमन्त्रेशो मन्त्रराजो महार्थकृत्। इति।

आकाश से उद्भूत, स्वयम्भू, प्रज्ञाज्ञान रूपी अग्नि, महान् वैरोचन, महादीप्त, ज्ञान ज्योति रूप विरोचन हैं। वे ही जगत् के प्रदीप हैं, ज्ञानपुञ्ज, प्रभास्वर, महातेज, विद्याराज, अग्रमन्त्रेश, मन्त्रराज तथा महान् अर्थ के कर्ता हैं।

गाथाद्वयेन मायाजाले ऽपरनिमित्तं भगवतोक्तं सन्ध्याभाषान्तरेण।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्वोक्तान्निरभ्रगगनाद्भवति प्रतिभासो यः स गगनोद्भवः स्वयम्भूः सर्वविकल्परहितचित्तादिति। अत्र प्रज्ञाज्ञानानल इति ज्वालाप्रतिभासः। वैरोचनो महादीप्तिरिति चन्द्रप्रतिभासः। स एव ज्ञानज्योतिर्विरोचन इति। जगत्प्रदीप इति सूर्यप्रतिभासः। ज्ञानोल्क इति राहुप्रतिभासः। महातेजाः प्रभास्वर इति विद्युत्प्रतिभासः। विद्याराजो ऽग्रमन्त्रेश इति बिन्दुप्रतिभासो नीलवर्णचन्द्रमण्डलाकार इति। मन्त्रराजो महार्थकृदिति सर्वाकारत्रैधातुक-भावप्रतिभासो मायास्वप्नप्रतिसेनातुल्यो दृश्यते योगिना प्रत्याहारेणेति चक्षुरादीन्द्रियकरणेन। ततः प्राणायामबन्धेन। एभिः करणैर्बन्धसंयोगैः साधयेद्भुवनत्रयं कामरूपारूप्यलक्षणं स्थिरचलस्वभावात्मकमिति। तथा डाकिनीवज्रपञ्जरे भगवानाह -

इन दो गाथाओं के द्वारा मायाजाल में अपरिनिमित्तक भगवान् ने सन्ध्याभाषा में बताया है। पूर्वोक्त निरभ्रगगन से प्रतिभास जो गगन से उद्भूत स्वयम्भू सर्वविकल्परहित चित्त से होता है। यहाँ प्रज्ञाज्ञान अनल का अर्थ ज्वाला प्रतिभास है। वैरोचन महादीप्ति का अर्थ चन्द्र प्रतिभास है। वही ज्ञान ज्योति विरोचन है। जगत् प्रदीप का अर्थ सूर्य प्रतिभास है। ज्ञानोल्क का अर्थ राहु प्रतिभास। महातेजा प्रभास्वर - विद्युत्प्रतिभास है। विद्याराज अग्रमन्त्रेश - का अर्थ बिन्दुप्रतिभास नीलवर्ण चन्द्रमण्डलाकार है। मन्त्रराज महार्थकृत् का तात्पर्य है - सर्वाकार त्रैधातुक भावप्रतिभास, माया स्वप्न प्रतिसेना तुल्य योगियों के द्वारा प्रत्याहार बल से देखा जाता है जिसमें चक्षुरादि करण होते हैं। उसके बाद प्राणायाम किया जाता है। इन बन्धसंयोगरूप करणों से तीनों लोकों की सिद्धि करनी चाहिए कामरूप असंख्य लक्षणयुक्त, स्थिर-चल स्वभावयुक्त जानना चाहिए। इसे ही डाकिनीवज्रपञ्जर में भगवान् ने कहा है -

सिध्यत्यशेषनिःशेषं त्रैधातुकचराचरम्।
लोकधातुषु सर्वेषु यावन्तो वज्रदेहिनः॥ इति।

अशेष, समग्र त्रैधातुक चराचर सिद्ध होता है और सभी लोक धातुओं में जितने भी वज्र देही हैं वे भी सिद्ध होते है।

षडङ्गयोगभावनयेति भगवतो नियमः। तथा श्रीसमाजे भगवानाह-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

षडङ्गयोग भावना के द्वारा कहा गया वचन भगवान् का नियम है। तथा श्री समाज में भगवान् ने कहा है –

अभावे भावनाभावो भावना नैव भावना।
इति भावो न भावः स्याद्भावना नोपलभ्यते॥ इति।

अभाव में भावना का भाव होता है। भावना स्वयं में भावना नहीं है। इस प्रकार भाव भाव नहीं है अतः भावना की उपलब्धि नहीं होती है।

अभावे निरभ्रगगने भावना प्रत्याहारः। स एवाभावे भावनाभाव इति भावना नैव भावनेति। इह प्रत्याहारभावना याभावे निरभ्रगगने सा भावना नैव भावनेति विकल्पभावनारहितत्वात्। इति भावो यः प्रत्याहारेण दृष्टः स भावो न भावः स्यादविकल्पातीतानागतवर्तमानभावाभाव-दर्शनादिति। अतो विकल्पभावना नोपलभ्यते प्रत्याहारभावनायामिति भगवतो वाक्यम्। इयं च भावना प्रज्ञापारमितायामपि भगवतोक्ता। तद्यथा – अथ खलु शक्रो देवानामिन्द्र आयुष्मन्तं सुभूतिमेतदवोचत्। य आर्यसुभूते ऽत्र प्रज्ञापारमितायां योगमाप्स्यते क्व स योगमाप्स्यते। सुभूतिराह। आकाशे स कौशिक योगमाप्स्यते यः प्रज्ञापारमितायां योगमाप्स्यते। अभ्यवकाशे स कौशिक योगमाप्तुकामो यः प्रज्ञापारमितायां शिक्षितव्यं मंस्यतसु इति॥

अभाव में अर्थात् अभ्ररहित आकाश में भावना प्रत्याहार है। वही अभाव में भावना का भाव इस प्रकार भावना भावना नहीं है। यहाँ पर प्रत्याहार और भावना के अभाव में निरभ्रगगन में वही भावना भावना नहीं है। क्योंकि वहाँ पर विकल्प भावना ही नहीं है। इस प्रकार जो प्रत्याहार द्वारा विज्ञात होता है वह भाव भाव न होने से अविकल्प, अतीत, अनागत, वर्तमान भावाभाव के दर्शन से, अतः विकल्प भावना उपलब्ध नहीं होती प्रत्याहार भावना में यह भगवद् वचन है। यह भावना प्रज्ञापारमिता में भी भगवान् ने कहा है। जैसा कि अब निश्चय ही शुक्र, जो देवताओं के इन्द्र हैं, उन्होंने आयुष्मान् सुभूति से यह कहा – हे आर्य सुभूति! प्रज्ञापारमिता में जो योग प्राप्त होता है वह कहाँ कैसे उपलब्ध होता है! सुभूति ने कहा आकाश में वह योग है कौशिक, जो योग है वह प्रज्ञापारमिता में प्राप्त होता है। हृदय में वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कौशिक! योग प्राप्त होता है, जिसे उसकी इच्छा होती है उसे प्रज्ञापारमिता की शिक्षा लेनी चाहिए। ऐसा कहा है!

महामुद्राभावना प्रतिसेनामायातुल्या निरभ्रे गगने भगवतोक्तेति। एवं प्रत्याहारेण ध्यानेन सेवाङ्गमुच्यते।

महामुद्रा की भावना प्रतिसेना मायातुल्य निरभ्र गगन में भगवान् ने कहा है। इस प्रकार प्रत्याहार एवं ध्यान द्वारा सेवा का अङ्ग कहा गया है।

ततो ऽमृतकुण्डलीबिम्बसंज्ञया सन्ध्याभाषान्तरेण वायुरित्युक्तम्। स च पञ्चप्रकारः। तथा च समाजोत्तरे भगवानाह –

उसके बाद अमृत कुण्डली बिम्ब संज्ञा द्वारा सन्ध्या भाषा के द्वारा वायु ऐसा कहा है। वह पाँच प्रकार का है। उसे समाजोत्तर में भगवान् ने कहा है –

पञ्चरत्नमयं श्वासं पञ्चबुद्धैरधिष्ठितम्।
निश्चार्य पिण्डरूपेण नासिकाग्रे विभावयेत्॥ इति।

पञ्चरत्नमय श्वास है जिसे पञ्चबुद्धों ने अधिष्ठित किया है। उसे नासिका के अग्रभाग में रखकर पिण्डीकृत करना चाहिए साथ ही भावित करना चाहिए।

इह पञ्चरत्नशब्देन रसनापञ्चमण्डलधर्मिणः पृथव्यादिपञ्चधातवः। तन्मयं श्वासं पञ्चरत्नमयमिति सव्यनासापुटे। तथा पञ्चबुद्धा ललनापञ्च-मण्डलधर्मिणो विज्ञानादिपञ्चस्कन्धाः। तैरधिष्ठितं श्वासं वामनासापुट इति। निश्चार्य पिण्डरूपेणेति। इह पिण्डं सव्यावसव्यमण्डलानामेकत्वं मध्यमायामवधूत्यां प्राणवायोरिति। तं च प्राणवायुं निश्चार्य पिण्डरूपेण नासिकाग्रे विभावयेत्। अत्र नासिकाशब्देन नाभिहृत्कण्ठललाटोष्णी-षकमलकर्णिकोच्यते। तस्या अग्रे भावयेन्नासाग्रे भावयेत्। कर्णिकात् कर्णिकामध्ये न सव्यावसव्यकमलदल इति। एवं बिन्दुस्थाने पिण्डरूपेण निरोधितः प्राणः। तेनैव तस्य धारणोच्यते। एवमङ्गद्वयेनोपसाधन-ममृतकुण्डलीबिम्बेनेति। तदेवोपसाधनं वज्रजाप इत्युच्यते। मध्यमा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भिन्नाङ्गेन जप्तव्य इत्यभिन्नाङ्गेन करणेनेति। प्राणस्य न वामदक्षिणनाड्यां प्रचार इति। उष्णीषबिम्बे दृष्टे सति पश्चात् प्राणायामं कुर्यान्मन्त्रीति। गुरूपदेशः सन्ध्याभाषान्तरेणावगन्तव्य इति। प्राणायामधारणोपसाधन-मुच्यते।

यहाँ पर पञ्चरत्न शब्द के द्वारा रसना पञ्चधर्मी पृथिवी आदि पाँच धातु गृहीत हैं। उससे युक्त जो श्वास है वह पञ्चरत्नमय है इसीलिए बायें नासापुट में रहता है। तथा पञ्च बुद्ध अर्थात् ललना आदि पञ्च मण्डल धर्मी के विज्ञान आदि पञ्च स्कन्ध हैं। उनसे अधिष्ठित श्वास वामनासापुट में अवस्थित है। पिण्डरूप से निकालकर का तात्पर्य है यहाँ पर पिण्ड, दक्षिण और वाम मण्डलों की एकता मध्यम अवधूती में प्राणवायु का प्रवेश करना है। उस प्राणवायु को निकालकर एक करके नासिका के अग्र भाग में भावित करना है। यहाँ नासिका शब्द के द्वारा नाभि, हृदय, ललाट, उष्णीष-कमल-कर्णिका का ग्रहण करना चाहिए। उसके अग्रभाग में भावना करनी चाहिए अर्थात् नासिका के अग्रभाग में यही तात्पर्य है। कर्णिका से कर्णिका के मध्य में न कि दक्षिणवाम कमलदल में। इस प्रकार बिन्दु के स्थान पर पिण्ड रूप से प्राप्त निरुद्ध होता है। उसी से उसको धारणा कहा गया है। इस प्रकार दो अङ्गों से उपसाधना और अमृत कुण्डली बिम्ब द्वारा कहा गया है। वही उपसाधन और वज्रजाप भी कहा गया है। मध्यम अभिन्न अङ्ग के द्वारा ही जप करना चाहिए। इसका तात्पर्य अभिन्न अङ्गों से है। प्राण का दक्षिण और वाम नाडी में प्रचार न हो यही भाव है। उष्णीष बिम्ब के दिखने पर उसे प्राणायाम करना चाहिए। गुरू का उपदेश सन्ध्याभाषा के द्वारा जान लेना चाहिए। प्राणायाम और धारणा उपसाधन कहे गए हैं।

ततः साधने देवताबिम्बमिति। इह धारणाबलेन नाभिस्थां चण्डालीं ज्वलितां पश्यति योगी सर्वावरणरहितां प्रतिसेनापमां महामुद्रामनन्तबुद्ध-रश्मिमेघान् स्फारयन्तीं प्रभामण्डलविराजिताम्। तामनुस्मृतिं साधनमाह। धारणान्ते चण्डालीयोगं भावयेदिति नियमः।

उसके बाद साधन में देवता बिम्ब ऐसा कहा गया है। इसका तात्पर्य है धारणा के बल से नाभि में अवस्थित चाण्डाली जो जलाती है योगी उसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देखता है, वह सब आवरणों से रहित है, प्रतिसेना के तरह है, महामुद्रा को जो अनन्त बुद्धरश्मि मेघ के समान है उन्हें प्रस्फुटित करती हुई प्रभामण्डल में विराजमान हैं। धारणा के अन्त में चाण्डाली योग की भावना करनी चाहिए। यही अनुस्मृति साधना है।

ततस्तस्या ज्ञानार्चिषा स्कन्धधात्वायतनादीनि दग्धान्येकलोलीभवन्ति। वामदक्षिणनाडीगतानि विज्ञानादीनि पृथिव्यादीनि च मण्डलस्वभावानि ललाटे चन्द्रमण्डले प्रविष्टानि। ततश्चण्डाल्या ज्ञानार्चिषा चन्द्रे द्रुते सति तद् बोधिचित्तं बिन्दुरूपेणाधोगतं कण्ठे हृदि नाभौ गुह्यकमल आनन्दपरमविरमस्वभावेन। ततो वज्रमणिं यावत्सहजानन्दस्वभावेनेति। अथवा विचित्रविपाकविमर्दविलक्षणस्वभावेनेति। एवं षोडशकलापूर्णं मण्यन्तर्गतं यदा सुखं ददाति भावनाबलेन च्यवनसुखसदृशमिति दृष्टान्तमात्रम्। स्वरूपतो द्वीन्द्रियजं क्षरसुखं कोटीसहस्रतमीमपि कलां नार्हति परमाक्षरसुखस्येति। इहाक्षरसुखावस्था या सहजानन्दरूपिणी सावस्था काप्यविज्ञेया बालयोगिनाम्। बोधिसत्त्वैः शून्यतासमाधिरित्युच्यते। न पुनर्लौकिकरूढचैव नास्तिक्यार्थानुयायिनी।

अब उसके ज्ञानरूपी किरणों से स्कन्ध-धातु-आयतन आदि जलकर एक भाव में ठहर जाते हैं। वाम-दक्षिण नाडियों में अवस्थित विज्ञान आदि और पृथिवी आदि मण्डलस्वभाव युक्त होकर ललाटान्तर्गत चन्द्रमण्डल में प्रविष्ट होते हैं। उसके बाद चाण्डाली के ज्ञान ज्वालाओं से दग्ध होकर चन्द्र वहाँ से पिघल जाते हैं, बाहर जो जाते हैं तब वह बोधिचित्त बिन्दु के रूप में नीचे आकर कण्ठ, हृदय, नाभि, गुह्यकमल आदि में फैल जाते हैं परम आनन्द का उद्घाटन करते हुए। उसके बाद वज्रमणि जो सहज आनन्द स्वभावयुक्त है, अथवा विचित्र विपाक विमर्द विलक्षण स्वभाव द्वारा। इस प्रकार षोडशकलाओं से पूर्व मणि के अन्तर्गत जब सुख प्रदान करता है भावना के बल से च्यवन बिन्दु क्षरण सदृश सुख होता है यह दृष्टान्तमात्र है। स्वरूप से तो दो इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त होने वाला सुख हजार कोटि सदृशी कला के समान भी इसके तुल्यता नहीं है जो परमाक्षर सुख है वह अति उन्नत है। यहाँ पर जो अक्षर सुख की जो अवस्था है – सहजानन्द रूपिणी है वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवस्था लोकोत्तर आनन्द दायिनी है बाल योगियों के लिए। बोधिसत्त्वगण इसे शून्यता समाधि कहते हैं। केवल लौकिक रूढि या प्रसिद्धि के कारण ही यह सब नहीं कहते हैं – यह सब अज्ञात पूर्व आनन्दात्मक अवस्था है।

एवं षडङ्गयोगेन बुद्धत्वं योगिनां सिध्यतीति।

इस प्रकार षडङ्गयोग द्वारा योगियों के लिए बुद्धत्व की सिद्धि होती है।

सेवा पञ्चामृताद्यैर्जलनिधिकुलिशैर्मन्त्रजापादिभिश्च
प्रत्याहारादिभिः स्यात् कुलिशकमलजेनामृतेनोपसिद्धिः।
आनन्दाद्यैस् त्रिवज्राब्जसमरसगता भावना साधनं स्यात्
प्रज्ञासङ्गे ऽच्युतं सम्भवति खलु महासाधनं सूक्ष्मयोगात्॥

इहादिकर्मिकेण प्रथमं सेवा कर्तव्या साधनविधिना। सेवा पञ्चामृताद्यैरिति। बाह्ये पञ्चामृतं विडादिकम्। आद्यशब्देन गोक्वादयः। तैर्भक्षितैः सेवा देवतातोषणार्थम्। अध्यात्मनि पञ्चामृतानि पञ्चस्कन्धाः। आद्यशब्देन पञ्चेन्द्रियाणि पञ्चप्रदीपाः। तेषां निरपेक्षता सेवा शरीरद्रव्य-तृष्णापरित्यागः। तया सेवया देवता वरदा भवन्ति न गूथादिना भक्षितेनेति। जलनिधिकुलिशैरिति कायभोगनिरपेक्षता वाग्भोगनिरपेक्षता चित्तभोग-निरपेक्षता च्यवनसुखनिरपेक्षता सेवा कायवाक्चित्तानां ब्रह्मचर्यं संयम इत्यर्थः। अनया देवता वरदा भवन्ति न भवभोगस्पृहयेति। मन्त्रजापादि-भिश्चेति। इह मन्त्रजापो नाम प्राणसंयमः। आदिशब्देन रेचकपूरक-कुम्भकयोगः सदा सेवा। तया देवता वरदा भवन्ति न प्राणेनायन्त्रितेन वाग्जल्पितेनेति नीतार्थः। नेयार्थेन पुनरक्षसूत्रादिना जापादिकं कर्तव्यं सामान्यसिद्ध्यर्थम्।

सर्वप्रथम आदि कर्मिक योगी द्वारा साधनाविधि से सेवा करनी चाहिए। बाह्य अवस्था में पञ्चामृत विष्ठा आदि है। आद्यशब्द द्वारा गोमांस आदि है। उनसे भक्षित होने पर सेवा देवताओं की तुष्टि के लिए है। आध्यात्म में पञ्चामृत पञ्चस्कन्ध हैं। आद्य शब्द से पञ्चामृत पञ्च प्रदीप हैं। उनकी निरपेक्षता का अर्थ है – शरीर द्रव्य तृष्णा का परित्याग। उस सेवा के द्वारा देवतागण वर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देते हैं परन्तु विष्ठा आदि के भक्षण से नहीं। जल निधि कुलिश का अर्थ है – कायभोग के निरपेक्ष रहकर और वाग्योग से भी विरल होकर सारी चित्तभोगों से दूर होकर और च्यवनसुख से भी निरपेक्ष रहकर सेवा ही ब्रह्मचर्य या संयम है। इससे देवता वरदान देते हैं। किन्तु भवभोग की लालसा में नहीं। मन्त्र जाप आदि से भी कहा गया है। यहाँ मन्त्र जाप का अर्थ प्राणायाम है। आदि शब्द से रेचक-पूरक कुम्भक योग रूपी सदा सेवा है। इससे देवता भी वर देते हैं किन्तु अनियन्त्रित प्राण से नहीं साथ बोलने से भी नहीं यही नीतार्थ है। नेयार्थ तो यह है कि माला लेकर जप करना चाहिए जिससे सामान्यसिद्धि होती है।

इदानीमुपसाधनमुच्यते - प्रत्याहार इत्यादि। इह संसारिणामाहार-श्चक्षुरादीन्द्रियै रूपादिविषयग्रहणं तत्परित्यागः प्रत्याहार इत्युच्यते। शून्यताबिम्बे ऽन्यैश्चक्षुरादिभिर्मांसाद्यैरन्यरूपादिविषयग्रहणमुपसाधनम्। तथा ध्यानं प्राणायामश्च धारणा च। कुलिशकमलजेनामृतेनाच्युतेनो-पसाधनं नीतार्थेन। बाह्ये देवतोत्सर्जनेन नेयार्थेनेत्युपसाधनसिद्धिः।

अब, उपसाधन बताते हैं – प्रत्याहार इत्यादि से। सांसारिक लोग इन्द्रियों के द्वारा विषयों का उपभोग करते हैं रूपादि विषयों का, उसका परित्याग करना ही प्रत्याहार कहा गया है। शून्यता के बिम्ब में अन्य चक्षुरादि के द्वारा माँस आदि और अन्य रूप आदि विषय ग्रहण ही उपसाधन है। तथा ध्यान और प्राणायाम तथा धारणा हैं। कुलिश-कमल के द्वारा अच्युत उपसाधन नीतार्थ है। बाह्य विषय में देवताओं के उत्सर्जन द्वारा नेयार्थ से उपसाधन सिद्धि होती है।

इदानीं साधनमुच्यते - आनन्देत्यादि। इहानन्दे त्रिवज्राः कायवा-क्चित्तबिन्दवो ऽब्जसमरसगता भावना साधनं स्यात्। हृन्नाभिगुह्ये बिन्दूनां स्थितिरित्यर्थः। एवं साधनम्।

अब साधन की व्याख्या की जाती है – आनन्द इत्यादि से। यहाँ आनन्द में तीन वज्र हैं – काय, वाक् चित्त बिन्दु रूप और कमल में समरस हुई भावना साधन है। हृदय, नाभि और गुह्य में बिन्दुओं की स्थिति है। यही साधन है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ततो महासाधनम्। प्रज्ञासङ्गे ऽच्युतं सुखं सम्भवति यदा तदा खलु महासाधनं सूक्ष्मयोगाद् इति। सुषुम्नानाडिकोर्ध्वं शुक्रसंयोगान् महासाधनमित्युच्यते नीतार्थेन। नेयार्थेन पुनः प्रज्ञाधर्मोदयनासिकाग्रे सर्षपादिकम् इति नियमः। एवं महासाधनं भवति।

अब महासाधन की व्याख्या करते हैं। प्रज्ञा के सङ्ग के कारण अच्युत सुख की उपलब्धि होती है जब, तब सूक्ष्मयोग से महासाधन उपस्थित होता है। नीतार्थ के द्वारा सुषुम्ना नाडी में ऊर्ध्व गमन पूर्वक जब शुक्र का संयोग होता है वही महासाधन कहलाता है। नेयार्थ के द्वारा प्रज्ञा और धर्म का उदय जब नासिका के अग्रभाग में सरसों के आकार में होता है यही नियम है। इस प्रकार महासाधन होता है।

इदानीं मृद्वादिभेदेन सेवादिकमुच्यते –

आदौ वै शून्यबोधिरपि खलु ततः संग्रहश्चन्द्रबिन्दोर्
बिम्बोत्पत्तिश्च तस्मात् प्रवररसकुलैरक्षरन्यास एव।
एषा सामान्यसेवा जलनिधिकुलिशैः साधनं मध्यमं च
अत्रोपायश्चतुर्धा भवति मृदुदृढः साधनाङ्गे तथैव॥

इहोत्पत्तिक्रमे प्रथमं शून्यताबोधिरिति। प्राणिनां मरणान्ते स्कन्धपरित्यागादुत्पत्त्यंशिकस्कन्धग्रहणाद्यदन्तरालं शून्यताक्षणमेकं त्रिभुवनदर्शनं तच्छून्यमित्युच्यते। खलु निश्चितम्। ततः क्षणात् पश्चात् संग्रहश्चन्द्रबिन्दोरिति। इहालयविज्ञानस्य मातृगर्भे शुक्रबिन्दूनां ग्रहणं नाम संग्रहः। ततः शुक्रादिग्रहणात् तस्माद् बिम्बोत्पत्तिर्नाम सप्तमासैर्गर्भनिष्पत्तिः कायनिष्पत्तिरित्यर्थः। ततः प्रवररसकुलैरिति षट्स्कन्धैश् चक्षुरादीनामक्षरन्यासो रूपादिविषयप्रवृत्तिरिति। एवं देवतासाधने ऽपि कल्पनात्मकं भावयेदादिकर्मिकः। एषा सामान्यसेवा जलनिधिकुलिशैरिति कायवाक्चित्तज्ञानवज्रनिष्पन्नैः। साधनं मध्यमं च प्राणनिष्पत्तिः। अत्रोपायश्चतुर्धा भवति सेवाङ्ग उपसाधनाङ्गे मृदुदृढः। साधनाङ्गे तथैव षोडशवर्षावधेरिति नियमः।

अब मृदु आदि के भेद से सेवा की व्याख्या करते हैं। यहाँ पर उत्पत्ति क्रम में प्रथमतया शून्यताबोधि ही होती है। प्राणियों की मरण के अन्त में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्कन्ध परित्याग से उत्पत्ति के अंशभूत स्कन्धों के ग्रहण मात्र से जो अन्तराल शून्यता क्षणात्मक है वही त्रिभुवन दर्शन है वही शून्य भी है। खलु का अर्थ निश्चय है। उस क्षण के बाद चन्द्रबिन्दु का संग्रह है। आलय विज्ञान का मातृगर्भ में शुक्र बिन्दुओं का ग्रहण ही संग्रह कहलाता है। उस शुक्रादिग्रहण द्वारा बिम्ब की उत्पत्ति होती है और सात महीनों में गर्भ की निष्पत्ति होती है। जो काय की निष्पत्ति है। उसके बाद प्रवर, रस और कुलों के द्वारा ६ स्कन्धों से चक्षुरादिओं का अक्षर न्यास रूप विषयों में प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार देवता के साधन में भी कल्पनात्मक अवस्था की भावना करनी चाहिए, आदि कर्मिक के द्वारा। यह सामान्य सेवा है। जलनिधिकुलिशों का अर्थ है काय, वाक्, चित्त ज्ञान वज्रों से निष्पन्न यही अर्थ है। मध्यमसाधन प्राणों की निष्पत्ति है। यहाँ उपाय चार प्रकार का है। सेवा के अङ्ग में और उपसाधना के अङ्ग में मृदु और दृढ होते हैं। साधना के अङ्ग में उसी प्रकार १६ वर्षों की अवधि होती है यही नियम है।

अत्र मृदुर्जातबालः। दन्तोत्थानात् तु मध्यबालः। दन्तपातात् कुमारः। पुनर्दन्तोत्थानात् षोडशवर्षोर्ध्वं प्रौढः। पुत्रदुहितृजनकत्वादिति। एवं सर्वदेवतानां चतुर्विधमङ्गं योगिना भावनीयमिति लौकिकसत्यनियमः।

यहाँ मृदु पैदा हुआ बच्चा है। दात निकलने पर मध्य बाल होता है। दातों के गिरने पर कुमार होता है। फिर दातों के उगने से तथा १६ वर्ष में प्रौढ कहलाता है। बाल बच्चे पैदा करने के कारण भी प्रौढ है। इसी प्रकार सभी देवताओं के चार प्रकार के अङ्ग योगियों द्वारा भावना करनी चाहिए। यही लौकिक सत्य नियम कहलाता है।

इदानीं परमार्थसत्येन बुद्धबिम्बनिष्पत्तिरुच्यते। इह प्रथमं शून्यता-बोधिरित्यन्धकारे न किञ्चिदपि चिन्तनीयम्। ततः संग्रहश्चन्द्रबिन्दोरिति। बिन्दुपर्यन्तं धूमादिनिमित्तग्रहणमिति। बिम्बोत्पत्तिश्च तस्मादिति तस्माद् बिन्दोर्विश्वदर्शनं बिम्बोत्पत्तिरिति। प्रवररसकुलैरिति निरावरणैः षट्स्कन्धै-रक्षरन्यास इति। प्रादेशिकस्कन्धधात्वायतनादीनां निरोधः। ततो मृद्वादिभेदो भूमिलाभेन भवति यावन्न द्वादशभूमीश्वरो भवति। ततः -

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वादशाकारसत्यार्थः षोडशाकारतत्त्ववित्।
विंशत्याकारसम्बोधिर्विबुद्धः सर्ववित् परः॥

इति नियमः।

अब परमार्थ सत्य के द्वारा बुद्धबिम्ब की निष्पत्ति बता रहे हैं। यहाँ सर्वप्रथम शून्यताबोधि इस प्रकार अन्धकार में कुछ भी चिन्तन न करें। उसके बाद चन्द्र बिन्दु का संग्रह। बिन्दु पर्यन्त धूमादि निमित्तों का ग्रहण किया जाता है। बिम्ब की उत्पत्ति भी उसके बाद बिम्ब का विश्व दर्शन ही बिम्बोत्पत्ति है। प्रवर, रस और कुलों से निरावरणात्मक ६ स्कन्धों द्वारा अक्षर न्यास किया जाता है। प्रादेशिक स्कन्ध, धातु, आयतन आदि का निरोध बताया गया है। उससे मृदु आदि भेद भूमि लाभ से होता है जब तक द्वादश भूमि का ईश्वर नहीं होता है। उसके बाद द्वादशाकार ही सत्यार्थ है, षोडषाकार सत्य होता है। विंशति आकार से सम्बोधि प्राप्ति और विबुद्ध ही सर्ववित् है वही परम है। यही नियम है।

इदानीं प्रत्याहारादिफलमुच्यते –

प्रत्याहारेण योगी विषयविरहितो ऽधिष्ठ्यते सर्वमन्त्रैः
पञ्चाभिज्ञानलाभी भवति नरपते ध्यानयोगेन शुद्धः।
प्राणायामेन शुद्धः शशिरविरहितः पूज्यते बोधिसत्त्वैर्
मारक्लेशादिनाशं विशति दशबलं धारणाया बलेन॥
संशुद्धो ऽनुस्मृतेः स्याद्विमलमपि च भामण्डलं ज्ञानबिम्बात्
तस्माच्छुद्धः समाधौ कतिपयदिवसैः सिध्यति ज्ञानदेहः।
प्रत्याहारादिभिर्वै यदि भवति न सा मन्त्रिणामिष्टसिद्धिर्
नादाभ्यासाद्धठेनाब्जगकुलिशमणौ साधयेद् बिन्दुरोधात्॥

इह प्रत्याहारेण यदा योगी शुद्धो भवति बिम्बेन स्थिरीभूतेन तदा सर्वमन्त्रैरधिष्ठ्यते वचसा वरदानादिकं ददाति। पञ्चाभिज्ञानलाभी भवति नरपते ध्यानयोगेन शुद्ध इति। इह यदानिमिषचक्षुर्भवति तदा दिव्यचक्षुर्भवति। एवं दिव्यश्रोत्रो ध्यानेन शुद्धो भवति। प्राणायामेन शुद्ध इति। यदा रविशशिमार्गरहितो योगी भवति सदा मध्यमावाहस्तदा प्राणायामेन शुद्धः सन् पूज्यते। बोधिसत्त्वैः प्रशस्यत इत्यर्थः। मारक्लेशादिनाशं विशति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दशबलमिति शून्यताबिम्बं ग्राह्यग्राहकचित्तं विशति धारणाया बलेनेति प्राणस्य गतागतक्षयेणैकलोलीभवति।

अब प्रत्याहार आदि का फल बताया जाता है –

यहाँ, प्रत्याहार से जब योगी शुद्ध होता है बिम्ब से स्थिर होकर सभी मन्त्रों से आवृत हो जाता है और वचनों से वरदान देता है। पञ्चाभिज्ञान लाभी होता है, ध्यान योग से शुद्ध होता है। जब निमिष चक्षु वाला होता है तब वह दिव्यचक्षु वाला हो जाता है। इसी प्रकार दिव्य श्रोत्रवाला ध्यान से शुद्ध होता है। प्राणायाम से शुद्ध होता है। जब रवि चन्द्र आदि मार्गों से रहित योगी हो जाता है तब, मध्यमवाही होने पर प्राणायाम के द्वारा शुद्ध होकर पूजित होता है। बोधिसत्त्वों के द्वारा पूजित हो जाता है यही अर्थ है। मारक्लेशादि नाश करता है। दश बल अर्थात् शून्यता बिम्ब में ग्राह्य ग्राहक चित्त में प्रविष्ट होता है। धारणा के बल से इस प्रकार प्राण का गतागतक्षयों से एकाकार हो जाता है।

संशुद्धोऽनुस्मृतेरिति। इहानुस्मृतिर् बिम्बालिङ्गनं चित्तस्य सर्वविकल्परहितत्वम्। तस्माच्छुद्धो यदा तदा विमलं प्रभामण्डलं भवति। अपिचशब्दाद्रोमकूपात् स्फुरत्पञ्चरश्मयो निश्चरन्ति ज्ञानबिम्बाच्छून्यबिम्बादिति। तस्माच्छुद्धः समाधाविति। इह ग्राह्यग्राहकचित्तयोरेकत्वेन यदक्षरसुखं भवति तत् सुखं समाधिरुच्यते। तस्माच्छुद्धः समाधेः शुद्धो वैमल्यं गतः कतिपयदिवसैस्त्रिपक्षत्रिवर्षैः सिध्यति ज्ञानदेह इति दशबलवशितादिकं प्राप्तो बोधिसत्त्वो भवतीति प्रत्याहारादि नियमः।

अनुस्मृति की शुद्धि क्या है? बिम्ब का आलिङ्गन ही चित्त का सर्वविकल्पों से रहित होना है। इस प्रकार जब वह शुद्ध होता है विमल प्रभामण्डल युक्त हो जाता है। शब्दों से और रोम कूपों से प्रभायुक्त पञ्चमरश्मियाँ निकलती हैं – ज्ञान बिम्ब और शून्यबिम्बों से भी। इसी से समाधि में शुद्धि होती है। यहाँ पर ग्राह्य और ग्राहक चित्तों के एकाकार होने से जो अक्षर सुख उपलब्ध होता है वही समाधि सुख है। इसी से समाधि से शुद्ध विमल वह कुछ ही दिनों में, तीन पक्षों और तीन वर्षों में सिद्ध होता है। इस प्रकार दश बल वशिता आदि को प्राप्त करके बोधि सत्त्व होता है। यही प्रत्याहारादि का नियम है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं हठयोग उच्यते। इह यदा प्रत्याहारादिभिर्बिम्बे दृष्टे सत्यक्षरक्षणं नोत्पद्यतेऽयन्त्रितप्राणतया तदा नादाभ्यासाद् हठेन प्राणं मध्यमायां वाहयित्वा प्रज्ञाब्जगतकुलिशमणौ बोधिचित्तबिन्दुनिरोधादक्षरक्षणं साधयेन्निस्पन्देनेति हठयोगः। नादाभ्यासो ऽत्रैवोक्तः।

या शक्तिर्नाभिमध्याद् व्रजति परपदं द्वादशान्तं कलान्तं
सा नाभौ सन्निरुद्धा तडिदनलनिभा दण्डरूपोत्थिता च।
चक्राच्चक्रान्तरं वै मृदुललितगतिश्चालिता मध्यनाड्यां
यावच्चोष्णीषरन्ध्रं स्पृशति हठतया सूचिवद् बाह्यचर्म॥
आपानं तत्र काले परमहठतया प्रेरयेदूर्ध्वमार्गे
उष्णीषं भेदयित्वा व्रजति परपुरं वायुयुग्मे निरुद्धे।
एवं वज्रप्रबोधान् मनसि सविषये खेचरत्वं प्रयाति
पञ्चाभिज्ञास्वभावा भवति पुनरियं योगिनां विश्वमाता॥
प्रज्ञा ज्ञानं च चित्तं भवति दशविधस्तस्य चाभास एव
सेको ऽस्मिन्मंज्जनं यद्विमलशशिनिभादर्शबिम्बोपमे वै।
तस्मान्निर्वाणसौख्याच्युतमपि सहजं चाक्षरं वै चतुर्थं
यस्यैतद् बुद्धवक्त्रं हृदयमुखगतं वर्तते श्रीगुरुः सः॥

अब हठयोग की व्याख्या करते हैं। जब प्रत्याहारादि के द्वारा बिम्ब के दर्शन हो जाते हैं अक्षर क्षण की उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि प्राणों का निरोध न होने से तथा नाद के अभ्यास से हठ से प्राण को मध्यमा में बहाकर प्रज्ञा रूपी कमल के तन्तु में बोधिचित्त बिन्दु के निरोध से अक्षर क्षण को सिद्ध करना चाहिए। दाँत उगे हुए योगी के द्वारा यही हठयोग है। नाद का अभ्यास यहीं पर कहा गया है।

इह प्रज्ञा च ज्ञानं च यथासंख्यं ग्राहकचित्तं तस्य च ग्राहकचित्तस्य यो दशविधो धूमादिको ग्राह्यादर्शाभासः प्रतिसेनावत् स एव ज्ञानं ग्राह्यचित्तमित्यर्थः। एवमादर्शे स्वचक्षुःप्रतिबिम्बमिव स्वचक्षुर्ग्राह्यमिति प्रज्ञा च ज्ञानं च। सेकोऽस्मिन्मज्जनं यदिति। इह ग्राह्यचित्ते ग्राहकचित्तस्य यस्तस्मिन् प्रवेशो बाह्यविषयेष्वप्रवृत्तिः प्रत्याहारो ध्यानं प्राणायामो धारणा मज्जनमित्युज्यते षडङ्गे। तस्मान्मज्जनान्निर्वाणसौख्यमच्युतपि सहजं चाक्षरं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वै चतुर्थं सुखं बालप्रौढस्पन्दानां परं लोकोपमामतिक्रान्तं त्रैलोक्याचारमुक्तमित्यर्थः। हसितेक्षणस्पर्शालिङ्गनपाणिव्याप्तिद्वन्द्वरहितं कर्ममुद्राज्ञानमुद्राहेतुरहितं शून्यतासर्वाकारप्रतिभासलक्षणमिति। इदं बुद्धवक्त्रं ज्ञानवक्त्रं यस्याचार्यस्य हृदयगतं भावितं स्वानुभवं सुखगतं शिष्येभ्यः प्रतिपादनाय वर्तते सर्वकालं स श्रीगुरुर्वज्रधर इत्यर्थः।

यहाँ प्रज्ञा और ज्ञान क्रमशः ग्राहकचित्त है उसकी ग्राहक चित्त का जो दश प्रकार का धूमादि ग्राह्य आदर्श का आभास है जैसे की प्रतिसेना वही ज्ञान ग्राह्यचित्त कहलाता है। इस प्रकार के आदर्श में अपने आखों की प्रतिबिम्ब के तरह स्वचक्षु ग्राह्य है इस प्रकार प्रज्ञा और ज्ञान हैं। यहाँ ग्राह्यचित्त में ग्राहकचित्त का जो प्रवेश वह बाह्यविषयों में अप्रवृत्ति ही है वही प्रत्याहार और ध्यान, प्राणायाम, धारणा और मज्जन यह कहा जाता है षडङ्ग में। उसी निमज्जन से निर्वाण का सुख जो अच्युत होते हुए भी सहज, अक्षर निश्चय ही चौथा सुख है जो बाल, प्रौढ आदि सभी के लिए लोक अवस्था का अतिक्रमण करके त्रैलोक्याचार से मुक्त होना ही है। हसना, देखना, स्पर्श करना, आलिङ्गन तथा हाथों से कर्म करना आदि द्वन्दरहित कर्ममुद्रा ज्ञानमुद्रा आदि कारण रहित शून्यता सर्वाकार प्रतिभास लक्षण यही है। यही बुद्ध वक्त्र है, जिस आचार्य का हृदय में स्थित भावित स्वानुभव मुख में स्थित शिष्यों को बताने के लिए है अर्थात् हमेशा वह श्रीगुरु वज्रधर हैं यही इसका अर्थ है।

इदानीं योगोपसंहार उच्यते –

अब योग का उपसंहार करने जा रहे हैं –

मध्ये प्राणप्रवेशः सरविशशिगतेर्बन्धनं सव्यवामे
चित्तं मुद्राप्रसङ्गे परमसुखगतं वज्रसम्बोधनं च।
पद्मे वज्रध्वनिर्वा स्वकरसलिलजोल्लालनं सौख्यहेतोर्
बीजात्यागः स सौख्यो मरणभयहरः श्रीगुरोर्वक्त्रमेतत्॥

इह प्रथमं योगिना मध्ये प्राणप्रवेशः कर्तव्यो ऽवधूत्यां येन निमित्तं पश्यतीत्येकं श्रीगुरोर्बुद्धस्य कायवज्रं वक्त्रमुच्यते। तस्मात् सरविणा दक्षिणगतिना सार्धं शशिगतेर्वामनाडीगतेर्बन्धनं प्राणस्येति नियमः। प्राणायामो द्वितीयं वाग्वज्रम्। चित्तं मुद्राप्रसङ्गे बिम्बे ऽनुरक्तं बोधिचित्तं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्रुतं तृतीयं चित्तवज्रं परमसुखगतं वज्रसम्बोधनं च। अथ बिम्बद्वारेणानन्दो न भवति तदा पद्मे वज्रध्वनिर्वा शनकैः कर्तव्यः। अथ स्त्रियं न लभते तदा स्वकरकमलेनोल्लालनं कर्तव्यं सौख्यवृद्धिहेतोः पातहेतोर्न। एवं बीजात्यागः स सौख्यो भवति मरणभयहरः श्रीगुरोर्वक्त्रं चतुर्थं ज्ञानवक्त्रमेतदिति योगाभ्यासनियमः।

यहाँ सर्वप्रथम योगी का अवधूती के मध्य में प्राण को प्रविष्ट कराना चाहिए जिससे निमित्त का दर्शन होता है वह भी गुरु बुद्ध के कायवज्र को ही वक्त्र (मुख) कहा गया है। वहाँ से दक्षिणगति द्वारा चन्द्रगति के साथ वामनाडी के गति को बाँधकर प्राण का निग्रह ही नियमन है। प्राणायाम ही द्वितीय वाग्वज्र है। मुद्रा प्रसङ्ग बिम्ब में अनुरक्त चित्त ही बोधिचित्त है तीव्र तीसरा चित्तवज्र परमसुखमय और वज्रसम्बोधन भी है। यदि, अब बिम्ब द्वार से आनन्द की उपलब्धि नहीं होगी तब पद्म में वज्रध्वनि शान्ति से करनी चाहिए। यहाँ पर स्त्री की उपलब्धि नहीं होती, तब अपने हाथों से सौख्य के वृद्धि के लिए ही उल्लालन कर लेना चाहिए न कि क्षरण के लिए। इस प्रकार बीज का त्याग वह सौख्य होता है वही मरण के भय का हरण करने वाला है श्री गुरु का मुख चौथा है वही ज्ञानवक्त्र कहा गया है, यही योगाभ्यास का नियम है।

इदानीं पञ्चमण्डलक्षय उच्यते –

अब पञ्च मण्डल का क्षय बता रहे हैं –

पृथ्वी तोयं प्रयाति ज्वलनमपि जलं पावको मारुतं च
वायुः शून्यं च शून्यं व्रजति दशविधं वै निमित्तं निमित्तम्।
सर्वाकारं प्रयात्यक्षरपरमसुखानाहतं ज्ञानकायं
ज्ञानादृद्धिश्च सिद्धिर्भवति नरपते जन्मनीहैव पुंसाम्॥

इह यदा योग्यनिमिषनयनो भवति क्रोधदृष्ट्या शून्य आरोपितचित्त-स्तदा वामे दक्षिणे वा। पृथ्वीत्युपलक्षणम्। यदा दक्षिणे पृथ्वीप्रवाहकाले योगी भावनां करोति तदायं विधिः। न पुनर्वामनाडीप्रवाहकाल आकाश-मण्डलादिक्रमतः। तेन वामे दक्षिणे वा यन् मण्डलं वहति प्राणस्तद्धर्मित्वा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्तदेव मण्डलमुच्यते। तेन दक्षिणनाड्यां पृथिवीमण्डले प्राणोऽब्मण्डलं याति। एवं ज्ञानमण्डलं यावत्। वामनाड्यामाकाशादिना याति। एवं शून्यं व्रजति दशविधं निमित्तं धूमादिकं निमित्तं सर्वाकारबिम्बं व्रजति। बिम्बं चाक्षरसुखं व्रजति। तदेव ज्ञानं प्रज्ञापारमितायाः। ज्ञानादृद्धिश्चाकाश-गमनादिका सिद्धिश्च त्रैधातुकेश्वरत्वं भवति नरपते जन्मनीहैव पुंसामिति मार्गप्रवेशनियमः।

जब योगी अनिमिष नेत्र वाला हो जाता है, क्रोध की दृष्टि से शून्य में आरोपित चित्त वाला उस समय वाम या दक्षिण में, यह पृथिवी का उपलक्षण है। जब दक्षिण में, पृथिवी के प्रवाह काल में योगी भावना करता है उस समय के लिए यह विधि है। परन्तु वामनाडी प्रवाह काल वह नहीं है, आकाशमण्डल आदि के क्रम से। वाम और दक्षिण नासिका में जो प्राण मण्डल का प्रवाह होता है उसी से उसे ही मण्डल कहा गया है। इसी से दक्षिण नाडी में पृथिवी-मण्डल में प्राण अप् (पानी) मण्डल में चला जाता है। इस प्रकार ज्ञान मण्डल पर्यन्त यही अवस्था होती है। वाम नाडी में आकाश आदि से जाता है। इस प्रकार शून्य में चला जाता है, दश प्रकार का निमित्त धूम आदि निमित्त जो सर्वाकार है बिम्बात्मक होता है उसी में चला जाता है। बिम्ब भी अक्षर सुख में चला जाता है। वही प्रज्ञापारमिता का ज्ञान है। ज्ञान से आकाश गमन आदि ऋद्धि और सिद्धि भी त्रैधातुक का ईश्वरत्व भी प्राप्त होता है। इसी जन्म में पुरुषों का होता है यही मार्ग प्रवेश का नियम है।

पूर्वपूर्वसेकापेक्षमुत्तरोत्तरसेकं श्रीकालचक्रविमलप्रभादिवचनैः सप्रपञ्चमभिधाय लोकोत्तरसेकं च सिक्त्वा तत्त्वं प्रकाशयेत् इति लौकिक-सेकपूर्वको ऽपि षडङ्गयोगहेतुक एव इति षडङ्गयोगं च श्रीकालचक्रादि-वचनैरेव विस्तरेण प्रतिपाद्येदानीम् अस्यैव साधनम् इत्यादि प्रकृतं व्याख्यातुमारभ्यते।

अस्यैव साधनं कुर्यात् प्रतिभासैरचिन्तितैः।
धूमादिभिर्निमित्तैस्तैः प्रज्ञाबिम्बैर्नभःसमैः॥ १॥
अस्तिनास्तिव्यतिक्रान्तैः प्रत्ययार्थैः स्वचेतसः।
परमाणुरजःसंदोहैः सर्वतः परिवर्जितैः॥ २॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्व-पूर्व अभिषेक के अपेक्षा - उत्तरोत्तर अभिषेक का महत्त्व श्री काल चक्र और विमल प्रभा आदि के वचनों के द्वारा विस्तारपूर्वक वर्णन करके लोकोत्तर अभिषेक का वर्णन सिक्त्वा आदि वचनों द्वारा किया गया है साथ ही लौकिक अभिषेक भी षडङ्गयोग का हेतु होने से षडङ्ग योग भी श्री कालचक्र आदि वचनों के द्वारा विस्तारपूर्वक प्रतिपादित हुआ है, जिसे अस्यैव साधनम् इत्यादि वचनों के व्याख्या द्वारा हम प्रतिपादन करने जा रहे हैं।

अस्यैव निरवशेषक्लेशज्ञेयावरणेन्धनदाहकस्य सर्वज्ञज्ञानाग्नेः साधनं स्फूटीभावं धूमादिभिः कुर्याद् योगी। किम्भूतैस्तैः। सर्वस्मिन् मूलतन्त्रे लघुतन्त्र आर्यप्रज्ञापारमितादिनीतार्थसूत्रे प्रसिद्धैः। अकस्माच्छून्ये प्रतिभा-सनात् प्रतिभासैः। सर्वविकल्पोपरमाद् अचिन्तितैः। तत्त्वफलस्य पूर्वरूपत्वान् निमित्तैः। ग्राह्यग्राहकरहिता स्वभावशून्यताधीः प्रज्ञा तद्बिम्बैर् योगिप्रत्यक्षाभासैः। बाह्याध्यात्ममलाननुलिप्तत्वान् नभःसमैः। सदसदादि-विकल्पकलङ्कानङ्कितत्वाद् अस्तिनास्तिव्यतिक्रान्तैः। योगिस्वसंवेद्यत्वात् प्रत्ययार्थैःस्वचेतसः। सर्वाकाराकृत्रिमाद्भुतनिःस्वभावभावरूपत्वात् सर्वतः परमाणुरजःसंदोहवर्जितैः।

निरवशेष-क्लेशावरण एवं ज्ञेयावरण को दहन करने के लिए जलते हुए इन्धन रूपी सर्वज्ञ रूपी ज्ञान अग्नि का जो साधन है वह भी अत्यन्त प्रकट रूप में है जिसे योगी धूम आदि के द्वारा करें और किस प्रकार? सभी मूलतन्त्रों में और लघुतन्त्र, आर्य प्रज्ञापारमितादि वचनों में और नीतार्थ सूत्रों में जो प्रसिद्ध हैं, अकस्मात् ही शून्य में प्रतिभासित होने वाले तथा सभी विकल्पों से उपरम हुए, तत्त्वफल के पूर्वरूप होने से जो निमित्त बने हुए हैं, ग्राह्यग्राहक रहित स्वभावशून्यताधीयुक्त प्रज्ञा और उसके बिम्बों से जो योगिजनों के प्रत्यक्ष तथा भासित होते हैं। जो आकाश के समान हैं क्योंकि बाह्य और आध्यात्म मलों से लिप्त नहीं हैं एवं सत् एवं असत् रूप विकल्पों के कलङ्क से मुक्त हैं - अतएव अस्तित्व नास्तित्व रहित हैं। योगियों के द्वारा संवेद्य होने से प्रत्ययार्थों से स्वचेतन हैं। सर्वाकार, अकृत्रिम, अद्भूत, निःस्वभावरूप होने से - सर्वतः परमाणु धूलों से रहित हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धूममरीचिखद्योतदीपज्वालेन्दुभास्करैः।
तमः कला महाबिन्दुर्विश्वबिम्बं प्रभास्वरम्॥ ३॥

सकलबाह्याध्यात्मव्यापकशुक्लधूमाकारः शून्याभासः। अयं च मेघाभासानन्तरमुत्पद्यते। यथोक्तम् -

प्रथमं मेघवद्भाति द्वितीयं धूम्रसन्निभम्। इति।

एवं चलज्जलाकारा मरीचिः। खद्योतदीपाकारौ प्रसिद्धौ। एतानि चत्वारि निमित्तानि नीरन्ध्रगृहे ऽन्धकारभवत्वाद्रात्रियोग आकाशयोगश्च। यथोक्तं श्रीसमाजादौ प्रथमद्वितीयविलोमेन -

निरोधवज्रगते चित्ते निमित्तोद्ग्रह जायते॥
प्रथमं मरीचिकाकारं द्वितीयं धूम्रसन्निभम्॥
तृतीयं खद्योतकाकारं चतुर्थं दीपम् उज्ज्वलम्।
पञ्चमं तु सदालोकं निरभ्रगगनसन्निभम्॥ इति।

धूम, मरीचि, खद्योत, दीपज्वाला, इन्द्र, सूर्य, तमः कला, महाबिन्दु, विश्वबिम्ब जो प्रकाशपूर्ण है। इन्हें सकल बाह्य-आध्यात्म में पूर्ण व्यापक रूप होने से शुक्ल धूम के आकार में परिणत हुए हैं, वह शून्याभास है। मेघों के आभास के बाद ये उत्पन्न होते हैं। जैसा कहा भी है - पहले मेघ के तरह और उसके बाद धूम के तरह भासित होता है। मरीची इसी प्रकार चलते हुए पानी जैसा है। खद्योत एवं दीप प्रसिद्ध ही हैं। ये चार प्रकार के प्रसिद्ध हैं निमित्त, छिद्र रहित घर में अन्धकार होने से रात्रि जैसा और आकाश जैसा प्रतीत होता है। जैसा कि श्री समाज तन्त्र में प्रथम और द्वितीय को उल्टा करके कहा गया है -

चित्त निरोधवज्र में प्रतिष्ठित हो जाता है तब निमोत्तोद्ग्रह उत्पन्न होते हैं। पहला मरीचि आकार, दूसरा धूम आकार, तीसरा खद्योताकार, चौथा दीप प्रभा-समुज्वल, पञ्चम आलोक है जो स्वच्छ आकाश के तरह।

ततो निरभ्रगगनसमाभासपूर्वो वह्न्याकारः शून्याभासो ज्वाला। इन्दुभास्कराभासौ प्रसिद्धौ। तम इति राह्वालोकः कृष्णरत्नवदाभासः। कलेति विद्युदाभासः। महाबिन्दुर् इति सचराचरद्योतकनीलवर्णचन्द्र-मण्डलाकाराभासः। एतानि षण्णिमित्तानि निरभ्रगगनालोकभवत्वाद्दि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वायोगो ऽभ्यवकाशयोगश्च। ततस्तन्मध्यगामिसम्भोगकायात्मकबुद्ध-बिम्बदर्शनसहितमेकक्षणे करस्थनीरोपमस्वच्छसर्वाकारघटपटादिदर्शनं विश्वबिम्बं प्रभास्वरम्।

उसके बाद निरभ्र आकाश के तरह ही पूर्व दिशा होती है। वह्नि के आकारवाला शून्याभासपूर्ण ज्वाला होती है। चन्द्रसूर्य प्रकाश प्रसिद्ध हैं ही। तमः यह राहु का आलाक है जो काले रत्नों के तरह है। कला से विजुली का प्रकाश कहा गया है। महाबिन्दु यह चराचर को द्योतित करने वाले नीलवर्ण युक्त चन्द्र मण्डलाकार का आभास है। वे सब ६ निमित्त कहे गए हैं जो मेघरहित आकाश में आलोकित होने से दिन का योग और हृदय आकाश में पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होते हैं। उसके बाद उसके बीच में ही सम्भोगकाय युक्त बुद्ध के बिम्ब का दर्शन सहित एक ही क्षण में हाथ में रखे हुए स्फटिक के तरह ही स्वच्छ सर्वाकार घट-पट आदि दर्शन होते हैं, उसे ही विश्वबिम्ब और प्रभास्वर कहा गया है।

पिहितापिहितनेत्राभ्यां शून्ये यत्रानुकल्पितम्।
दृश्यते स्वप्नवद् बिम्बं तद् बिम्बं भावयेत् सदा॥ ४॥

पिहित (ढके हुए) और अपिहित (न ढके हुए) नेत्रों के द्वारा शून्य में जो कल्पना की जाती है वहाँ पर स्वप्न के तरह ही बिम्ब के दर्शन होते हैं उसी बिम्ब की भावना करनी चाहिए।

पिहितापिहतनेत्राभ्याम् इति। अन्तरालावलम्बितयाऽर्धोन्मीलित-लोचनाभ्यां शून्य आकाशे ग्राह्यग्राहकरहिते यत्रानुकल्पितं स्वप्रवद् बिम्बं योगिप्रत्यक्षं तद् बिम्बं विश्वबिम्बं भावयेद् ध्यानाङ्गेन स्थिरीकुर्यात्। उक्तं मध्यमायां जिनजनन्यां - रत्नालोको नाम समाधी रत्नप्रदीपो नाम समाधिश्चन्द्रालोको नाम समाधिः सूर्यप्रदीपो नाम समाधिः सर्वाकारदर्शी नाम समाधिर् इत्यादि। नामसङ्गीत्यां च -

प्रत्यक्षः सर्वबुद्धानां ज्ञानार्चिः स्वप्रभास्वरः॥ इति।

पिहित इत्यादि के द्वारा यह कहा गया है - अन्तराल में अवलम्बित होकर आधे खुले हुए नेत्रों से शून्य आकाश में ग्राह्य ग्राहक रहित तत्त्व में जो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वप्न के तरह कल्पना की जाती है वही विश्वबिम्ब है जिसे योगीगण प्रत्यक्ष करते हैं वही विश्वविम्ब है ध्यानाङ्गों के द्वारा चित्त में स्थिर करना चाहिए। इसे ही मध्यमक शास्त्र जो जिन जननी भी कहा जाता है में कहा है - रत्नालोक नामक समाधि है जो रत्नप्रदीप नामक समाधि भी है वही चन्द्रालोक समाधि और सूर्यप्रदीप समाधि भी है तथा सर्वाकार दर्शी नामक समाधि भी कहा जाता है। और नाम संगीति में भी कहा है - सभी बुद्धों के लिए यह प्रत्यक्ष ही है जो ज्ञानार्चि तथा स्वप्रभास्वर भी है।

आर्यनागार्जुनपादैश्च -

आर्य नागार्जुन ने भी कहा है -

अस्तिनास्तिव्यतिक्रान्ता बुद्धिर्येषां निराश्रया।
गम्भीरस्तैर्निरालम्बः प्रत्ययार्थो विभाव्यते॥

जिनकी बुद्धि अस्ति एवं नास्ति से ऊपर उठ चुकी है और निराश्रय हो गयी है उन्हीं के द्वारा निरालम्ब, गंभीर प्रत्ययार्थ का बोध किया जा सकता है।

कम्बलाम्बरपादैरपि -

कम्बलपाद ने भी कहा है -

ज्ञेयान्यत्र तु लिङ्गानि लब्धालोकेन योगिना।
सिद्धेरव्यभिचारीणि धूमवत् कृष्णवर्त्मनः॥
करोति स्तब्धतामक्ष्णोः शिरसश्चावनम्रताम्।
स्तैमित्यं चित्तचैत्तानां शून्यतां शून्यतेक्षिणाम्॥

ज्ञेय के अतिरिक्त जो भी चिह्न हैं वे सब आलोक प्राप्त किए हुए योगीजनों के लिए सिद्धि के अविरोधी हैं जिन्हे कृष्णमार्ग के धूम के तरह ही भासित होते हैं। उसके बाद आँख आधा बन्द करके शिर को थोड़ा झुकाकर या सीधाकरके शान्त स्थिर चित्त होकर शून्यता का ईक्षण करते हैं वे ही शून्य तत्त्व को देखने वाले योगी हैं।

इत्यादि। अन्यैरपि -

इत्यादि। औरों ने भी कहा है -

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विमलनभसि यस्मिन्निर्मिते लोचनार्धे
स्फुरदुरुकरुणार्द्राद् आशयादाश्रयाशात्।
सदसदुभयभावाभावनिर्भेद्यकस्माद्
उदयदखिलधूमाद्यन्वयः शून्यतायाः॥

स्वच्छ आकाश में आधा आँख बन्द करके, करुणा से आप्लावित होते हुए आशय शुद्ध करके, सद् असद् उभय से रहित होकर, भाव अभाव से मुक्त होकर जो योगी एकाग्र हो जाते हैं उनके लिए धूम आदि निमित्त उदित होते हैं और वह तत्काल ही शून्यता में स्थिर हो जाता है।

तथा -

आदावाद्यान्तनिर्मुक्तो मध्यमात्रं समाश्रितः।
तत्रस्थो वर्जयेद्यस्तज्ज्योतिरस्य दशात्मकम्॥

पहले आदि और अन्त से मुक्त होकर मध्यम अवस्था में स्थित होना चाहिए और वहाँ रहकर उस ज्योति को भी छोड़ देना है साथ ही अब उसे दशात्मक अवस्था की उपलब्धि होती है।

इहान्तरालावगमो महागुरुप्रसादतः पुण्यवतामुदाहृतः। अयं हि योगीश्वरवज्रगीतितः प्रचक्ष्यते संवृतिनिर्वृतिपदैः।

श्रीसरहपादैरुक्तम् -

यहाँ पर मध्य में जो स्थिति कही गई है वह महागुरु का प्रसाद है जो पुण्यशीलों के लिए उपलब्ध होता है। यही अवस्था है जिसे योगीश्वर वज्रगीति में हम पाते हैं जिसे संवृत्ति निर्वृति पदों से श्री सरहपाद ने गाया है -

मूढा अन्तराल परिमाणह
तुट्टइ मोहजाल जइ जाणह।
पढमे जइ आआस विसुद्धो
चाहंते चाहंते दिट्ठि णिरुद्धो॥

मूर्खों! आप सभी अन्तराल में स्थित हो जाओ, मोह जाल को समझो, पहले पूर्ण रूप से आशाओं से मुक्त हो जाओ यदि तुम चाहते हो कि दृष्टि निरुद्ध हो जाए तो स्वतः यह हो जाएगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथा -

अच्छउ किं बहुवोल्लिअइ धम्मह एह पमाण
अद्धउग्घाडे लोअणे दिट्ठिविसामे जाण॥
उइअउ गअणमज्झें अदभुआ।
पेक्खु रे भुसुकू सूणासरूआ॥
भुसुकू फुलिगउ अनुपमफुल्ला।
लेहु रे कुसुम अनग्घमुल्ला॥
एहु सो फुल्ला नानावण्णे।
सो फुल्ला फुलिसउ सूणारण्णे॥

यह अच्छा होगा कि मूल धर्म को जानने के लिए अपने नेत्रों को अर्धोन्मीतित करके दृष्टि को शून्य में स्थिर कर लें, उसके बाद अन्तर आकाश में अद्भूत दर्शन होते हैं यही बात भुसुक के पदों से भी ज्ञात होना चाहिए। वहाँ पर पापरहित पवित्र कुसुम की वृष्टि होती है। यह पुष्प अनेक वर्णों से सुशोभित है, यह सब शून्य अरण्य में प्रतिफलित होता है।

तथा -

अम्बर फुलिला माइए अपतिठाण गरुआ।
भावाभावविमुक्क रे सअलइ सुद्धसरूआ॥
चिन्ताचिन्तते पोहाइ गेलिराती।
दीवा जाली वाट चाहन्ति सान्ती॥

आकाश स्वच्छ निर्मल जैसा ही जब चित्त निर्मल होकर भाव और अभाव से मुक्त परम शुद्ध हो जाता है, अब चिन्तन और अचिन्तन से मुक्ति होती है, जैसे दिन में प्रकाश पुञ्ज सर्वत्र व्याप्त हो जाता है वही स्थिति योगी की भी होती है।

तथा -

उइअउ रे भुसुकु तारा।
सान्ति भणइ पोहान्तपहारा॥

उस अवस्था में आकाश में चमकने वाले तारों के तरह ही स्वच्छ निर्मलता आ जाती है यही भुसुक पाद की वाणी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुनः -

पुण्णिमचन्दा उइअउ जव्वें।
चिअराअ निमलिअ तव्वें॥
आकट करुणाडमरु णिवाजइ।
आजदेव निरालए राजइ॥
वामे दाहिणे गूम घाट।
भणइ काहु अन्तरालें वाट॥
अनुभववोहरअण सुट्ठु गूढो
मूचइ नाअर वाज्झइ मूढो।
फुलिआ पञ्चफुल्ल अवलीना
आकट चीअ निरालें दीना॥

जैसे पूर्णिमा के रात्रि में चन्द्रमा प्रकाशित होता है स्वच्छ आकाश में आनन्द की स्थिति होती है उसी प्रकार निर्मल चित्त में करुणा का पूर्ण उदय हो जाता है जो अत्यन्त आनन्द दायक है। यह अवस्था वाम एवं दक्षिण नासिकाओं से बहने वाले वायु को निरोध करके बीच के मार्ग में उसे प्रवाहित करना चाहिए। यह सब अत्यन्त गंभीर अनुभव है, जिसे योगीगण प्राप्त करते हैं। उस अवस्था में पाँच प्रकार के फुल फुलते हैं जो कभी भी मुरझाते नहीं हैं उस निराले अवस्था में योगियों स्थिर हो जाओ।

तथा -

कीस कएल क अब्भुआ।
चान्दसुज्ज बान्धि जालिले दीवा॥
हसइ सान्ति सए आपणे करि सखी।
आकास विआइलि देखी॥

किस किसको यह अनुभव बतायें, जहाँ चन्द्र और सूर्य से भी गंभीर तेज प्रकट होता है। सब यहाँ आकर आनन्द के पराकाष्ठा में रमते हैं और आकाश के तरह शून्य और व्यापक हो जाते हैं।

पुनः (पुनः कहा है) -

गम्भीरधाम सुनिआ बढ तुट्ठो
णिसिअन्धारी किम्पि न दिट्ठो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गअणसिरे जइ फुल्लइ फुल्ला
सान्ति भणइ तब्बे तुट्टइ भुल्ला।

यह सब अत्यन्त गंभीर विषय है ठीक से श्रवण कर लेना चाहिए। अन्धकारमय रात्रि में जब कुछ भी नहीं दिखता है तब अपने सहस्रार में अनन्त फुल-कमल फुलते हैं, जब यह स्थिति होती है परम तुष्टि मिलती है।

अन्यैश्चोक्तम् (अन्य विद्वानों ने भी कहा है) -

अन्तराल मण पवणा णअणा
एककाल जइ जोअउ निउणा।
अवस उअज्जइ जिणगुणरअणा
एतइ सअलतथागतवअणा॥

दो प्रकार से बहने वाला वायु मध्य में स्थिर हो जाता है उसे एकाकार कहते हैं पिण्ड स्वरूप कहा जाता है तब वह समग्र सम्पदा को देने वाला हो जाता है। यही परम रमणीय अवस्था है।

पुनर् (फिर कहा है) -

विविहविअप्पविवज्जिअ चीओ
अन्तराल जइ णअण किओ।
फुड पतिहासइ दहविहमग्ग
तहिं योईसर सअलइ लग्ग॥

जितने भी विपत्तियाँ और दुःख-सुख हैं संसार में वे सब वायु मध्यम अवस्था में आते ही समाप्त हो जाते हैं। जिसके प्राप्ति से आनन्द का सरोवर उपलब्ध होता है आप सभी उसी के लिए प्रयत्न करो।

तथा -

णिअमण सअललक्खणरहिओ
अद्धउघाडें लोअणें सहिओ।
मज्झों पवण हालइ जव्वें
वज्जाणलधूमा उट्ठइ तव्वें॥

संसार के जितने भी द्वन्द्व हैं उन्हें सहन करने का अभ्यास करते ही रहना चाहिए किन्तु जब वायु मध्य नाडी में बहना शुरू करता है आपको कुछ भी नहीं करना है वही सब कुछ कर देता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तस्मादसन्देहतो धूमादिमार्गो बुद्धत्वार्थिना भावयितव्यः॥ ननु सकलकल्पनाकलङ्कानङ्किता महामुद्रा भावना च समारोपस्तत् कथं भावयेद् इत्युक्तमित्याह –

इसीलिए सन्देह रहित होकर धूमादिमार्ग बुद्धत्व चाहने वाला व्यक्ति योगी अवश्य ग्रहण करें। यहाँ सन्देह होता है कि समग्र कल्पनाओं से रहित महामुद्रा की भावना आरोपित होने पर कैसे कहा कि उसकी भावना करनी चाहिए कहकर – अब इसके लिए यह कहा –

अभावे भावना बिम्बे योगिनां सा न भावना।
भावो ऽभावो न चित्तस्य बिम्बे ऽकल्पितदर्शनात्॥ ५॥

अभाव रूपी बिम्ब में योगिओं को भावना करनी चाहिए। चित्त का भाव और अभाव नहीं होता किन्तु बिम्ब में अकल्पित दर्शन के कारण यह होता है॥

अभाव इत्यादि। इह ह्यालम्बनं द्विविधम्। प्रत्यक्षमनुमानं च। तदुक्तं श्रीकालचक्रे तट्टीकायां च –

प्रत्यक्षं चानुमानं द्विविधमिह भवेद्देवतालम्बनं यत्
प्रत्यक्षं तत्त्वयोगादुडुरिव गगने ऽनेकसम्भोगकायम्।
अप्रत्यक्षे ऽनुमानं मृतकतनुरिवातत्त्वतः कल्पनं यच्
चित्रादौ दर्शनीयं ह्यपरिणतधियां योगिनां भावनार्थम्॥

इह सत्त्वानामाशयवशेन योगिनां प्रत्यक्षं चानुमानं द्विविधमपि भवेद्देवतालम्बनं यत्। तयोः प्रत्यक्षानुमानयोर्यत् प्रत्यक्षं तद्व्यपगतसकल-कल्पनाकलङ्कं सद्गुरुमार्गोपदेशजाततत्त्वयोगाद्गगन उडुरिव भवेत् ताराचक्रवदनेकसम्भोगकायं मांसादिचक्षुर्ग्राह्यं मायास्वप्नसदृशं त्रिभवं त्र्यध्वनि। अत्र प्रथमं मांसचक्षुषादिकर्मिको योगी विश्वबिम्बमभिज्ञामन्तरेण पश्यति। ततो दिव्यचक्षुषाभिज्ञावधिवशात्। ततो बुद्धचक्षुषा वीतरागा-वधिवशात्। ततः प्रज्ञाचक्षुषा बोधिसत्त्वावधिवशात्। ततो ज्ञानचक्षुषा सम्यक्सम्बुद्धावधिवशात् सर्वोपधिविनिर्मुक्तितः। एवं तथागतस्य पञ्चचक्षूंषि मांसादीन्युक्तानि शून्यतादर्शनं प्रति। अन्ये सत्त्वाः शून्यता-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दर्शनविषये जात्यन्धा इति तत्त्वभावनानियमः। अतत्त्वसाधने पुनरप्रत्यक्षे ऽनुमानं मृतकतनुरिवातत्त्वतः कल्पनं यत्तच्चित्रादौ दर्शनीयमिति। मृतकतनुरिव सर्वथा तत्त्वदर्शनाभावात् शववत्। चित्रं प्रतिमा घटिता निषिक्ता बुद्धबोधिसत्त्वानां मण्डलचक्रं वा लिखित्वा नियताकारं दर्शनीयं बालयोगिनां मन्दानां भावनार्थमिति विकल्पभावनानियमः।

यहाँ पर दो आलम्बन हैं। प्रत्यक्ष और अनुमान। जिसे कालचक्र और उसकी टीका में भी कहा है -

यहाँ प्राणियों की आशय के आधर पर ही योगिओं के लिए दो प्रमाण प्रस्तुत किए गए हैं - प्रत्यक्ष और अनुमान। वे भी देवता के आलम्बनात्मक हैं। इन दोनों में से प्रत्यक्ष समग्र कल्पनाओं से रहित सद्गुरु के मार्गोपदेश से उत्पन्न तत्त्वयोग से आकाश में उदित हुए चन्द्र के तरह तारा चक्रों के तरह अनेक सम्भोग काय जो मांसादि चक्षुओं से ग्राह्य हैं, माया स्वप्न जैसा त्रिभव तीन अध्वा में परिलक्षित होता है। यहाँ योगी सर्वप्रथम मांस चक्षु आदि कर्मिक योगी विश्वबिम्ब को अभिज्ञा के द्वारा ही जानता है। उसके बाद दिव्य चक्षु के द्वारा अभिज्ञा पर्यन्त ही उसकी अवस्थिति होती है। फिर वीतरागादि के कारण बुद्ध चक्षु से देखता है। बोधिसत्त्वों के अवधि से प्रज्ञा चक्षुओं से जानता है। फिर ज्ञान चक्षुओं से सम्यक्संबुद्ध की अवस्था से समग्र उपाधि रहित होकर। इस प्रकार शून्यता दर्शन के लिए तथागत के मांस आदि पाँच चक्षु कहे गए हैं। अन्य प्राणी शून्यता के दर्शन के विषय में जन्म से ही अन्धे हैं यही तत्त्वभावना का नियम है। अतत्त्व साधन में फिर अप्रत्यक्ष में अर्थात् अनुमान के द्वारा कल्पनाजन्य परोक्ष मृत शरीर के तरह ही दर्शनीय होता है। जैसे मृत शरीर के विषय में कोई ज्ञान न होने से भी कल्पना से ही हम जान लेते है जैसे शव के विषय में जानत हैं। चित्त-प्रतिमा जो बनाई हुई है बुद्ध और बोधिसत्त्वों का मण्डल लिखकर निश्चित आकार में दर्शनीय होता है बालयोगियों के लिए, और मन्द बुद्धियों के विकल्पभावना के लिए भी होते हैं।

तस्माद् अभावे निरभ्रे गगने स्वप्नमायादिसदृशे बिम्बे प्रत्याहारेण दृष्टे या भावना ध्यानाङ्गेन त्रैकालिकत्रैधातुकप्रतिभासात्मकस्य प्रत्यात्म-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेद्ययोगिस्वचेतसः प्रबन्धेन प्रवर्तनं सा योगिनां भावना कल्पना न भवति, अस्तिनास्तिभावाभावादिसकलविकल्पजालविषयविज्ञानादिप्राणापान-वायूनामुपरमादेव स्फुटतरत्र्यध्वत्रैधातुकप्रतिभासस्योदयात्। उक्तं चार्य-देवपादैः –

इसीलिए निरभ्र गगन में स्वप्नमाया जैसे बिम्ब में प्रत्याहार के द्वारा दृष्ट होने पर ध्यानाङ्ग के द्वारा त्रैकालिक – त्रैधातुक प्रतिभासात्मक प्रत्यात्मवेद्य योगिओं के अपने चित्त के द्वारा अनुबन्धित होकर प्रवर्तन ही योगिओं की भाव कल्पना है जो उनके द्वारा अकल्पित भी है। नास्ति, भाव, अभाव आदि अनन्त विकल्पजालों से पूर्ण विषयज्ञान आदि प्राण, अपान आदि सभी वायुओं के उपरम (विश्राम) के द्वारा ही प्रष्ट रूप में त्रैधातुक जन्य प्रतिभास का उदय होता है। अर्थात् वायु के निरोध से कल्पना स्वतः ही निरुद्ध हो जाती है। यही वात आर्य देव ने भी कहा है –

आत्मन्येव लयं गते भगवति प्राणाधिपे स्वामिनि
श्वासोच्छ्वासगणे गते प्रशमिते जीवानिले यन्त्रिते।
यो ज्योतिःप्रसरः प्रभास्वरतरो योगीश्वराणामसौ
स्वाङ्गादेव विनिर्गतो हततमास्त्रैलोक्यमाक्रामति॥

प्राण के अधिपति स्वामी आत्मा में – अपने आप में ही विलीन हो जाने पर श्वास और प्रश्वास की गति निरुद्ध हो जाने पर जीव रूपी वायु नियन्त्रित होने पर, जो ज्योति, तेज प्रभास्वर रूप से प्रकट होता है यही योगीश्वरों के लिए अपने अङ्गों से ही निःसृत होकर समग्र जगत् को स्वयं प्रकाशित करता है और अन्धकार को नाश करते हुए संसार को आलोकित करता है।

सरहपादैश्च (सरहपाद ने भी कहा है) –

कल्पविनाशान्नाशं बुद्धेरनुकल्पयन्ति किल कुधियः।
अस्मादेव तु सुधियामुदयति गगनाधिकं किमपि॥

अपुव्व वसन्त दु केला सबरो
अम्बर फलइ फुल्लइ।
तोलइ ण हत्थे ण च्छुव्वइ
विरहे केलि करे हि॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अणिमिसलोअण चीअणिरोहें।
पवण हो बाझइ सद्गुरुबोहें॥

निम्नबुद्धि के लोग कल्पना (एक कल्प = लम्बाकाल) के विनाश से बुद्धि का विनाश होता है यह कहते है किन्तु विद्वान्गण इस प्रकार नहीं सोचते इसी से आकाश से भी व्यापक कुछ अलौकित तत्त्व का अनुभव करते हैं। अपूर्व वसन्त का उदय हो गया है। आकाश पूर्ण निर्मल हो गया है। इस अवसर पर जो हमें मिला है वह वर्णनातीत है, अपूर्व है। प्रत्येक शरीर के रोमकूपों में आनन्द का समुद्र बह रहा है। वह सब वायु के निरोध से हुआ है जिसके कारण सद्गुरु हैं।

त्रैकालिकविश्वरूपस्यापि चेतसो न भावो ऽतीतादिवस्तुरूपत्वं तेषामभावात् परमाणुधर्मतातीतत्वाच्च। अतीतादेरेवाभावे ऽपि नैवाभावः सर्वोपाख्याविरहलक्षणश् चित्तस्य। कुत इत्याह – बिम्बे ऽकल्पितदर्शनाद् इति। यतो बिम्बे विश्वबिम्बाकारे चेतस्यकल्पितं सकलकल्पनापगतं दर्शनं प्रत्यक्षसंवेदनमशक्यापह्नवम् अनुभूयत एव। उक्तं च मूलतन्त्रे –

त्रैकालिक विश्वरूप का भी चित्त का भाव नहीं होता क्योंकि अतीत आदि वस्तुरूप का अभाव होने से और परमाणु धर्मों के अतीत होने से भी अतीत आदि के भी अभाव होने से, अभाव भी नहीं है क्योंकि सभी नामों के न होने से चित्त निर्लिप्त है। यही कहा है बिम्ब में अकल्पित दर्शन के कारण, क्योंकि विश्व बिम्बाकार में चित्त में कल्पना न किया हुआ, समग्र कल्पनाओं से रहित जो दर्शन है उसे प्रत्यक्षरूपात्मक संवेदना है उसे नहीं हटाया जा सकता है। यही अनुभव है। मूलतन्त्र में कहा भी है –

अस्तिनास्तिव्यतिक्रान्तो भावाभावाक्षयो ऽद्वयः।
परमाणुधर्मतातीतः शून्यधर्मविवर्जितः।
शाश्वतोच्छेदनिर्मुक्तो वज्रयोगो निरन्वयः॥ इति।

अस्ति और नास्ति से रहित, भावाभाव रहित – अद्वय तत्त्व है, वह परमाणुधर्मों से रहित है, शून्यधर्म विवर्जित भी है। वह शाश्वत और उच्छेदों से मुक्त है, वही वज्रयोग जो अजन्मा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सरहपादैश्च (सरहपाद ने भी कहा है) -

सर्वाभावं गतवति मनःस्पन्दिसंसारके ऽस्मिन्
आहो श्वभ्रे प्रविततधियां चापि मोहप्रपाते।
वन्द्या देव्यो यदि खलु सदा सन्ति नालम्बनार्था
धर्मस्तम्भाः कुत इह तदा सत्सुखश्रीप्रभावः॥

मन जब, समग्र विचारों से मुक्त हो जाता है जो सांसारिक उच्चावच है, वह निश्चय ही निर्मल आकाश जैसा अति स्वच्छ होता है। इससे मोह में पतित बुद्धियाँ भी तत्काल ही बाहर निर्गत हो जाती हैं। ऐसी जो प्रज्ञ है वह सर्वथा वन्दनीय है जिनमें अवलम्बनार्थ कुछ भी नहीं है, वे ही बुद्धधर्म के स्तम्भ हैं जहाँ अनन्त आनन्द का साम्राज्य सर्वदा रहता ही है।

अविकल्पित दर्शन सिद्ध्यर्थमनुरूपं दृष्टान्तमाह (अविकल्पित दर्शन सिद्धि के लिए अनुरूप दृष्टान्त बताते हैं ग्रन्थकार) -

प्रतिसेनां यथादर्शे कुमारी पश्येदवस्तुजाम्।
अतीतानागतं धर्मं तत्त्वयोग्यम्बरे तथा॥ ६॥

जैसे आइने में कुमारी अपनी प्रतिरूप में अनेक कल्पनायें करके भिन्न चीजों को देखती है जहाँ कोई पदार्थ नहीं होता, उसी प्रकार योगी आकाश में अतीत, अनागत आदि पदार्थों के देखते हैं॥

प्रतिसेनाम् इत्यादि। प्रतिसेनाशब्देन साधकचिन्तितो दर्पणादिषु प्रतिभासमानो ऽर्थो ऽभिधीयते। ताम् आदर्शे दर्पणे ऽवस्तुजां न चौरादि-जडधर्मतां पश्येत्। प्रतिसेनावतारतन्त्रे किल दर्पणखड्गाङ्गुष्ठप्रदीप-चन्द्रसूर्योदककुण्डनेत्रेष्वष्टषु प्रतिसेनावतार उक्तः। तथातीतानागतं धर्ममम्बरे शून्ये सर्वाकारबिम्बे तत्त्वयोगी लब्धनिर्विकल्पमार्गः पश्यति।

प्रतिसेना का अर्थ है साधक द्वारा चिन्तित पदार्थ आइने में प्रतिभासित होता है वही प्रतिसेना है। उस दर्पण में अवस्तुओं से उत्पन्न अर्थात् चौर आदि जड धर्म को नहीं देखते हैं। प्रतिसेनावतारतन्त्र में निश्चय ही आइना, खड्ग, अंगूठा, दीप, चन्द्र, सूर्य, जल, कुण्ड, नेत्र आदि आठ पदार्थों में प्रतिसेना का अवतार बताया गया है। अतीत अनागत धर्म को आकाश में अर्थात् शून्य में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वाकार बिम्ब में तत्त्व योगी जिसने निर्विकल्प मार्ग को प्राप्त कर लिया है, वही शून्यता को देखता है।

अस्या भावो न भावः स्याद्वस्तुशून्यार्थदर्शनात्।
वस्तुनो ऽभावतो ऽर्थो ऽस्ति मायास्वप्नेन्द्रजालवत्॥ ७॥

इसका भाव भाव ही नहीं है क्योंकि पदार्थ स्वभावरहित हैं। अतएव पदार्थों के अभाव के कारण जो भी दिखता है वह माया, स्वप्न और इन्द्रजाल के समान ही है॥

अस्याः प्रतिसेनाया दृश्यमानाया यो भावः प्रतिभासलक्षणः स न भावः स्यात् तद्वस्तु न भवति। कुत इत्याह - वस्तुशून्यार्थदर्शनाद् इति। वस्तुना परमाणुसन्दोहात्मना शून्यो व्यपगतः। स चासावर्थः प्रतिभास-लक्षणः। तस्य दर्शनं निर्विकल्पप्रत्यक्षोपलम्भात्। वस्तुनो ऽणुसन्दोहात्मक-स्यातीतादेर् अभावतो ऽर्थः प्रतिभासलक्षणो ऽस्ति। लोक एव निर्वस्तुको ऽप्यर्थो दृष्टो यथा मायास्वप्नेन्द्रजालम्।

इस प्रतिसेना का जो दृश्यमान भाव है वह प्रतिभासलक्षणात्मक है वह भाव नहीं है - वह पदार्थ नहीं हो सकता। जो भी पदार्थ है उसके मूल में परमाणु है और भी सिद्ध न होने से सब कुछ निःस्वभाव है। संक्षेप में समग्र जगत् निर्वस्त्रक होते हुए भी माया, स्वप्न और इन्द्रजाल आदि के समान सत्य समझता है।

अमुमेवार्थमाह इसी अर्थ को बता रहे हैं -

असति धर्मिणि ह्येष धर्मोत्पादः प्रदृश्यते।
चिन्तामणिरिवानन्तसत्त्वाशापरिपूरकः॥ ८॥

धर्म-स्वभाव रहित पदार्थ में स्वभाव-धर्म-पदार्थ की उत्पत्ति देखी जाती है। और वह चिन्तामणि के तरह समग्र प्राणियों की आशा की पूर्ति करता हुआ प्रतीत होता है॥

असतीत्यादि। स च निर्विकल्पकाद् अभ्रान्तज्ञानोत्पादः। सर्वाकार-जगदर्थसम्पादकत्वाच् चिन्तामणिरिव।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निर्विकल्प होने से अभ्रान्त ज्ञान की उत्पत्ति होती है। समग्र जगत् का अर्थ सम्पादन करने से भी चिन्तामणि के तरह है।

ननु यदनालम्बनं तत् कथं जगदर्थकारि विषयेण नोत्पत्तिरिति। दृष्टान्तशुद्धिमाह -

यहाँ शंका होती है कि जो अनालम्बन है वह कैसे जगत् के अर्थकारक हो सकता है बिना विषय के, तो दृष्टान्त द्वारा पुस्ट कर रहे हैं -

अदृष्टं प्रतिसेनायां कुमारी चौरादि पश्यति।
तत् प्रादेशिकनेत्राभ्यां गत्वा पश्यन्ति साधकाः॥ ९॥

जैसे प्रतिसेना में आइने में कुमारी अदृष्ट चोर आदि को देखती है सामान्य मांस चक्षुओं के द्वारा, उसी प्रकार साधक भी चित्त के द्वारा अदृष्ट-अभूत पदार्थों को भी देखते हैं।

अदृष्टम् इत्यादि। प्राग् अदृष्टम् एव चौरादिकमत्रस्था मन्त्राधिष्ठित-लोचना कुमारी पश्यति प्रतिसेनायाम्। साधकपुरुषास्तु तत् स्थानं गत्वा कुमारीकथितं साधारणनेत्राभ्यां पश्यन्ति। अयमाशयः। योगी सिद्धोपदेश-मन्त्राधिष्ठितबुद्धिलोचनः कुमारीवदस्खलितबोधिचित्तचन्द्रोऽनुपदिष्ट-पृथग्जनागम्यमम्बरे लोकोत्तरं तत्त्वं पश्यति।

पहले न देखे हुए चोर आदि कुमारी आइने में देखती है उसके बाद अन्य जल उसके निर्दिष्ट स्थान में उन चोर आदि को देखते हैं। इसी प्रकार योगीगण भी सिद्धों के उपदेश, मन्त्र आदि से युक्त होकर कुमारी के तरह ही अस्खलित बोधिचित्त हाकर पृथग्जनों से अगम्य लोकोत्तर तत्त्वों को देखते हैं।

तच्च सदसदादिसर्वप्रपञ्चवर्जितमित्याह वह सत् असत् आदि सभी प्रपञ्चों से सदामुक्त है यही कह रहे हैं -

यदि पश्यति सद्रूपं स्वमुखं किं न पश्यति।
यदि पश्यत्यसद्रूपं शशशृङ्गं कथं न च॥ १०॥
न पश्यत्यन्यचक्षुर्भ्यां स्वचक्षुर्भ्यां न पश्यति।
दृश्यमानमजातं तत् कुमार्या जातकं यथा॥ ११॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि सत् को देखता है तो अपने ही मुख को क्यों नहीं देखता है? यदि असत् को देखता है तो शशशृङ्ग को क्यों नहीं देखता है? दूसरों के आखों से भी नहीं देखता और अपने आँखों से भी नहीं देखता है। दृश्यमान जो है वह अजन्मा है जैसे कुमारी को पुत्र पैदा हुआ हो॥

यदीत्यादि। अन्यचक्षुर्भ्यां ललाटादिभवाभ्यां न पश्यति नापि स्वचक्षुर्भ्याम् अन्यदादर्शनात्। अनेन प्रतिसेनादृष्टान्तेन योगिप्रत्यक्षं सर्वथा स्वभावाभावाद् अजातम्। स्वप्ने कुमारिकापुत्रोपलम्भवत् सिद्धं सर्वज्ञज्ञानम्। उक्तं चात्र समाधिराजसूत्रे –

अन्य चक्षु का अर्थ है ललाट आदि। इस प्रतिसेना दृष्टान्त के द्वारा योगिओं का प्रत्यक्ष सर्वथा स्वभाव राहित्य के कारण अजन्मा के तरह ही है। स्वप्न में जैसे कुमारी ने पुत्र पैदा किया उसी प्रकार सर्वज्ञ ज्ञान भी सिद्ध हो जाता है। इसे ही समाधिराज सूत्र में इस प्रकार कहा गया है –

यथा कुमारी शयनान्तरे ऽस्मिन् सा पुत्र जातं च मृतं च पश्येत्।
जाते ऽतितुष्टा मृते दुर्मनःस्थिता तथोपमाज्जानत सर्वधर्मान्॥

कुमार्या यद् दृश्यमानमजातम् अनुत्पन्नं तत् तस्या जातकं यथोत्पन्नमिवेत्यर्थः॥

जैसे कन्या (अविवाहित कुमारी) स्वप्न में यह देखती है कि उसका पुत्र पैदा हो गया उसके बाद वहीं पर मर भी गया। जब वह पैदा हुआ था वह खुश हुई थी किन्तु जब मरा तब दुःखित हुई। इसी उपमा से सारे पदार्थों को जान लेना चाहिए। कुमारी का दिखा जाता हुआ भी अजन्मा है और मृत भी अमृत के तरह ही है इसी तरह जगत् है।

प्राणायाममाह प्राणायाम बता रहे हैं –

दृष्टे बिम्बे ततः कुर्यात् प्राणायामं निरन्तरम्।
ऊर्ध्वाधस्त्रिषु नाडीषु कायवाक्चित्तरोधनात्॥ १२॥

बिम्बों के देखने के बाद निरन्तर प्राणायाम करना चाहिए। ऊर्ध्व और अधः तीनों नाडियों में काय, वाक् और चित्तों को निरोध पूर्वक प्राणायाम करें॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दृष्टे बिम्ब इत्यादि। ईदृषे स्वप्नमायासदृशे बिम्बे सर्वाकारविश्वबिम्बे दृष्टे सति ततस्तदनन्तरं प्राणायामं प्राणापानवाय्वोर् निरोधं पूरककुम्भक-रेचकयोगेन निरन्तरम् अविच्छिन्नं कुर्यात्। कास्वित्याह - ऊर्ध्वेत्यादि्। नाभेर् ऊर्ध्वमधश् च तिसृषु तिसृषु नाडीषु यथाक्रमं प्राणापानयोर्निरोधं, प्राणायामस्य कायादिधातुत्रयरोधकत्वात्।

इस प्रकार स्वप्नमाया सदृश बिम्ब के ज्ञान होने पर प्राण और अपान वायु का निरोध पूर्वक पूरक, कुम्भक, रेचन पूर्वक निरन्तर प्राणायाम नाभि के ऊपर और नीचे तीनों नाडियों में क्रमशः करना चाहिए। प्राणायाम के द्वारा काय आदि तीनों धातुओं का निरोध होता है।

किम्भूतास्वित्याह वे प्राणायाम किस प्रकार से निरोध करते हैं यह बता रहे हैं -

चन्द्रार्कराहुविण्मूत्रशुक्रमार्गप्रवाहिषु ।
तोयाग्निशून्यभूवायुज्ञानधातुकजातिषु॥ १३॥

चन्द्र, सूर्य और राहु वाहिनी नाडियों में, विष्ठा, मूत्र, शुक्र प्रवाह मार्गों के नाडियों में, जल, अग्नि और शून्य के वाहक नाडियों में, भू, वायु और ज्ञान धातुओं के नाडियों में इनके अतिरिक्त ६२ हजार नाडियों में भी यह प्राणायाम अपना कार्य करता है॥

चन्द्रत्यादि। ऊर्ध्वं वामासव्यामध्यासु। अधो मध्यावामासव्यासु। चन्द्रार्कराहुवाहिनीषु तिसृषु। विण्मूत्रशुक्रवाहिनीषु तिसृषु। तथा तोयाग्नि-शून्यवाहिनीषु। भूवायुज्ञानधातुवाहिनीषु। अन्यासां द्वासप्ततिनाडीसहस्र-जन्मस्थानत्वाज् जातिषु।

चन्द्रसूर्यतमिन्यो याः कायवाक्चित्तनाडिकाः।
विण्मूत्रशुक्रवाहिन्यः प्राणे ऽपाने क्रमेण ताः॥ १४॥

चन्द्रेत्यादि। ऊर्ध्वं चन्द्रादिनाडीत्रयं कायवाक्चित्ताति। अधो विडादिनाडीत्रयं कायवाक्चित्तानि। आसां षट्कुलकल्पनामाह -

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऊपर चन्द्र सूर्य और राहु साथ ही वाक्, काय और चित्त नाडियाँ हैं। नीचे विष्ठा, मूत्र और शुक्रवाहिनी नाडियाँ हैं जो क्रमशः प्राण और अपान में काम करते हैं। इनका ६ प्रकार के कुल कह रहे हैं –

चन्द्रःकाय उपायस्य प्रज्ञाया वाग्दिवाकरः।
प्रज्ञाकायस्तु विण्णाडी विभोर्वाङ् मूत्रवाहिनी॥ १५ ॥

चन्द्रेत्यादि। चन्द्रस्तोयधातुर् उपायस्य शुक्रधातोः कायो भवति। प्रज्ञाया रजोधातोर् दिवाकरस् तेजोधातुर् वाग् भवति। रजोधातोरेव विण्णाडी कायः। विभोः शुक्रधातोर् मूत्रवाहिनी वाक्।

चन्द्र का तोय धातु काय, उपाय का शुक्र धातु काय, प्रज्ञा का रजो धातु काय, सूर्य का तेजो धातु वाणी होता है। रजो धातु का ही विष्ठा नाडी काय है, विभु का शुक्र धातु और मूत्रवाहिनी वाक् है।

ऊर्ध्वाधश्चित्तनाड्यौ द्वे तमिनीशुक्रवाहिन्यौ।
तमिनी चित्तमुपायस्य प्रज्ञायाः शुक्रवाहिनी॥ १६ ॥

ऊपर नीचे दो चित्त नाडियाँ हैं, राहु और शुक्र दो हैं। राहु वाहिनी चित्त है। रजो धातु का चित्तवाहिनी चित्त है॥

ऊर्ध्वेति शुक्रधातो राहुवाहिनी चित्तम्। रजोधातोः शुक्रवाहिनी चित्तम्।

ऊर्ध्वाधः षट्कुलं ह्येतत् कायवाक्चित्तयोगतः।
प्रज्ञोपायाङ्गभावेन संस्थितं सर्वदेहिनाम्॥ १७॥

नीचे और ऊपर यह षट्कुल कहलाता है, काय, वाक् और चित्तों के योग से, तथा प्रज्ञा उपायों के अङ्गभावों से सर्वदेहधारियों में अवस्थित है॥

ऊर्ध्वाधः षट्कुलम् इति। तोयानिलाकाशवाहिनीनामुपायाङ्गत्वा-द्भूम्यग्निज्ञानवाहिनीनां प्रज्ञाङ्गत्वात्।

ऊर्ध्व अधः षट् कुल है। जल, वायु, आकाश आदि वाहिनी नाडियों के उपाय अङ्गभूत होने से भूमि, अग्नि ज्ञान वाहिनियों की प्रज्ञाङ्गता सिद्ध होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अरिष्टं कायवाङ्नाड्योरूर्ध्वाधो ऽधिकमारुतैः।
तमिनीशुक्रवाहिन्योरुत्पत्तिमरणस्थितिः॥ १८॥

काय-वाक् नाडियों में ऊर्ध्व और अधः वहन क्रम में अधिक वायु या कम होने से मृत्यु होती है उसी प्रकार राहु नाडी, शुक्रवाहिनी नाडी में भी अधिक वायु होने से या कम वायु होने से अकाल मृत्यु की स्थिति कही गई है।

उत्पादे मृत्युकाले च मैथुने शुक्रवाहिनी।
तमिनी च वहत्यूर्ध्वे संक्रान्तौ विषुवे रवेः॥ १९ ॥

जन्मावस्था में, मृत्युकाल में, मैथुन की अवस्था में शुक्रवाहिनी और तमिनी भी ऊपर की ओर बहती है माघ और श्रावण सडक्रान्ति के अवसर पर।

सार्धदशमासोपेतषण्णवतिवर्षाभ्यन्तरे ऽकालमरणलक्षणम् अरिष्टम्। तद्भवेद्वक्ष्यमाणनियमाद् अधिकमारुतप्रवाहैरूर्ध्वे ऽधश्च। कयोरित्याह - कायवाङ्नाड्योर् यथायोगं ललनारसनयोर्विण्मूत्रनाड्योश्च। यदाधो विण्णाडी निरुद्धा भवति तदोर्ध्ववामनाड्यामरिष्टं भवति। यदा मूत्रनाडी निरुद्धा भवति तदोर्ध्वदक्षिणनाड्यामरिष्टं भवति। एतच्च प्रपञ्चेन वक्ष्यति। तमिन्याद्युद्देशस्तस्य निर्देश उत्पाद इत्यादि। तमिनीशुक्रवाहिन्योश् चारिष्टं नास्ति। तमिनीशुक्रवाहिन्योर् मारुत उत्पत्तिर् गर्भान्निष्क्रमो मरणं स्थितिः स्वस्थता। न केवलं शुक्रवाहिन्यवधूत्युतत्पादादिकालत्रये वहति। किं च द्वादशलग्नभ्रमणसाम्याद् रवेः प्राणवायोर्मेषादिलग्नात्मकवामनासापुटा-द्वृषभादिलग्नात्मकदक्षिणपुटात् संक्रमणसन्धौ विषुवाख्ये च मध्यमा वहति।

९६ वर्ष और १० महीनों (तथा १५ दिनों तक में जो मृत्यु होती है वह अकाल मृत्यु कहलाती है। वह मृत्यु नाडियों में अधिक वायु के प्रवाह से होता है। जब नीचे की विष्ठा की नाडी रुद्ध होती है तब ऊपर की दक्षिण नाडी में अरिष्ट उत्पन्न होता है। यह सब आगे विस्तारपूर्वक ग्रन्थकार बताने वाले हैं। तमिनी और शुक्रवाहिनी में अरिष्ट नहीं है। अरिष्ट का अर्थ मृत्यु है। न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

केवल शुक्रवाहिनी और अवधूती ही तीन कालों में बहती हैं किन्तु द्वादश लग्नों में भ्रमण के साम्य से सूर्य देव प्राणवायु के मेष आदि लग्नात्मक वामनासापुट से लेकर वृषभ आदि लग्नात्मक दक्षिण नासिका तक संक्रमण सन्धि में विषुव नामक मध्यमा में बहती है।

तन्निर्दिशति उसका निर्देश करते हैं -

लग्नोदयाभिसंधौ च विषुवं वहति मध्ये।
षट्पञ्चाशत् सपादाञ्च श्वासोच्छ्वासान्नराधिप॥ २०॥
अधिकान्पञ्चसप्तत्या षट्शतांश्च दिवानिशम्।
एकविंशत्सहस्रांश्च षट्शतैरधिकांश्च यान्॥ २१॥
वामा च दक्षिणा नाडी वहत्यूनाननेन तान्।
सत्रिपक्षित्रिवर्षाणि शतवर्षे हि मध्यमा॥ २२॥

लग्न के उदय सन्धि में समवाही रूप में मध्यम में वह नाडी वहती है। एक पाव से सहित ५६ वार श्वास और उच्छास होते हैं। दिन और रात्रि में ६५७ वार श्वास प्रश्वास होते हैं। २१६०० बार कुल मिलाकर दिन रात में प्राण के श्वास और प्रश्वास होते हैं। वाम और दक्षिण नाडी उनको निरन्तर वहन करती रहती हैं। तीन वर्ष और तीन पक्षों तक जो १०० वर्षों में मध्यमा स्वयं वहन करती है॥

लग्नोदयेत्यादि। चन्द्रसूर्ययोः समवाहित्वाद् विषुवम्। विषुवत्संख्या-माह - षट्पञ्चाशद् इत्यादि। प्रवेशनिर्गमावेकीकृत्यैकलग्नोदयाभिसन्धौ सपादषट्पञ्चाशद्वारान् वहति। एवमहोरात्रेण द्वादशलग्नसन्धौ पञ्चसप्तत्य-धिकषट्शतश्वासोच्छ्वासान् वहति। यान् सर्वसत्त्वानां शरीरे षट्शताधि-कैकविंशतिसहस्रश्वासान् ललनारसने वहतस् तान् एव पञ्चसप्तत्यधिक-षट्शतेनोनान् वहतः। प्रात्यहिकपञ्चसप्तत्यधिकषट्शतश्वासान् मध्यमाया वर्षशतदिनैः षट्त्रिंशत्सहस्रैः संगुण्य ततो दिनश्वासैः षट्शताधिकैक-विंशतिसहस्रैर्विभज्य लभ्यन्ते पञ्चविंशत्यधिकैकादशशतदिनानि तानि च षष्ट्यधिकत्रिशतैर्वर्षदिनैर्विभक्तानि त्रिपक्ष्यधिकत्रिवर्षाणि भवन्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चन्द्र और सूर्य समान वहने से विषुव कहा गया है। उनकी सङ्ख्या ५६ है। प्रवेश मार्ग और निर्गमन मार्ग को एकाकार करके लग्नोदय के अभिसन्धि में १ पाद से सहित ५६ बार कहा गया है। इस प्रकार अहोरात्रि के गणना द्वारा १२ लग्नों के सन्धि में ६५७ श्वास प्रश्वास का वहन करते हैं। जिन्हें सभी प्राणी अपने शरीर में २१६०० बार ईडा और पिङ्गला द्वारा बाहर और अन्दर करते हैं। उन्हें ही ६७५ कम वहन करते हैं। प्रतिदिन ६७५ श्वासों को मध्यमा के द्वारा १०० वर्षों के दिनों में ३६००० से गुणन करके और एक दिन के श्वासों से २१६०० को भाग करके जो प्राप्त होता है वह ११२५ दिन होते हैं, उन्हे ३६० दिनों से भान करने पर तीन पक्षों सहित तीन वर्ष होते हैं।

वामा सव्योर्ध्वे चन्द्रार्कौ ललनेडा पिङ्गलापरा।
तोयतेजःस्वभाविन्यौ पद्मधृग्रत्नधृङ् मते॥ २३॥
अधो विण्मूत्रवाहिन्यौ पृथ्वीवायुस्वरूपके।
मध्यनाडी च वामा च चक्रधृक्खड्गधृङ्मते॥ २४॥
ऊर्ध्वाधो मध्यमा सव्या राहुशुक्रप्रवाहिनी।
शून्यज्ञानस्वभाविन्यौ वज्रधृग्वज्रधृङ् मते॥ २५॥

वाम और दक्षिण ऊपर में वे चन्द्र सूर्य नाडी हैं। वे ललना = ईडा और पिङ्गला हैं। उनका तेज स्वभाविक रूप से पद्म और रत्नों को धारण करता है। नीचे विष्ठा और मूत्र का वहन करने वाले पृथिवी और वायु के स्वरूप वाले है। उसके बाद मध्य नाडी और वाम नाडी हैं वे चक्र और खड्ग को धारण करती हैं। ऊपर, नीचे, मध्यमा और सव्य वे सब राहु और शुक्र का वहन करती हैं। वे शून्य ज्ञान स्वभावयुक्त हैं वे दोनों वज्रों को धारण करती हैं॥

ऊर्ध्वे या वामा सैव चन्द्रो ललनेडा तोयवाहिन्यमिताभतथागत-स्वरूपा च। सव्या त्वर्कः पिङ्गला ह्यपरेति रसना तेजोवाहिनी रत्नसम्भव-स्वरूपा च। अधो मध्या विण्णाडी भूवाहिनी वैरोचनस्वरूपा च। वामा तु मूत्रनाडी वायुवाहिन्यमोघसिद्धिस्वभावा च। ऊर्ध्वं मध्यमा राहुनाडी शून्यवाहिन्यक्षोभ्यस्वभावा च। सैवाधः सव्या शुक्रनाडी ज्ञानवाहिनी वज्रसत्त्वस्वरूपा च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऊपर जो वाम कही गई वही चन्द्र है। ललना ईडा है। वही पानी का वहन कहती है, अमिताभ तथागत स्वरूपिनी भी है। सव्या पिङ्गला है। रसना यह तेज का वहन करती है, रत्न संभव स्वरूपिणी है। नीचे मध्यनाडी है जो विष्ठा को वहन करती है, यह भूवाहिनी है जो वैरोचन स्वभाव वाली है। वामा मूत्रनाडी है वायु का वहन करती है। अमोघ सिद्धि स्वभावाली है। वही नीचे सव्य है जो शुक्रनाडी कहलाती है तथा ज्ञान का वहन करती है जो वज्रसत्त्व स्वरूपिणी भी है।

विण्णाडी चन्द्रमार्गेण रविणा मूत्रवाहिनी।
जातौ मृत्यौ विषुवे रागे राहुणा शुक्रवाहिनी॥ २६॥

विण्णाडी – विष्ठानाडी चन्द्रमार्ग से वहती है ओर मूत्रवाहिनी सूर्य मार्ग से वहती है। विषुव होने पर मृत्यु भी होती है राहु द्वारा शुक्र वाहिनी नाडी प्रवाहित होती है॥

विण्णाडी चोर्ध्वे चन्द्रमार्गेण सहैकीभवत्येकशुषिरत्वात्। तथा मूत्रनाडी रविणैकीभवति। एवमुत्पादादिकालचतुष्टये शुक्रनाडी राहुणैकी-भवति।

विष्ठा नाडी ऊर्ध्व में चन्द्रमार्ग से एकीभूत होती है। मूत्र नाडी सूर्य से एकीकृत होती है। इसी प्रकार उत्पाद आदि काल चतुष्टय में शुक्रनाडी राहु के साथ एकीभूत होती है।

या नाभ्यूर्ध्वे ऽवधूती सा सुषुम्ना तमोवाहिनी।
या ऽधः खगमुखा सा च शङ्खिनी शुक्रवाहिनी॥ २७॥

जो नाभि के ऊपर वहने वाली है वह अवधूती है उसी का नाम सुषुम्ना भी है वह तम को वहन करती है। जो नीचे पक्षिका का मुख युक्त है उसे शङ्खिनी कहते है जो शुक्र का वहन करती है॥

या नाभ्यूर्ध्वे ऽवधूती तस्याः सुषुम्ना तमोवाहिनीति नामद्वयम्। या चाधः शुक्रवाहिनी तस्याः खगमुखा शङ्खिनीति नामद्वयम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाभी से ऊपर अवधूती सुषुम्ना तमोवाहिनी ये पर्यायवाची हैं। शुक्रवाहिनी खगमुखा और शङ्खिनी दो नाम हैं।

नाभ्यब्जे हृदये कण्ठे ललाटोष्णीषपङ्कजे।
भूतोयाग्निमरुच्छून्यं संहारेण प्रवाहिनी॥ २८॥

नाभी कमल में, हृदय में, कण्ठ और सहस्रार में क्रमशः पृथिवी, तोय, अग्नि, मरुत् और शून्य संहार क्रम से प्रवाहित होती है॥

निर्गच्छन्ती विशन्ती सा सृष्टिना विशति क्षितौ।
कर्णिकात् कर्णिकामध्ये ऽवधूत्या गतिरागतिः॥ २९॥

निकलती, प्रविष्ट होती हुई सृष्टि द्वारा क्षिति में प्रविष्ट होती है। कर्णिका से कर्णिका के मध्य में अवधूती से गमन और निर्गमन होता ही रहता है॥

नाभौ गुह्ये च मण्यब्जे कायवाक्चित्तवाहिनी।
निर्गच्छन्ती विशन्ती सा संहारसृष्टिरूपिणी॥ ३०॥

नाभि, गुह्य और मणिकमल में काय, वाक् और चित्त वाहिनी होती हुई निकलती है प्रविष्ट होती है, वे संहार और सृष्टिकारिणी भी है॥

नाभ्यादिपञ्चपद्मकर्णिकासु निर्गच्छन्त्यवधूतीगतप्राणशक्तिर्भूम्यादि-पञ्चधातून् क्रमेण वहति। तत्र नाभ्यब्जे भुवः पञ्चगुणा गन्धरूपरसस्पर्श-शब्दलक्षणाः। हृदयाब्जे तोयस्य चत्वारो गुणा रूपरसस्पर्शशब्दलक्षणाः। कण्ठाब्जे ऽग्नेस् त्रयो गुणा रसस्पर्शशब्दलक्षणाः। ललाटाब्जे मरुतो द्वौ गुणौ स्पर्शशब्दलक्षणौ। उष्णीषाब्जे शून्यस्य शब्दमात्रमेको गुणः। एतान् गृहीत्वावधूती निर्गच्छति संहारेणेति पृथिव्यादिक्रमेण।

नाभि आदि पञ्चपद्मकर्णिका में निकलती अवधूती नाडी प्राणशक्ति में स्थित होकर भूमि आदि पञ्चधातुओं को क्रम से वहन करती है। नाभि कमल में पृथिवी के पाँचगुण गन्ध-रस-रूप-स्पर्श-शब्द हैं। हृदय कमल में जल के चार गुण रूप रस स्पर्श शब्द युक्त है। कण्ठगत जल में अग्नि के तीन गुण रस स्पर्श शब्द हैं। ललाट जल में वायु के दो गुण स्पर्श शब्द हैं। सहस्रार में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शून्य का एक शब्द गुण है। इन सभी को लेकर अवधूती निकलती है और संहार द्वारा पृथिवी आदि क्रम से।

तदुक्तमार्यदेवपादैः आर्यदेव ने इसे इस प्रकार कहा है –

भूधातुर्लीयते तोये तोयं तेजसि लीयते।
तेजश्च सूक्ष्मधातौ च वायुश्चित्ते विलीयते॥
चित्तं चैतसिके लीयेताविद्यायां तु चैतसम्।
सापि प्रभास्वरं गच्छेन्निरोधो ऽयं भवत्रये॥

बहिर्वायुवाहेन धातुक्षयाच्च। विशन्ती पुनरुष्णीषकमलादिक्रमेण क्षितौ नाभिपद्मे विशति विश्राम्यति सृष्टिनेत्याकाशादिक्रमेण। उक्तं चार्यदेवपादैः –

भू (पृथिवी) जल में, जल तेज में, तेज सूक्ष्म धातु में, वायु चित्त में विलीन होता है। इसी प्रकार चित्त चैतसिक में, चैतस अविद्या में, वह अविद्या भी प्रभास्वर में, यही भवत्रय में निरोध कहा गया है। बाहर वहने से और धातु के क्षय से भी प्रविष्ट होती है – उष्णीष कमलादि क्रम से पृथिवी में नाभि पद्म में विश्राम करती है आकाशादि क्रम से सृष्टि कही गई है। आर्यदेव ने कहा भी है –

प्रभास्वरान् महाशून्यं शून्याच्चोपायसम्भवः।
तस्मादुत्पद्यते प्रज्ञा तस्याः पवनसम्भवः॥
पवनादग्निसम्भूतिरग्नेश्च जलसम्भवः।
जलाज्जायते पृथिवी सत्त्वानामेष सम्भवः॥ इति।

प्रभास्वर से महाशून्य, शून्य से उपायसम्भव होता है। उससे प्रज्ञा का उदय होता है। उससे पवन होता है। पवन से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी और उसमें प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

अन्तर्वाहेन शरीरधातुवृद्धेश्च। इत्वधूत्या गमनागमने कर्णिकात् कर्णिकामध्ये पारिशेष्याल्ललना रसनयोः पद्मदलेषु गतागतम्। अधो नाभौ गुह्ये च मण्यब्जे शङ्खिनी कायवाक्चित्तवाहिनी सत्त्वरजस्तमोभेदेन त्रिद्वचे-कगुणात्मिका संहारक्रमेण निर्गच्छति। सृष्ट्या विशति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्दर प्रवाह होने और शरीर धातु की वृद्धि से भी यह संभव हो जाता है। अवधूती के गमन आगमन के साथ ही ललना रसना के आवागमन से यह होता है। नीचे नाभि में गुह्य में नाभिकमल आदि में शङ्खिनी जो काय वाक् और चित्त में वहने वाली है। सत्त्व रजस् तमस् के भेद से तीन दो और एक गुणात्मक होकर संहार क्रम से निकलती है। सृष्टि से प्रविष्ट होती है।

शङ्खिनी सर्वजन्तूनामपानानिलवाहिका।
एषा स्त्रीणां सुखाच्छुक्रं क्रतौ रक्तप्रवाहिनी॥ ३१॥
प्रज्ञोपायाङ्गभावेन ऊर्ध्वे सव्यावसव्ययोः।
अधो विण्मूत्रवाहस्य रजःशुक्रप्रवाहयोः॥ ३२॥
चण्डाली रजसो वाहात् खगमुखा शुक्रवाहतः।
ऊर्ध्वे क्रतौ स्मृता स्त्रीणां डोम्बी पुंसोऽवधूतिका॥३३॥

यह शङ्खिनी सभी प्राणियों के अपान वायु को बाहर करती है। यही स्त्रियों के मासिक चक्र में रक्त को बाहर करती भी है और सुखपूर्वक रज को निकालती है। प्रज्ञा और उपाय के द्वारा ऊपर दायाँ और बायाँ के भेद से नीचे की ओर विष्ठा मूत्र को निकालना तथा रज और शुक्र का निर्गमन कराना भी है। रज के वहन करने से चण्डाली और शुक्र को वहन करने से खगमुखा है। ऋतुकाल में ऊर्ध्व वहन के कारण स्त्रियों के लिए डोम्बी तथा पुरुषों में अवधूती है।

एषैव शङ्खिनी स्त्रीणां सुखात् सुरते रागसुखाच् छुक्रं वहति। ऋतौ रजउद्भवकाले तु रक्तं सैव वहति। परे पूर्व इत्यादिना वक्ष्यमाणप्रज्ञोपाया-लिङ्गनस्योद्देशः प्रज्ञेत्यादि। ऊर्ध्वे प्राणे सव्यावसव्ययोर् दक्षिणवामयोः प्रज्ञोपायाङ्गभावः। अधो ऽपाने मध्यवामयोः। ऊर्ध्वाधो रजःशुक्रप्रवाहयोः।

स्त्रियों को सुखपूर्वक सुरत में लगाने से शङ्खिनी है। ऋतुकाल में रक्त को वही वहन भी करती है।

स्त्रीणां शङ्खिन्येव ऋतुकाले रजोवाहाच्चण्डालीत्युच्यते। सैव शुक्रवाहात् खगमुखा। ऊर्ध्वे ऽवधूती तु ऋतौ ऋतुकाले स्त्रीणां रजोवाहे डोम्बीत्युत्यते पुरुषस्य तु ऋतौ शुक्रागमनकालेऽप्यवधूत्येवोच्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वही शङ्खिनी ऋतुकाल में रज का वहन करने से चण्डाली है। शुक्रवहन से खगमुखा। ऊर्ध्व में अवधूती और ऋतु में डोम्बी, पुरुष के शुक्र आगमन काल में अवधूती कहलाती है।

वामदक्षिणनासापुटयोर्मण्डलोदयमाह वामदक्षिण नासापुटों का मण्डलोदय की व्याख्या अब कर रहे हैं -

विज्ञानाद्यं सदा वामे नाड्यां मण्डलपञ्चकम्।
भूम्याद्यं दक्षिणे नाड्यां मध्ये वहति षष्ठमम्॥ ३४॥
नाभिपद्मदले षष्टिमण्डलानि यथाक्रमम्।
वामे च दक्षिणे लग्ने मेषाद्ये वृषभादिके॥ ३५॥
मूले वामे ततः सव्य ऊर्ध्वे मध्ये ऽनिलः क्रमात्।
एकैकमण्डलं दण्डाद्भूम्याद्यं नासरन्ध्रयोः॥ ३६॥

सृष्टिक्रम से हमेशा वामनाडी में पाँच मण्डल और संहार क्रम से दक्षिण नाडी में ६ मण्डल निरन्तर प्रवाहमान रहते हैं। नाभि कमल में ६० मण्डल होते हैं क्रमशः वाम और दक्षिण लग्न में ३ तथा मेष आदि तथा वृषभ आदि लग्न में नवें मण्डल अवस्थित हैं। मूल में, वाम में, दायाँ और बायाँ में वायु क्रमशः एक एक मण्डल करके इधर से उधर नासा रन्ध्रों में प्रवाहमान रहता है॥

विज्ञानाद्यम् इत्यादि। विज्ञानाद्यं सृष्टिक्रमेण भूम्याद्यं संहारक्रमेण। वामनासापुटे वक्ष्यमाणक्रमेण विज्ञानसंस्कारवेदनासंज्ञारूपाख्यपञ्च-स्कन्धवाहः। एवं दक्षिणे पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाख्यपञ्चधातुवाहः। मध्ये मध्यमामार्गे षष्ठं ज्ञानमण्डलमाकाशादिपञ्चमण्डलात् प्रत्येकं मण्डलस्य सपादैकादशश्वासान् गृहीत्वा सपादषट्पञ्चाशच्छ्वासात्मकं वहति। आसां वामदक्षिणमध्यनाडीनामहोरात्रेण षष्टिमण्डलवाहः। तत्र नाभिपद्मदलस्य वामषड्दलेषु मेषमिथुनसिंहतुलाधनुःकुम्भात्मकेषु प्रत्येकं विज्ञानादिपञ्च-मण्डलात्मकत्वात् त्रिंशन् मण्डलानि। एवं दक्षिणषड्दलेषु वृषकर्कट-कन्यावृश्चिकमकरमीनात्मकेषु प्रत्येकं भूम्यादिपञ्चमण्डलात्मकत्वात्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्रिंशन् मण्डलानि। तत्र दक्षिणे वृषादिलग्ने यदा वहति वायुस्तदा मूले नासापुटस्याधोभागे भूमिमण्डलं दण्डैकं वहति। एवं तस्यैव वामभागे नासावंशप्रदेशे तोयमण्डलम्। सव्ये दक्षिणभागे तेजोमण्डलम्। ऊर्ध्वभागे वायुमण्डलम्। मध्ये शून्यमण्डलम्। एवमुभयोर् नासारन्ध्रयोरेकैकमण्डलं दण्डाद् दण्डान्तरं वहति। पञ्चभिर्दण्डैः पञ्चमण्डलं वहतीत्यर्थः। वामपुटस्य तु वक्ष्यति दलमध्य इत्यादिना। तदपेक्षया घ्राणरन्ध्रयोर् इत्युक्तम्।

विज्ञानाद्यम् – सृष्टिक्रम से। भूम्याद्यं – संहारक्रम से। वामनासापुट – विज्ञानादिपञ्चस्कन्ध। दक्षिणे – पृथिवी अप् तेज आदि। मध्ये मध्यमार्ग में, षष्ठं आदि सपाद षट्पञ्चाशत् श्वासात्मक वहन करना है। नाभिपद्मदल का वाम षड्दलों में मेष-मिथुन-सिंह तुला धनु कुम्भ आदि प्रत्येक में विज्ञानादि पञ्च मण्डलात्मक होने से ३० मण्डल होते है। दक्षिण में वृष आदि लग्न में जब वहता है नासा वंश प्रदेश में तोय मण्डल की स्थिति होती है। सव्य में तेजमण्डल। ऊर्ध्व में वायुमण्डल। मध्य में शून्यमण्डल।

एका नाडी कति श्वासान् वहतीत्याह एक नाडी कितने श्वासों का वहन करती है? इस पर कहते हैं –

नाडिका वहति श्वासान् सषष्टित्रिशतान् क्रमात्।
अष्टादशशतश्वासान्नाड्यः पञ्च वहन्ति तान्॥ ३७॥

नाडी ३०६ श्वासों का वहन करती है। और १८०० श्वासों को पाँच नाडीयाँ वहन करती हैं॥ ६० ॥

नाडिकेत्यादि। क्रमाद् इति क्ष्मादिनाकाशादिना च। तत्रैका नाडिका प्रवेशनिर्गमावेकीकृत्य सषष्टित्रिशतश्वासान् वहति। एवं पञ्चमण्डलेन लग्नाख्येन गुणिता अष्टादशशतश्वासा भवन्ति। तांश् च भूम्यादिपञ्चमण्डलस्वभावाः पञ्च नाड्यो वहन्ति। एवमष्टादशशतश्वासाश्च द्वादशसंक्रान्तिभिर्गुणिता अहोरात्रेण षट्शताधिकैकविंशतिसहस्त्रश्वासा भवन्ति। तांश्च देहे षष्टि नाड्यो वहन्ति।

क्रमशः पृथिवी से लेकर आकाश पर्यन्त तत्त्वों को वहन करती हैं। वहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक ही नाडी प्रवेश और निर्गम रीति से एक होकर ३०६ श्वासों को वहन करती है। इस प्रकार पञ्चमण्डलों द्वारा गुणित होने पर १८१८ श्वासों को वहन करती हैं। उन्हें भूमि आदि पञ्चमण्डलों के स्वभाव पाँच नाडियाँ वहन करती हैं। इस प्रकार अष्टादश सौ श्वास प्रश्वास १२ सङ्क्रान्तियों से गुणित होने पर अहोरात्र में २१६०० (श्वास) होते हैं। उन श्वासों को ६० नाडियाँ शरीर में वहन करती हैं।

एतदाह यही कहते हैं –

षष्टि नाड्यो दिवारात्रं मण्डलानीति देहतः।

षष्टीत्यादि। वामनाड्यां लग्नोदयमाह –

६० नाडियाँ रात और दिन में मण्डल रूप होकर इन्हें वहन करती हैं। वामनाडी में लग्न का उदय बताते हैं –

दलमध्ये ततः पूर्वे सव्ये वामेऽपरे क्रमात्॥ ३८॥

दलमध्य इत्यादि। यदा वामनाड्यां मेषादिना नासापुटमध्ये शून्य-मण्डलं वहति तदाभ्यन्तरेऽपि नाभिमण्डले दलमध्ये वहतीति वक्ष्यते। ततः पूर्व इति ऊर्ध्वे वायुमण्डलम्। दक्षिणे तेजोमण्डलम्। वामे तोयमण्डलम्। अपर इत्यधोभागे पृथिवीमण्डलम्। क्रमाद् इत्याकाशादि-क्रमात्।

मण्डलों में पूर्व में और वाम तथा दक्षिण में क्रमशः वे रहती हैं। जब, वामनाडी में मेष आदि द्वारा नासापुट में शून्य मण्डल का वहन होता है तब अन्दर नाभिमण्डल में भी वह वहन करती ही है। ऊर्ध्व में भी यही स्थिति है। दक्षिण में तेज मण्डल विराजमान रहता है। वाम भाग में तोयमण्डल। अधोभाग में पृथिवी मण्डल। क्रम से अर्थ है आकाश आदि क्रम। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए बता रहे हैं –

आकाशाद्यम् इत्यादिना पूर्वोक्तमेव स्पष्टयति –

आकाशाद्यं सदा वामे भूम्याद्यं दक्षिणेऽपरात्।
विज्ञानादि भवो वामे संहारः क्ष्मादि दक्षिणे॥ ३९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आकाश आदि सदा वाम भाग में भूमि आदि दक्षिण में, विज्ञान आदि भी सदैव वाम भाग में तथा संहार क्रम से पृथिवी आदि दक्षिण में अवस्थित हैं।

स्कन्धाधारो भूतमिति वचनादाधेयात्मकविज्ञानादिस्कन्धैः सहाधाराणामाकाशवाय्वग्निजलभूमिधातूनामभेदेनाह - आकाशाद्यम् इति। अपराद् इति पूर्ववन् मूलादारभ्येत्यर्थः। अपराद्वामपुटाद्वा। वामे विज्ञानादि भव इति सृष्टिर्व्यवस्थाप्यते चन्द्रत्वात्। सव्ये क्ष्मादिना संहारः सूर्यत्वात्। यद्वा वामे चन्द्रस्थे सप्रज्ञाक्षोभ्यादिस्वभावविज्ञानादिमण्डलचक्रं दक्षिणे च सोपायलोचनादिस्वरूपभूम्यादिमण्डलचक्रं मन्त्रदेवतात्मकं स्फरणसंहाररूपं सहजं सर्वसत्त्वानां स्थितम्।

स्कन्ध, आधारभूत इत्यादि वचनों से आधेयात्मक विज्ञान आदि स्कन्धों के साथ आधारभूत आकाश आदि धातु भेदों को कहा है। चन्द्र होने से सृष्टि की स्थिति वामनासापुट से कहा गया है। सूर्य, दक्षिण नासिका से संहार कहा गया है। वाम नासिका में श्वास वहने से प्रज्ञायुक्त अक्षोभ्य आदि स्वभावयुक्त विज्ञानादि मण्डलचक्र और दक्षिण में होने का अर्थ है - उपायों के सहित लोचनादि स्वरूपभूत भूमि आदि मण्डलचक्र जो मन्त्र देवतात्मक, स्फरण और संहार, सहज स्थिति सर्वप्राणियों के लिए कहा गया है।

तस्य प्रज्ञेत्यादिनोद्दिष्टं प्रज्ञोपायत्वं निर्दिशति प्रज्ञा द्वारा निर्दिष्ट प्रज्ञोपाय का निर्देशन करते हैं -

परे पूर्वे धरा वायुः प्रज्ञोपायः परस्परम्।
अङ्गुष्ठानामिकाद्वाभ्यां यतो वक्त्रे ऽभिषिञ्चनम्॥ ४०॥

पर इत्यादि। प्रत्येकं पुटयोः परे पश्चिमे भूस्वरूपलोचनावैरोचनौ पूर्वे वायुस्वभावतारामोघसिद्धी। तत्र वैरोचनस्य प्रज्ञा तारा अमोघसिद्धेस्तु लोचनेत्यन्योन्यसंमुखालिङ्गनं निश्चितम्। अत्र बोधिसत्त्वकृतोपायरहित - लघुतन्त्रश्रवणविप्रलब्धानां संप्रत्ययार्थं स्पष्टं ज्ञापकमाह - अङ्गुष्ठ इत्यादि। यस्माद् वामकरकनिष्ठादिपञ्चाङ्गुलीनामाकाशादिस्वरूपाणां मध्ये ऽङ्गुष्ठानामिकाभ्यां भूवायुस्वरूपाभ्यामालिङ्गनं तर्पणमूद्रा गुह्याभिषेकार्थं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिष्यवक्त्रे देवतातर्पणे च दृष्टा तस्मात् सिद्धं भूवाय्वोः परस्परं प्रज्ञोपायत्वं ग्राह्यग्राहकभावेन। तथा हि परकुलालिङ्गनेन कार्योदयो न स्वकुलालिङ्गनेन स्वात्मनि क्रियाविरोधात्। पृथिवीधातूद्भूतं हि कायेन्द्रियं वायुधातूद्भूतं स्पर्शविषयं गृह्णाति।

एतेन विण्मूत्रनाड्योः प्रज्ञोपायत्वं समन्वितम्।

प्रत्येक नासापुट में भूस्वरूप लोचना वैरोचन पूर्व में वायु-स्वभाव तारा और अमोघसिद्धि हैं। वहाँ पर वेरोचन की प्रज्ञा तारा अमोघसिद्धि का लोचना अन्योन्य संमुख में आलिङ्गन करके निश्चिय पूर्वक रहते हैं। यहाँ बोधिसत्त्वकृत उपाय रहित लघुतन्त्रों के श्रवण से विप्रलब्धों के विश्वास हेतु अङ्गुष्ठ इत्यादि से बता रहे हैं। आकाशादि स्वरूपों के बीच में पृथिवी, वायु आदि का आलिङ्गन पूर्वक तर्पणमुद्रा ही गुह्याभिषेक है। उसे शिष्यों के मुखों में देवतातर्पण में भी देखा गया है इसीलिए भूमि और वायु का परस्पर प्रज्ञोपायत्व ग्राह्यग्राहक भाव से सिद्ध होता है। जैसा कि दूसरों के कुल में आलिङ्गन द्वारा कार्य का उदय अपने कुल का आलिङ्गन द्वारा अपने आप में होता है क्रिया विरोध उपलब्ध होता है। पृथिवी धातु से उद्भूत कायेन्द्रिय, जो वायुधातु से समुद्भूत स्पर्श विषय को ग्रहण करना है। इससे विष्ठामूत्र नाडियों का प्रज्ञोपायत्व समन्वित है।

सव्ये वामे हविस्तोयं प्रज्ञोपायः परस्परम्।
मध्यमातर्जनीद्वाभ्यां यतः खड्गो भविष्यति॥ ४१॥

सव्य और वाम नासिकाओं में हविः और तोय को प्रज्ञोपाय रूप स्वीकार करना - परस्पर मध्यमा और तर्जनी के द्वारा ग्रहण किया जाता है जहाँ से खड्ग की उत्पत्ति होती है॥

सव्ये वह्निस्वरूपपाण्डरारत्नसम्भवौ। वामे तोयस्वभावमामक्यमिताभौ। तत्र पाण्डरा प्रज्ञामिताभस्य मामकी रत्नसम्भवस्य। यस्मात् सव्यकरमध्यमातर्जनीभ्यां वह्नितोयस्वभावाभ्यामालिङ्गनं खड्गमुद्रायां दृष्टम्। वह्निधातुजनितं हि रसविषयं तोयधातूद्भूतं रसनेन्द्रियं गृह्णाति। तस्मात् सिद्धमनलजलयोः प्रज्ञोपायत्वम्। एतेन रसनाललनयोः प्रज्ञोपायत्वम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सव्य का अर्थ वह्निस्वरूप पाण्डरा रत्न सम्भव है। वाम का अर्थ तोय स्वभाव – मामकी और अमिताभ। यहाँ पाण्डरा, प्रज्ञा अमिताभ की, मामकी रत्नसंभव की सहयोगिनी है। खड्ग मुद्रा में इन दोनों को देखा जाता है। वह्नि धातु से समुत्पन्न रसविषय तोयधातु से समुद्भूत रसना इन्द्रिय का ग्रहण होता है। इसी से सिद्ध अग्नि और जल का प्रज्ञोपाय स्वरूप निर्मित होता है। अतएव रसना-ललना का प्रज्ञोपायत्व सिद्ध होता है।

अर्धचन्द्राकृतिर्मुद्रा दंष्ट्रा कर्त्री कनीयसी।
शून्यमक्षरमूर्ध्वाधः प्रज्ञोपायः परस्परम्॥ ४२॥

अर्धचन्द्राकृति ही मुद्रा है वह सबसे छोटी कर्तृ के रूप में उपस्थित है, शून्य ही ऊर्ध्व और अधः प्रज्ञोपाय परस्पर रहते हैं॥

मध्ये ऊर्ध्वदिग्व्यवस्थितशून्यरूपाक्षोभ्यस्याधोदिग्व्यवस्थिताक्षर-ज्ञानात्मकप्रज्ञापारमितया सहालिङ्गनम्। परस्परम् इति वक्ष्यमाणो-र्ध्वाधःस्थवज्रधात्वीश्वरीवज्रसत्त्वयोरालिङ्गनस्याप्यपेक्षितपूर्वार्धं ज्ञापकम्। यतः सव्यहस्तमुष्टौ अर्धचन्द्राकारा कृता कनीयसी अक्षोभ्यस्य दंष्ट्रामुद्रा या सा प्रज्ञापारमितायाः कर्त्तृकामुद्रा। ततः शून्यज्ञानकुलयोः प्रज्ञोपायता। एतेनावधूतीशङ्खिन्योः प्रज्ञोपायता।

मध्य में ऊर्ध्व आदि दिशाओं में स्थित शून्य रूप अक्षोभ्य का अध दिशाओं में स्थित अक्षर ज्ञानात्मक प्रज्ञापारमिता के साथ आलिङ्गन करना है। वक्ष्यमाण ऊर्ध्व अध स्थित वज्र धातु ईश्वरी वज्रसत्त्वों को आलिङ्गन का अपेक्षित पूर्वार्ध का ज्ञापक हैं। क्योंकि सव्य हस्त मुष्टि में अर्धचन्द्राकार छोटी अक्षोभ्य का दंष्ट्रा मुद्रा ही प्रज्ञापारमिता की कर्तृकामुद्रा है। उसके बाद प्रज्ञोपायाशून्य ज्ञान कुल की स्थिति है। इससे अवधूती और शङिखनी की प्रज्ञोपायता सिद्ध होती है।

अनन्तरश्लोके वक्ष्यमाणकुलालिङ्गनस्य ज्ञापकमाह निम्न श्लोक द्वारा वक्ष्यमाण कुल का आलिङ्गन बता रहे हैं –

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दशमण्डलसंयोगे अङ्गुलीनां परस्परम्।
करतले पुटिते मूर्ध्नि एकशूकं सकर्त्तिकम्॥ ४३॥

परस्पर अङ्गुलियों का दशमण्डल संयोग होने पर तथा हाथ को शिर पर रखने पर एक वस्त्र जो काटने वाला हथियार सहित होती है॥

यतो वामदक्षिणकरतले सम्पुटीकृते मूर्ध्नि कृते शून्यादिस्वभावाङ्गुलीनां परस्परं योगो दशमण्डलसंयोगः कृतो यदा तदा वज्रसत्त्वस्य एकशूकवज्रमुद्रा। सैव वज्रधात्वीश्वर्याः क्षुरिकाकारा कर्त्तीमुद्रा। ततो ऽनयोः प्रज्ञोपायता। अनेनैतदप्युपलक्षयति। मध्यमावाहयोगेनाच्युतसुखेन बोधिचित्तमूर्ध्वरेतसा वज्रशिखाया ऊर्ध्वं कर्तव्यम्। तदेव सकर्त्तिकम् अज्ञानस्य च्छेदनरूपत्वात्।

इसे एकशूक मुद्रा कहा गया है। वही वज्रधातु भी है। वह ईश्वरी की क्षुरधारा के समान काटने वाली भी है। वे ही प्रज्ञोपाय हैं। मध्यम नाडी में प्राण के बहने मात्र से अच्युत सुख द्वारा बोधिचित्त की ऊर्ध्व रेतस् होना प्रसिद्ध है। वह क्षुरा भी (छुरा) अज्ञान को काटने से ही अति प्रसिद्ध है।

विषुवत्तन्मध्यनाड्यां सृष्टिसंहारकारकम्।
स्कन्धधातुत्रिवज्राणामेकत्वं मध्यमागतौ॥ ४४॥

सूर्यचन्द्र समान रूप से वहने के कारण मध्यनाडी में सृष्टि और संहार क्रिया की स्थिति होती है। साथ ही मध्यम नाडी में वायु वहने मात्र से स्कन्ध-धातु आदि त्रिवज्रों का भी एकत्व हो जाता है॥

यच्च बाह्ये सकर्त्तृकैकशूकवज्रात्मकषष्ठकुलं तदन्तरे विषुवम् अर्केन्द्वोः समवाहित्वात्। मध्यनाड्याम् अवधूत्यां वाहे विषुवं च जन्मकाले वाहात् सृष्टिहेतुः। मरणकाले वाहात् संहारहेतुः। अथवा तत्त्वभावनया योगिनां निरुद्धे बहिर्वाहे लोकोत्तरस्कन्धादिहेतुत्वेन सृष्टिहेतुः। संसारिणाम-निरुद्धे स्कन्धादिनाशकत्वेन संहारहेतुः। तच्च विषुवं पूर्वोक्तानां वामनासापुटवाहे पञ्चस्कन्धानां दक्षिणनासापुटवाहे पञ्चधातूनां नाभिगुह्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मणिपद्मस्थितकायवाक्चित्तवज्राणां मध्यमानाडीगतावेकत्वम् एव नान्यत्। इति वायुवाहव्यवस्थाव्याजेन सर्वमण्डलचक्रदेवताज्ञानस्य व्यवस्थोक्ता।

जो बाहर कर्ता सहित वज्रात्मक षष्ठ कुल है उसके बाद सूर्य चन्द्रों की समान वाहित्व होने से मध्यनाडी अवधूती में वहाव के कारण ही सृष्टि होती है। मरण काल में वहने से संहार का कारण होती है। अथवा बाह्य भाव निरुद्ध होने पर योगिगणों का लोकोत्तर स्कन्ध आदि हेतु के कारण सृष्टि हेतु है। सांसारिकों के अनिरोध होने से स्कन्ध आदि नष्ट होने से संहार हेतु है। वह भी जो विषुव है पूर्वोक्त पदार्थों का वामनासापुट में वहने से पञ्चस्कन्धों का, दक्षिणनासापुट में वहने से पञ्च धातुओं का नाभि, गुह्य, मणि पद्म स्थित काय, वाक्, चित्तवज्रों का मध्यमनाडी में जाना ही एकता है। इस प्रकार वायु के वहने के व्यवस्था के माध्यम से सर्वमण्डल चक्र देवता ज्ञान की व्यवस्था की व्याख्या की गई है।

चन्द्रार्कनाडिकारुद्धे रुद्धा विण्मूत्रनाडिकाः।
राहुनाडीविरुद्धे स्याद्रुद्धाधः शुक्रवाहिनी॥ ४५॥

चन्द्र सूर्य नाडी के रुद्ध होने पर विष्ठा मूत्र नाडियाँ अवरुद्ध हो जाती हैं। राहु नाडी के रुद्ध होने पर नीचे शुक्रवाहिनी नाडी भी रुद्ध हो जाती है॥

मुक्ते मुक्ता भवन्त्येताः सृष्टिसंहारकारिकाः।
संचार एष नाडीनां प्राणापानत्रिमार्गतः॥ ४६॥

मुक्त होने पर वे मुक्त होते हैं जो सृष्टि और संहार के कारण हैं। यही नाडियों की सञ्चार व्यवस्था है। प्राण अपान और समान आदि के भेद से वे तीन प्रकार की हैं जो सृष्टिस्थिति और लय कराती हैं॥

चन्द्रार्केत्यादि। ऊर्ध्वं यदा चन्द्रार्कराहुनाडीनां निरोधस्तदाधो विण्मूत्रशुक्रनाडीनां निरोधः। ततोर्ध्वं तिसृणां मोक्षः। अधस् तिसृणां मुक्तिः। ताश्च षण्णाड्यः पूर्ववत् सृष्टिसंहारकारिकाः॥

ऊपर में चन्द्र अर्क राहु नाडियों के निरोध से विष्ठा, मूत्र, शुक्रों का निरोध हो जाता है। इन तीनों के मुक्त होने पर वे भी मुक्त होते हैं। नीचे भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीनों की मुक्ति होती है। वे ६ नाडियाँ पूर्ववत् ही हैं। जो सृष्टि और संहार के कारण हैं।

इतिश्रीनारोपापादविरचितायां कालचक्रतन्त्रस्य सेकोद्देशटीकायां षडङ्ग्योगप्रकरणं समाप्तम्।

षडङ्ग्योग प्रकरण पूरा हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ चतुर्थमरिष्टप्रकरणम्

अरिष्ट प्रकरण

अरिष्टलक्षणमाह अरिष्ट अर्थात् मृत्यु का लक्षण बता रहे हैं -

वामायां दक्षिणायां वा प्रवहत्यधिकोऽनिलः।
एकरात्रं तथा पञ्च त्रिवर्षैर्मरणं ततः॥ १॥

वाम नाडी अथवा दक्षिण नाडी में जब अधिक - अस्वाभाविक वायु का प्रवाह होता है एक और पाँच अहोरात्रों में, तब तीन वर्षों में मृत्यु होती है॥

वामायाम् इत्यादि। मेषादिविषमलग्नजातकानामल्पायुषां वपुषि वातपित्तश्लेष्मवैषम्यम्। अतो वैषम्यतः प्राणाख्यो ऽनिलः पञ्चदण्डवाह-क्रममुल्लङ्घ्य यदाधिको वामनाड्यां वहति। कथम् अधिक इत्याह- एकरात्रम् इति। एकरात्रम् अहोरात्रम्। तदारिष्टादारभ्य ततो ऽरिष्टात् त्रिभिर् वर्षैर् मृत्युर्ज्ञेयः। एवं वृषादिसमलग्नजातकानां दक्षिणनाड्यां पञ्चाहोरात्र-वाहात् त्रिभिर् वर्षैर् मृत्युः। इत्युद्दिश्य सूर्यारिष्टं तावन्निर्दिशति॥

मेष आदि विषम लग्नों में उत्पन्न जातकों का जो अल्पायु वाले हैं, वातपित्तश्लेष्मों के वैषम्य से मृत्यु होती है। स्वाभाविक क्रम को छोड़कर वामनाडी में एक अहोरात्र में प्रवाह होता है उससे इसी प्रकार वृष आदि समलग्नों में उत्पन्न जातकों का दक्षिण नाडी में पाँच अहोरात्र तक वायु के अधिक प्रवाह से तीन वर्षों में मृत्यु होती है। इस प्रकार सूर्य के अरिष्ट का निर्देश कर रहे हैं।

पञ्च दिक्तिथयो विंशतितत्त्वान्येकोत्तरक्रमात्।
त्रयस्त्रिंशद्दिनारोहदिरिष्टं दक्षिणे रवौ॥ २॥

पाँच अहोरात्र और १५ तिथियों, २०वीं तिथि में उत्तरोत्तर क्रम से ३३ अहोरात्रों तक दक्षिणायन में अरिष्ट उत्पन्न होता है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चेत्यादि। राश्यात्मकद्वादशदलनाभिपद्मस्य गर्भपरिमण्डले पूर्वदले पञ्चाहोरात्रान् प्राणो वहति। ततो दक्षिणावर्तेन द्वितीयदले दिग् इति दश, तृतीये तिथीन् पञ्चदश, चतुर्थे विंशतिं, पञ्चमे तत्त्वानि पञ्चविंशतिम्। षष्ठे एकोत्तरक्रमात् षड्विंशतिम्। सप्तमे पुनर् एकोत्तरक्रमात् सप्तविंशतिं दिनानि प्राणो वहति। अत्र हि सूर्यश्चन्द्रगुणान् शब्दस्पर्शरसरूपगन्धान् गृहीत्वा, अरिष्टदिनानि दर्शयति। तेन पञ्चपञ्चकेन पञ्चमराशिं यावद् वृद्धिः। ततः षष्ठसप्तमराशावेकोत्तरेण क्रमाद् वृद्धिरिति। सप्तमे राशौ पौष्णकालो यत्र प्राणस्य निवृत्तिः कैश्चिदपि कर्तुं न शक्यते। शुक्र-धातावरिष्टवायुप्रवेशात्। ततः पौष्णकालात् शुक्रधातुक्षयार्थमष्टमपत्रादिषु क्रमेण त्रयस्त्रिंशद्दिनारोहः। तत्राष्टमे पञ्चदश। नवमे दश। दशमे पञ्च। एकादशे त्रीणीति त्रयस्त्रिंशद्दिनानि। द्वादशे तु शून्यं पुनर्दक्षिणनाड्यां वाहाभावात्। ततः सव्यनाडीं त्यक्त्वा वामां दिनद्वयं प्राणमारुतो याति। ततो दिनमेकं मध्यमां याति। उक्तं च पञ्चलक्षहेवज्रे–

राशिरूप १२ दलयुक्त नाभिकमल का गर्भमण्डल में पाँच अहोरात्रों तक प्राणवायु बहता है। उसके बाद दक्षिण की ओर लौटकर दशमी, पञ्चदशवीं, एवं बीसवीं तिथि को वायु का प्रवाह चलता है। २६ एवं २७ दिनों तक प्राण का बहाव होता है। यहाँ सूर्य और चन्द्र के गुणों को लेकर जो शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्धों को लेकर अरिष्ट दिनों के दिखाते हैं। इसी से पञ्च को पाँच से गुणन करके पाँचवें राशि तक वृद्धि होती है। उसके बाद षष्ठ; सप्तम राशि में एक उत्तर क्रम से वृद्धि होती है। सप्तम राशि में पौष्णकाल होता है जहाँ प्राण की निवृत्ति कोई भी नहीं कर सकता। क्योंकि शुक्र धातु में ही अरिष्ट वायु का प्रवेश हो चुका होने से। उसके बाद शुक्रधातु के क्षय हेतु आठों पत्रों में क्रम से ३३ दिनों का आरोह होता है। आठवें में १५, नवम में दश, दशम में पाँच एकादश में तीन – इस प्रकार ३६ दिन होते हैं। १२वें दिन शून्य फिर दक्षिण नाडी में वाह का अभाव होता है। सव्य नाडी को छोड़कर वाम में दो दिन तक वायु चला जाता है। उसके बाद एक दिन मध्यम में जाता है। इसी को पञ्चलक्षहेवज्र में कहा है –

दशरात्रं दक्षिणे नाड्यां यदा वहति मारुतः।
द्वितीये राशिपत्रे स्याद् द्विवर्षैर्मरणं ततः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिथ्याख्यैरेकवर्षं स्यात् तृतीये रशिपत्रके।
चतुर्थे षण्मासांश्च विंशतिं दिवसान् वहेत्॥
त्रिमासायुर्वहेत् पत्रे पञ्चमे पञ्चविंशतिम्।
षष्ठे मासद्वयं ह्यायुः षड्विंशतिदिनं वहेत्॥
सप्तमे मासमेवायुः सप्तविंशतिदिनं वहेत्।
त्रयस्त्रिंशद्दिनान्यस्माद्वहत्येष निरन्तरम्॥
अष्टमं नवमं पत्रं दशमं चैकादशं क्रमात्।
त्यजेच् च तानि पत्राणि तिथिदिक्पञ्चगुणैर्दिनैः॥
सव्यनाडीं ततस् त्यक्त्वा वामां गच्छति मारुतः।
दिनद्वयं ततो याति दिनमेकं मध्यमापदम्॥
श्वासक्षयं ततः कृत्वा मरणादुत्क्रमत्यसौ।
अधः शुक्रं क्षयं याति ऊर्ध्वे मातृरजो व्रजेत्॥
स्वकर्मवासनाबद्धं विज्ञानं प्राणसंयुतम्।
मरणात् पुनर्भवं याति न च तेन विनापरम्॥
उपाध्यायाद्यथा विद्या दीपाद्दीपो यथा भवेत्।
मुद्रायाश्चापरा मुद्रा दर्पणे मुखतो मुखम्॥ इति।
इत्यरिष्टदिनारोहणक्रमः।

दक्षिण नाडी में १० दिन वायु बहता है। दूसरे राशि में बहने से दो वर्षों में मृत्यु होती है। तृतीय राशि पत्र में एक वर्ष वायु बहने से तथा चौथे में ६ महीनों एवं २० दिनों तक वायु बहता है। अब तीन महीनों तक पाँचवें में २५ दिन तक वायु बहता है। छठें में दो महीनों तक ही आयु रहता है। उसके बाद २६ दिनों तक बहता है। अब सातवें में एक महीना आयु रहता है - वायु २७ दिन बहता है। ३३ दिनों तक वायु बहने से क्रमशः ८, ९, १०, ११ दिनों में उन उन स्थानों को छोड़ देता है और वाम नाडी में वायु चला जाता है। एक दिन एक नाडी में फिर दूसरे दिन दूसरे नाडी में वायु चला जाता है। उसके बाद प्राण का क्षयीकरण होता है तब मृत्यु लोक में चला जाना पड़ता है। नीचे शुक्र का क्षय होता है ऊपर माता का रज चला जाता है। अपने कर्मों के संस्कार में आबद्ध होकर ज्ञान और प्राण साथ साथ निकलते हैं। मृत्यु के बाद फिर संसार में आना पड़ता है। उसके बिना दूसरा कोई उपाय नहीं है। जैसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुरू से ज्ञान प्राप्त होता है। एक दीप से दूसरा दीप जलता है, एक मुद्रा से दूसरी मुद्रा होती है। दर्पण में मुख देखने से मुख दिखता है उसी प्रकार एक जीवन से दूसरा जीवन उत्पन्न होता है। इस प्रकार अरिष्ट दिनों का आरोहण क्रम की व्याख्या हुई।

त्रिद्व्येकसमकैर्मासैः षट्त्रियुग्मेन्दुभिर्दिनैः।
तिथिदिक्पञ्चगुणद्व्येकैरायुर्गच्छति देहिनाम्॥ ३॥

तीन, दो और एक समानता के द्वारा तथा ६, ३ और दो दिनों से तिथि दिशाओं को पाँच गुणन से जो दो और १ के द्वारा होता है – जो फल निकलता है उसी दिन प्राणियों का आयु नष्ट हो जाता है॥ ७२ ॥

अधुनाऽरिष्टात्मकजीवितकालक्रममाह। तद्बोधार्थं लिखितव्यं द्विपुटपरिमण्डलम्। त्रिद्व्येकेति समका वर्षाणि पूर्वे दले त्रीणि। द्वितीये दले द्वौ। तृतीये एकम्। मासाश्चतुर्थे षट्। षष्ठे द्वौ। सप्तमे एकम्। दिनान्यष्टमे दले पञ्चदश। नवमे दश। दशमे पञ्च। एकादशे त्रीणि। द्वादशे द्वे। पद्मकर्णिकायामेकम्। अनेनेदमुक्तम्। आदौ पूर्वदले पञ्च दिनानि वहति। ततः शतायुषामिव द्वादशसंक्रान्तिभिर्जीवितव्यवर्षत्रयाद् अशीत्युत्तर-सहस्त्रदिनगणात्मकात् पञ्चत्रिंशदधिकशतत्रयं वहति। तत्र पुनरप्रवेशात् तद्दलं शोषयति। ततस्तत् पत्रं शून्यीकृत्य द्वितीयपत्रे ऽवशेषदिनगणं गृहीत्वा प्राणशक्तिः प्रविशति। तत्र दशदिनानि वहति। तत्राप्यारोहणदिनैः सहैकादशसंक्रान्त्या पञ्चचत्वारिंशदधिकशतत्रयं वहति। ततो द्वितीयं शून्यीकृत्यावशेषदिनं गृहीत्वा तृतीये प्रविशति। तत्र पञ्चदश दिनादि वहति। तत्राप्यारोहणदिनैः सह दशसंक्रान्त्या सप्तत्यधिकदिनशतं वहन्ती तृतीयं शोषयति। तृतीयं शून्यीकृत्यावशेषदिनमादाय चतुर्थे प्रविशति। तत्र विंशतिदिनानि वहति। तत्राप्यारोहणदिनैः सह द्व्यशीतिदिनानि नवसंक्रान्त्या वहन्ती चतुर्थं शोषयति। तत्पत्रं शून्यीकृत्यावशेषदिनमादाय पञ्चमे प्रविशति। तत्र पञ्चविंशतिदिनानि वहति। तत्राप्यष्टसंक्रान्त्या-रोहणदिनैः सह सप्तपञ्चाशद्दिनानि वहन्ती तद्दलं शोषयति। ततः षष्ठे ऽवशेषदिनमादाय प्रविशति। तत्र षड्विंशतिदिनानि वहति। षष्ठमपि सप्तसंक्रान्त्यारोहणदिनैः सार्द्धमष्टाविंशतिदिनानि वहन्ती त्यजति। ततः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

षष्ठं शून्यीकृत्य सप्तमे प्रविशति। तत्र सप्तविंशतिदिनानि वहति। सप्तमं षट्संक्रान्त्यारोहणदिनैः सह सप्तविंशद्दिनानि वहन्ती त्यजति। सप्तमं शून्यीकृत्यावशेषषट्त्रिंशद्दिनगणं गृहीत्वाष्टमे प्रविशति। अष्टमं पञ्चसंक्रान्त्या पञ्चदशदिनानि वहन्ती त्यजति। अष्टमं शून्यीकृत्यावशेषमेकविंशतिदिनगणं गृहीत्वा नवमे प्रविशति। नवमं चतुःसंक्रान्त्या दशदिनानि वहन्ती त्यजति। एवम् अवशेषमेकादशदिनं गृहीत्वा दशमे प्रविशति। दशमं त्रिसंक्रान्त्या पञ्चदिनानि वहन्ती त्यजति। अवशेषदिनं गृहीत्वैकादशमे प्रविशति। एकादशं द्विसंक्रान्त्या दिनत्रयं वहन्ती त्यजति। एवमेकादशदलशोषः पित्तात्मकरजोधातुशोषणात्। द्वादशे दले पुनर्दक्षिणनाडीं त्यक्त्वा वामनाड्यामसंक्रान्त्या दिनद्वयं वहन्ती श्लेष्मात्मकसत्त्वधातुशोषात् तद्दलं शोषयति। ततः पद्मकार्णिकायां मध्यनाड्यामसंक्रान्त्या दिनमेकं वहन्ती वायुस्वभावतमोधातुक्षयात् तां शोषयित्वा दक्षिणपुटेन निर्गम्य विज्ञानानुगा प्राणशक्तिः शुभाशुभादिकर्मप्रेरिता भवान्तरं संक्रामति॥

इस श्लोक के द्वारा अरिष्टात्मक जीवन के लक्षण बता रहे हैं। उसके बोध के लिए ही दो पुट परिमण्डल की व्याख्या करते हैं। संक्षेप में इस प्रकार है – सौ वर्षों के तरह ही १२ सङ्क्रान्तियों के कारण जीवन योग्य तीन वर्षों के कारण एक हजार ८० दिनों के गणना से ३५३ दिन होते हैं। फिर तीन दिनों को न्यून करके अशेष दिनों को लेकर प्राणशक्ति प्रविष्ट होता है। फिर दश दिन वायु बहता है, उसमें भी आरोहण दिनों से एकादश सङ्क्रान्ति से ३५३ दिन वायु बहता है। उसके बाद दूसरे को न्यून करके अवशिष्ट दिनों को लेकर तृतीय में वायु प्रविष्ट होता है। फिर १५ दिन बहता है। उसमें भी आरोहण दिनों से लेकर दश सङ्क्रान्ति से १७० दिनों तक बहती हुई ३ अवशिष्ट होता है, फिर चतुर्थ में प्रवेश होता है, फिर २० दिन बहता है। फिर आरोहण दिनों के साथ ८२ दिनों तक नवसङ्क्रान्ति के द्वारा बहती हुई चौथे को शोषित करती है। उस पत्र को शून्य करके अवशिष्ट दिन को लेकर पाँचवें में प्रविष्ट होता है। वहाँ पर पच्चीस दिनों तक बहता है। आठ सङ्क्रान्ति आरोहण दिनों के साथ ५७ दिनों तक बहती है। और छठे अवशिष्ट दिन को लेकर प्रविष्ट होता है। वहाँ पर २६ दिनों तक बहती है। छठे आरोहण दिन के साथ २८ दिनों तक बहते हुए छोड़ देती है। उसके बाद छठे को शून्य कर सप्तम दिन में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रविष्ट होता है। वहाँ पर २७ दिनों तक बहती है। उसके बाद ३६ दिनों तक ग्रहण करके प्रविष्ट होती है। आठवें को शून्य करके अशेष २१ दिनों का ग्रहण करके नवम में प्रविष्ट होती है। इसी प्रकार दक्षिण नाडी को छोड़कर वामनाडी में सङ्क्रान्ति होकर दो दिन तक बहती हुई श्लेष्मा नामक धातु शोषण करके उसके शक्ति को शोषित करता है। उसके बाद पद्मकर्णिका में मध्य नाडी में असङ्क्रान्ति से एक दिन बहती हुई वायु स्वभाव तमो धातु के क्षय होने से उसे शोषित करके दक्षिण नासिकापुट के माध्यम से निकलकर अपने स्वरूप को दिखाते हुए प्राण शक्ति शुभाशुभ कर्मों से प्रेरित होती हुई भवान्तर अन्य जीवन में संक्रमित होती है।

चन्द्रारिष्टमाह मूलाद् इत्यादिना चन्द्रारिष्ट को बता रहे हैं निम्न श्लोक के द्वारा–

मूलादेकोत्तरेण स्याद्वामे चन्द्रस्य रोहणम्।
दिनैर्मासैर्दिनैर्मासैस् त्रिदिनानि द्विमासकौ॥ ४॥
दिने ऽरिष्टं शुभे मासे वृद्धिहानिस्ततस्तयोः।

पूर्वलग्न से लेकर वाम नासिका में चन्द्र का आरोहण नूर्वक दिन महीने, दीन और महीने इस प्रकार तीन दिन और दो मास होते हैं। उस दिन में अरिष्ट का उदय होता है और इसी प्रकार उन दोनों की वृद्धि और हानि होती है।

मूलाद् इति नाभिचक्रस्य मेषादिविषमजन्मलग्नात्मकपूर्वदलादारभ्य। एकोत्तरेणेति। एकद्वित्र्यादिक्रमात् त्रयस्त्रिंशद्दिनान्येकादशे पत्रे वाम-नाड्यारोहणं चन्द्रस्य वायोः। कथम् एकोत्तरेणेत्याह। गर्भप्रथमदले दिनमेकं वामेन वहति। तद्दिनोनमासद्वयं यथावद्वहति। ततस्तृतीयमासादौ दिनद्वयं तस्मिन्नेव पत्रे वामे वहति। तद्दिनोनतृतीयचतुर्थमासयोर् यथावद्वहति। पञ्चममासादौ दिनत्रयं तत्र दले वामे वहति। तद्दिनोनपञ्चम-षष्ठमासयोर् यथावद्वहति। एवं पूर्वपूर्वेण सह गण्यमानानि प्रथमतृतीय-पञ्चममासादिमान्येव त्रीण्यरिष्टदिनानि व्यवस्थाप्यन्ते। अथवाविच्छिन्नं वहद् रात्रिंदिनं व्यवस्थाप्यते ऽरिष्टदिनत्रयम्। अनेन वर्षत्रये दिनत्रयोन-षण्मासा गताः। तस्मिन् पत्रे प्राणवायोरसंचारः। एवमहोरात्रमेकादश-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संक्रान्तिभिः करोति द्व्यद्व्यष्टशतश्वासैः। पत्रपरित्यागेऽपि श्वासचक्रस्योनता नास्ति। एवं द्वितीयदले सप्तममासादौ चत्वारि दिनान्यरिष्टम्। अष्टममासादौ पञ्च। नवममासादौ षट्। पूर्वकं दिनत्रयं व्यवस्थाप्य पूर्वदलदिनैः सह षड्दिनान्यरिष्टम्। द्वितीयतृतीयाद्यन्यदिनेषु यथावद्वहति। एतदपि मासत्रयं गतम्।

मूल का अर्थ – नाभिचक्र का मेष आदि विषम जन्म लग्नात्मक पूर्व दल से लेकर है। गर्भ के प्रथम दल में एकादि वामनासिका द्वारा वहन करती है। उस दिन से लेकर पौने दो मास पर्यन्त यथावद् वहन करती है। उसके बाद तीन महीने से पहले दो दिन तक उसी वाम पत्र में वहन करती है। इसी प्रकार अनेक दिनों में यह परिवर्तन होता ही रहता है। पञ्चम मास के आदि में तीन दिन तक वामदल में बहती है। इस प्रकार पूर्वपूर्वरूप के साथ गणना करने से प्रथम तृतीय और पञ्चम मासों को गणना से तीन अरिष्ट दिन व्यवस्थित होते हैं। अथवा अविच्छिन्न वहन करते हुए दिन और रात दोनों ही अरिष्ट व्यवस्थित होते हैं। इससे तीन वर्षों में तीन दिनों से कम छ महीने व्यतीत होते हैं। उस पत्र में प्राणवायु का संचार नहीं होता। इस प्रकार अहोरात्र एकादश सङ्क्रान्तियों के कारण दो अरब (अयुत) ६२ सौ श्वास होते हैं। चक्र के परित्याग में भी श्वासचक्र की न्यूनता नहीं होती है। इस प्रकार द्वितीय दल में सप्तम मास के आदि में चार दिन अरिष्ट होते हैं। आठवें के आदि में पाँच अरिष्ट होते हैं। नवम मास के आदि में छह होते हैं – अरिष्ट। पहले के तीन दिन व्यवस्थित करने पर पूर्वदलों के दिनों के साथ ६ दिन अरिष्ट होते हैं। द्वितीय-तृतीय आदि अन्य दिनों में यथावत् वहन करती है। इस प्रकार तीन मास पूर्ण हुए।

एवं त्रिभिस्त्रिभिर्मासैर्दिनत्रयविवर्धनात्।
एकादशदलान्येष त्यजेद्वर्षत्रयं क्रमात्॥ इति।

इसी क्रम से तीन तीन महीनों में तीन दिनोंके वृद्धि से ११ दल ही त्याग देते हैं तीन वर्षों में क्रमशः।

एकादशदले वाहाच्छ्लेष्मात्मकसत्त्वधातुं शोषयति। द्वादशे तु दले दक्षिणनाडीप्रवाहादन्यदलानारूढद्वितीयचतुर्थषष्ठमाससम्बन्धिदिनत्रयस्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिनद्वयं क्षीयते पित्तात्मकरजोधातुक्षयाद् द्वादशमदलशोषात्। पूर्ववत् कर्णिकायामेकदिनं मध्यमावाहाद् वातात्मकतमोधातुं शोषयित्वा भवान्तरगमनमिति। वामारिष्टेन मरणमयोगिनो यान्ति। प्रतिपत्त्यर्थं लिपिक्रमः। द्विपुटद्वादशराशिचक्रे पूर्वाद्येकादशदलेषु त्रीणि षण्णवद्वादश-पञ्चदशाष्टादशैकविंशतिचतुर्विंशतिसप्तविंशतित्रिंशत्त्रयस्त्रिंशद् द्वादशे तु वामवाहाभावाच्छून्यम्। बाह्यद्वादशदलेषु क्रमान् मासास्त्रिंशत्सप्तविंशति-चतुर्विंशत्येकविंशत्यष्टादशपञ्चदशद्वादशनवषट्त्रयः। एकादशे त्रिमास-क्षयसूचकं शून्यम्। द्वादशे दिनद्वयं कर्णिकायां दिनमेकम्। एवं त्र्यादिदिने ऽरिष्टस्य वृद्धिः। त्रिंशदादिमासात्मकजीविताख्यस्य शुभस्य हानिः।

११वें दल में वहने से श्लेष्मात्मक सत्त्वधातु को शोषित करता है। १२वें दल में दक्षिण नाडी के प्रवाहसे अन्य दलोंमें अरूढ होने पर द्वितीय चतुर्थ षष्ठमास सम्बन्धित तीन दिनों में दो दिन क्षय होते हैं। क्योंकि पित्तात्मक रजो धातु के क्षय होने से और १२ दलों के शोषण से भी। पहले के तरह ही कर्णिका में एक दिन मध्यम वहन होने से वातात्मक तमो धातु को शोषित करके भावान्तर गमन हुआ करता है। वामारिष्ट से अयोगी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। ज्ञान के लिए लिखा गया है। द्विपुट द्वादशराशि के चक्र में पूर्व आदि एकादश दलों में ३, ६, ९, १२, १५, १८, २१, २४, २७, ३०, ३३ और बारहवें में वामवाह का शून्य होता है। बाह्य १२ कमलों में क्रमशः महीनों को ३०, २७, २४, २१, १८, १५, १२, ९, ६ और ३ में विभक्त करते हैं। ११वें में तीन महीनों के क्षय का सूचक शून्य होता है। १२वें में दो दिन और कर्णिका में एक दिन। इस प्रकार तीन के आदि दिन में अरिष्ट की बुद्धि होती है। ३० आदि मासात्मक जीवित नामक शुभ की हानि होती है।

मध्यमारोहणं मृत्योः शताब्दपरिपूर्णतः॥ ५॥

(मृत्यु के) सौ वर्ष पूर्ण (आयु) होने पर, जब मृत्यु होती है तब प्राण वायु बिना किसी यत्न के सुषुम्ना में प्रविष्ट होता है॥

सार्धदशमासोपेतषण्णवतिवर्षावधिः सूर्यचन्द्रवहनकालः। दिन-त्रयोनवर्षशतपूरकत्रिपक्षवर्षत्रये मध्यमायां मृत्योरारोहणम्। एतन्निर्दिशति—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६६ वर्ष और साढे दश महीनों की अवधि ही सूर्य और चन्द्र का वहन काल है। तीन दिन कम, ६६ वर्ष और तीन पक्षों में मध्यमा नाडी में, सुषुम्ना में मृत्यु का आरोहण होता है। इसी का निर्देश करते हैं–

समविषमदिनैस्तस्य जन्मजातैश्च मण्डलैः।
रोहणं सव्यवामे च पक्षद्वयविनाशनात्॥ ६॥

सम और विषम दिनों के द्वारा जन्म हुए व्यक्तियों का प्राण वायु सव्य और वाम नाडी में दो पक्षों के विनाशपूर्वक आरोहण करता है॥

समविषमेत्यादि। द्व्यादिद्वात्रिंशद्दिनपर्यन्तैः समदिनैः सव्ये। एकादित्रयस्त्रिंशत्पर्यन्तैर् विषमदिनैर्वामे। आरोहणं तस्य मृत्योः। किं च जन्मकाले जातवृषादिलग्नस्य भूम्याद्यन्यतममण्डलैः। तथा मेषादिलग्नस्य शून्याद्यन्यतममण्डलैस् तं मण्डलमारभ्येत्यर्थः। अयं च वाहः सव्येतरनाडीधातुस्कन्धादिविनाशमधिकृत्य ल्यब्लोपे पञ्चमीति। उपपत्तिमाह–

दो से लेकर २२ दिनों में – वे सव्य में और एक से लेकर ३३ दिनों में, वाम नाडी में प्रविष्ट होता है। जन्मकाल में वृष आदि लग्न का भूमि आदि अन्य मण्डलों से हुआ करता है। यह प्राणवायु का वहन सव्य और अपसव्य नाडी धातु स्कन्ध आदि का विनाश करते हुए ही प्रविष्ट होता है। इसमें युक्ति बता रहे हैं–

अन्यथा मरणं न स्यात् पक्षद्वयस्य संस्थितौ।
सव्यावसव्यसंचारात् पञ्चमण्डलवाहतः॥ ७॥

अन्यथा दोनों पक्षों की स्थिति में उसकी मृत्यु नहीं होगी, क्योंकि पञ्चमण्डल के वाह और सव्य असव्य में संचार होने से भी यही स्थिति होती है॥

अन्यथा मरणं नेत्यनेनेदमुक्तम्। समलग्नजातकस्य प्रथमं सव्यायां दिनद्वयं वहति। पुनर्दिनद्वयं यथावत्। ततो वामायां दिनमेकं यथावत्। चत्वारि दिनानि सव्ये चत्वारि यथावत्। त्रीणि वामे त्रीणि यथावत्। षट्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सव्ये षड् यथावत्। पञ्च वामे पञ्च यथावत्। एवं यावद् द्वात्रिंशत् सव्ये द्वात्रिंशद् यथावत्। त्रयस्त्रिंशद्वामे त्रयस्त्रिंशद्यथावत्। इह दक्षिणे द्व्यादित्रिंशत्पर्यन्तसमदिनैस् त्रिकत्रिकैः पृथिव्यादिधातुक्षयः क्रमात्। वामे एकाद्यूनत्रिंशत्पर्यन्तैर्विषमदिनैस् त्रिकत्रिकैराकाशादिधातुक्षयः क्रमात्। तत्रैकत्रिंशद्दिनैः सत्त्वधातुक्षयः। द्वात्रिंशद्दिनै रजोधातुक्षयः। त्रयस्त्रिंशद्दिनै-स्तमोधातुक्षयः। विषमलग्नजानां त्वेकादिक्रमेणायं वाह इति विशेषः। इति दिनत्रयोनवर्षशतम्। तदूर्ध्वं चतुस्त्रिंशद्दिनाद्यारोहणम्। तत्रैकदिनं सव्ये। एकदिनं वामे। एवं क्रमेण त्रयस्त्रिंशद्दिनानि यावद्वहति। ततः क्रमेण पञ्चस्कन्धधातुविषयेन्द्रियकर्मेन्द्रियक्रियाणां क्षयः। ततो मध्यमायां दिनमेकं ततो धातुस्कन्धादीन् षष्ठान् शोषयित्वा भवान्तरं गच्छति॥

समान लग्न में पैदा हुए व्यक्ति का पहले सव्य में दो दिन तक वायु वहता है। फिर दो दिन यथावत् रहता है। फिर वाम में एक दिन और एक दिन यथावत्। चार दिन तक सव्य में और चार दिन यथावत्। तीन वाम में और तीन दिन यथावत् ६ सव्य में ६ यथावत्। पाँच वाम में पाँच यथावत्। इसी प्रकार २२ दिन तक सव्य में २२ दिन यथावत्। ३३ दिन तक वाम में फिर ३३ यथावत्। यहाँ दाहिने में दो से लेकर ३० दिनों तक समदिनों में तीन, तीन पृथिवी आदि धातुओं का क्रमशः क्षय होता है। वाम में एक से लेकर २९ पर्यन्त विषम दिनों के द्वारा तीन तीन के द्वारा आकाश आदि धातु का क्षय होता है। ३१ दिनों से सत्त्व धातु का क्षय होता है। ३२वें दिन से रजोधातु का क्षय होता है। ३३ दिनों के द्वारा तमो धातु का क्षय होता है। विषम लग्न में पैदा हुए व्यक्तियों का एक आदि क्रम से यह वाह होता है यही वैशिष्ट्य है। इस प्रकार तीन दिनों से कम एक सौ वर्ष होते हैं। उसके ऊपर ३४ दिनों से आरोहण प्रारंभ होता है। एक दिन सव्य में, इसी क्रम से ३३ दिनों तक यह वहता है। फिर क्रम से पञ्च-स्कन्ध-धातु-विषय-इन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय क्रियाओं का क्षय होता है। फिर मध्यमा में एक दिन धातु स्कन्ध आदि को तथा छठें का शोषण करके जन्मान्तर में चला जाता है।

इतरिष्टलक्षणं ज्ञात्वा योगिनां तद्वञ्चनोपायमाह–

इस प्रकार अरिष्ट लक्षण को जानकर योगी को उसे छलने का उपाय बताते हैं –

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अरिष्टलक्षणं ज्ञात्वा प्राणं बिन्दौ निवेशयेत्।
अवधूतीपदमाश्रित्य भावयेत् परमाक्षरम्॥ ८॥
वज्रोत्थानं सदा कुर्याच्चन्द्रार्कगतिभञ्जनात्।

अरिष्ट के लक्षणों को जानकर योगी को तत्काल ही अपने प्राण को बिन्दु में प्रविष्ट कराना चाहिए। और अवधूती पद में आश्रित होकर परम अक्षर की भावना करनी चाहिए। चन्द्र और सूर्य की गति का भञ्जन करके वज्र का उत्थान करना चाहिए॥

अरिष्टेत्यादि। तत्र सूर्यारिष्टे सति वज्रपर्यङ्कं बद्ध्वा प्राणायामपूर्वकं सव्यबाहुना सव्यस्तनपीडनात् पञ्चमण्डलवाहात्मकात् सव्यादाकृष्य वामे प्राणं संचारयेत्। तेन सूर्यारिष्टनिवृत्तिः। तथा वामात् सव्ये चन्द्रारिष्टनिवृत्तिः। तथा पर्यङ्कं कृत्वा बिन्दौ ललाटस्थसितषोडशदलपद्ममध्ये प्राणायामपूर्वकं चित्तं निवेशयेत्। प्राणं बिन्दौ निवेशयेद् इति मुख्यतो धारणालक्षणमेतत्। सैव च मुख्योऽरिष्टवञ्चनोपायः। अवधूतीत्यादिग्रन्थश्च तदभिप्रायेणैव योज्यः। तथा पर्यङ्कं कृत्वावधूतीपदं नाभिपद्मं पीतचतुःषष्टिदलं, तन्मध्ये चन्द्रमण्डले अंकारं शुक्लोर्ध्वरेखाकारं सप्राणायामं भावयेत्। ततो वज्रोत्थानं सदा कुर्यात् स्वशयसरसीरुहादिनां यथेन्दुर्बहिर्न भवेत्। अरिष्टहेतुचन्द्रार्कगतिभञ्जकत्वादस्योपायस्य प्राधान्यमाह–

सूर्य के अरिष्ट होने पर वज्रपर्यङ्क को बाँधकर अर्थात् पद्मासन में बैठकर प्राणायामपूर्वक दायें हाथ से दायें स्तन भाग को दबाने से पञ्चमण्डलों में वायु के प्रवाह होने से दायें से खीचकर वाम भाग में प्राण का सञ्चार करना चाहिए। इससे सूर्य अरिष्ट नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार वाम से दाहिने में करने से चन्द्रारिष्ट से मुक्ति होती है। फिर सीधा बैठकर ललाट में अवस्थित सफेद षोडशदलयुक्त कमल में प्राणायाम पूर्वक चित्त का निवेशक करना चाहिए। यही मुख्य अरिष्टवञ्चन का उपाय है। अवधूती भी इसी के लिए प्रयुक्त हुआ है। तथा सीधा बैठकर नाभिपद्म में पीला ६४ दलों वाला जो कमल है, उसमें, चन्द्र मण्डल में अंकार सफेद ऊर्ध्व रेखाकार को प्राणायाम पूर्वक चिन्तन करना चाहिए। अरिष्ट का हेतु चन्द्रसूर्य गति के भञ्जनात्मक उपाय का प्राधान्य बता रहे हैं–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्यथा नावधूत्यङ्गे विशति प्राणमारुतः॥ ९॥

यदि ऐसा न करेंगे तो अवधूती में प्राण वायु का प्रवेश नहीं हो सकता है॥

अन्यथा नेत्यादि। ऊर्ध्वारिष्टं सवञ्चनमुक्त्वाधोऽरिष्टमाह अब, निम्न अरिष्ट का लक्षण बता रहे हैं–

अपानोऽधश्च शङ्खिन्यां मरणं तदवेशतः।
अरिष्टवञ्चनं ह्येतदानन्दैर्योगिनां भवेत्॥ १०॥

अपान अध है – शङ्खिनी में पूर्ण रूप से मृत्यु होती है। इससे अरिष्ट का वञ्चन करके योगी आनन्द में प्रविष्ट होते हैं॥

अपानोऽधश्च शङ्खिन्याम् इति न केवलं शङ्खिन्यां नाड्याम् अधश्चेति विण्मूत्रवाहिन्योर् अपानाख्यो वायुर्वहतीति शेषः। अजस्रं विण्मूत्रवाहितया तस्याप्रवेशतोऽपि मरणम्॥

केवल शङ्खिनी में ही वायु नहीं वहता है किन्तु विष्ठा मूत्र वाहिनी नाडियों में भी अपान नामक वायु वहता है। निरन्तर उसमें विष्ठा मूत्रों के वहन होने से भी उसका अवधूती में प्रवेश नहीं होता इसीलिए मरण हुआ करता है॥

इति श्रीनरोपापादविरचितायां कालचक्रतन्त्रस्य
सेकोद्देशटीकायामरिष्टप्रकरणं समाप्तम्।

अरिष्ट प्रकरण पूरा हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ पञ्चममानन्दप्रकरणम्
आनन्दप्रकरण

सर्वारिष्टवञ्चनोपायव्याजेनानन्दान् अरिष्टेत्यादिनोद्दिश्य निर्दिशति शुक्रेत्यादिना।

सर्वारिष्टों को हटाने के उद्देश्य से आनन्दों का उल्लेख करके निम्न श्लोकों द्वारा आनन्द का वर्णन कर रहे हैं –

शुक्रागमनमानन्दमुष्णीषादूर्णापङ्कजे ।
कण्ठे हृदि परमानन्दं विरमानन्दं ततो भवेत्॥ १॥

शुक्र का आगमन ही आनन्द है जो शुक्र सहस्त्रार चक्र में समाविष्ट हो जाता है, और कण्ठ में, हृदय में परमानन्द और विरजानन्द क्रमशः हो जाते हैं॥

विविधं रमणं नाभौ गुह्यपद्मे यदागतम्।
गुह्याद्वज्रमणिं यावत् सहजानन्दमच्युतम्॥ २॥

नाभि में विविध आनन्द का उदय होता है। गुह्यपद्म में जब वह आ जाता है वहाँ भी आनन्द और गुह्य से वज्रमणि तक जाने से अच्युत सहजानन्द का उदय हो जाता है॥

अप्रतिष्ठितनिर्वाणं महारागो ऽक्षरः प्रभुः।
विरागाद्यच्च्युतं सौख्यं तन्निर्वाणं प्रतिष्ठितम्॥ ३॥

वहीं पर अप्रतिष्ठित निर्वाण उपलब्ध हो जाता है, वही महाराग, अक्षर प्रभु है। विराग से अच्युत प्राप्त हो जाता है वही परम सुख निर्वाण प्रतिष्ठित है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चतुर्दलोष्णीषपद्ममध्यात् षोडशदलललाटाब्जमध्ये शुक्रस्य नन्दा-भद्राजयारिक्तापूर्णाख्यपञ्चकलस्यागमनम् उभयव्याप्तिः प्रथमानन्दम्। तस्मात् कण्ठे हृदि परमानन्दम् इति। द्वात्रिंशद्दलकण्ठाब्जादष्टदलहृत्पद्मे पूर्ववद्व्याप्तिः परमानन्दम्। विरमानन्दं ततो भवेद् इति। चतुःषष्टि-दलनाभिपद्माद् द्वात्रिंशद्दलगुह्याब्जे व्याप्तिर् विरमानन्दम्। तच्च विविधरमणं गाढालिङ्गनशीत्कारकण्ठकूजनादिलक्षणं नाभौ गुह्ये तु बहिरुल्लेखविमुखं सुखं भुज्यते मयेत्युल्लेखलक्षितं सुखसंवेदनमात्रं विरमानन्दपर्यन्तजम्। न तु विगतरमणं सुखम्। ततो गुह्यपद्मादष्टदलवज्रमण्यन्तर्गताब्जं यावत् षोडशकलस्येन्दोरागमनं सहजानन्दम्। धारणाया बलेन बाह्यगतेरभावाद् अच्युतम्। विरागाद् रागविगमादुष्णीषस्थं यत् सौख्यं शुक्रं तत् प्रतिष्ठितम्। यत् तु वज्रमणेश् च्युतं तन्निर्वाणम्। अयं तु सुखराज उष्णीषवज्र-मण्यन्तरालव्यापित्वाद् अप्रतिष्ठितनिर्वाणः। अत एव महारागोऽक्षरश् च प्राधान्यात् प्रभुस् त्रैधातुकेश्वरः। सर्वेषां तत्पदावाप्तिवाञ्छयाभिमतत्वात्।

चतुर्दल उष्णीष पद्म के मध्य से षोडश दल ललाट कमल में शुक्र की नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, पूर्णा नामक पञ्च कला का आगमन ही उभय व्याप्ति है वही प्रथम आनन्द है। उसके बाद कण्ठ में, हृदय में परम आनन्द की उपलब्धि होती है। ३२ दलवाले कण्ठ-कमल से अष्टदल हृदय कमल में पूर्व के तरह ही व्याप्ति है, वही परमानन्द है। उसके बाद विरमानन्द होता है। ६४ दलयुक्त नाभि कमल से ३२ दल गुह्य कमल में विरमानन्द व्याप्ति होती है। उसके बाद गाढ-आलिङ्गन शीत्कार आदि लक्षण नाभि में और गुह्य में बाहर उल्लेख के विपरीत सुख का उपभोग होता है इसीलिए यह सुख स्वसंवेदन मात्र होने से विरमानन्द पर्यन्त ही महासुख है। यह मृत्यु पर्यन्त नहीं है। उसके बाद गुह्य पद्माष्टदल वज्रमणि के अन्तर्गत कमल पर्यन्त षोडश कलाओं के चन्द्र का आगमन ही सहजानन्द है। धारणा के बल से बाह्यगति नहीं होती इसीलिए यह अच्युत है। रागरहित होने से सहस्रदल कमल में जो सौख्य है वह शुक्र की प्रतिष्ठा ही है उस स्थान पर, और जो वज्रमणि की च्युति ही निर्वाण कहा है - यह तो सुख उष्णीष वज्रमणि के अन्तराल व्यापी होने से अप्रतिष्ठित निर्वाण है। इसीलिए महाराग, अक्षर भी प्रधान होने से प्रभु और त्रैधातुकेश्वर कहलाता है। सभी लोग उसे प्राप्त करना चाहते है - इसीलिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शुक्रेन्दूदय उष्णीषे पूर्णा गुह्ये सरोरुहे।
कला षोडशमा या सा मणिपद्मे वज्रमूर्धगा॥ ४॥

शुक्र का उदय सहस्र कमल में होने पर गुप्त कमलदल में वह पूर्णता को प्राप्त होता है। वही षोडश कला है जो मणि कमल में वज्र के रूप में प्रतिष्ठित है॥

तदूर्ध्वं च्युतिकालः स्यात् कृष्णप्रतिपदागमे।
रविस्तूर्णापदं याति चामावस्यां विरागतः॥ ५॥
कला षोडशमा तस्य उष्णीषकमले गता।
नष्टचन्द्र इहाख्यातो विरक्ती रागसौख्यतः॥ ६॥

उसके ऊपर च्युतिकाल होगा जो कृष्णपक्ष के प्रतिपदा के अवसर पर साथ ही रवि उर्णापद सहस्र कमल में चला जाता है क्योंकि अमावस्या के रागरहित होने से षोडश कलायें सहस्त्रार कमल में चली जाती हैं और यहीं पर चन्द्र नष्ट हुआ है ऐसी प्रसिद्धि होती है राग सौख्य के कारण विरक्ति भी होती है॥ ८४-८५ ॥

२- शुक्रम् एवेन्दुर् अमृतत्वात्। तस्य शुक्रेन्दोरुष्णीष उदयः शुक्रप्रति-पद्यावद् गुह्ये तृतीया पूर्णा। इत्थमानन्दादिभेदेन त्रिपूर्णां गते बोधिचित्ते तु गुह्ये विरमानन्दाद् या षोडशी कला सा मणिपद्मे वज्रमूर्धगा वज्राग्रकोटिस्था भवति। तस्माद् ऊर्ध्वं कृष्णप्रतिपदागमे विरागप्रवेशकाले च्युतिकालः स्यात्। च्युतिकाल एव कृष्णप्रतिपद् इत्यर्थः। सा च रागनाशात् कृष्णपक्षे रजोरूपरवेराद्या कला मण्यग्रे। ततो विरागतो रविरूर्णापदं ललाटं याति। ललाटे ऽमावसीत्यर्थः। तस्य सूर्यस्य षोडशी कलोष्णीषकमले गता सैव नष्टचन्द्र इत्याख्यातः। सूर्येण रजोरूपेणाच्छादितत्वात्। रागसौख्याद्विरक्तिश् च सैव।

२- शुक्र ही चन्द्र है क्योंकि उसमें अमृत है। जैसे शुक्ल के प्रतिपदा में उसका उदय होता है उसी प्रकार गुह्य में वह पूर्ण होता है। इस प्रकार के आनन्द आदि के भेद से त्रिपूर्ण होने पर, बोधिचित्त के गुह्य में विरमानन्द के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कारण जो षोडशी कला है वह मणिपद्म में वज्रमूर्धगत होकर वज्र के अग्रभाग में अवस्थित होती है। उसके ऊपर कृष्ण प्रतिपदा के आगमन पर च्युति काल होता है। च्युतिकाल ही कृष्ण की प्रतिपदा है। वह भी राग के नष्ट होने पर कृष्ण पक्ष में रजोरूप रवि की प्रथम कला मणि के अग्र में होती है। उसके बाद वैराग्य से सूर्य भी उर्णापद अर्थात् ललाट में चला जाता है। ललाट में ही अमावस्या है। सूर्य के रजोरूप से आच्छादित होने से वह चन्द्र वहाँ पर नष्ट हो गया ऐसा कहा गया है।

अधश्चन्द्रामृतं याति मरणे सर्वदेहिनाम्।
ऊर्ध्वे सूर्यरजो राहुविज्ञानं भावलक्षणे॥ ७॥

चन्द्र का अमृत नीचे की ओर चला जाता है तब सभी प्राणियों की मृत्यु होती है। ऊर्ध्व में सूर्यरज राहुविज्ञान भाव लक्षण में चला जाता है॥

अधश्चन्द्रामृतं यातीति। मरणे मरणकाले सर्वदेहिनां देवासुर-मनुष्यादीनां चन्द्रामृतं बोधिचित्तमुक्तक्रमेणाधः शुक्रमार्गेण याति च्युतिरागाभ्यासात्। तथा सूर्यरज ऊर्ध्वं याति। राहुर् ज्ञानमविद्यावासना-सहायं प्राणसंवलितं विज्ञानं भावलक्षणं शुभाशुभकर्मनिर्मितं जन्म याति।

मरणकाल में सभी प्राणियों का देवासुर मनुष्य आदियों का बोधिचित्तमुक्तक्रम से चन्द्रामृत शुक्रमार्ग से नीचे की ओर जाता है क्योंकि वहाँ पर च्युति का अभ्यास हुआ करता है। उसके बाद सूर्य तेज ऊपर जाता है। राहु नामक ज्ञान अविद्यावासना का सहाय प्राण संवलित होकर विज्ञान जो भावलक्षण है वह शुभ और अशुभ कर्म का निमित्त होकर जन्म ग्रहण करने के लिए उद्यत होता है।

अतश्चन्द्रामृतस्योर्ध्वे कर्तव्यं गमनं नृप।
अधोऽर्करजसो राहुविज्ञानस्याक्षरे सुखे॥ ८॥

इसीलिए चन्द्रामृत के ऊर्ध्व में गमन करना चाहिए। नीचे सूर्य रज रूपी राहु है, विज्ञान के अक्षर में परम सुख उपलब्ध होता है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यत एवम् अतः कारणाच् चन्द्रामृतस्य शुक्रधातोर् ऊर्ध्वं उपरिगमनम् उक्तमार्गभावनयाधो ऽर्करजसो गमनं राहुलक्षणस्य विज्ञानस्याक्षरे सुखे गमनं कर्तव्यम्।

इसी कारण से चन्द्रामृत का शुक्रधातु से ऊर्ध्व में गमन ही उपर्युक्त मार्ग की भावना द्वारा ऊपर आकाश में गमन करना चाहिए। वही खेचरी है।

एतच्च भगवतापि पूर्वमाचरितमित्यादि दर्शयति –

यह भगवान् ने भी पहले किया था, यह दिखा रहे हैं –

ऊर्णाब्जे सर्वबुद्धानां चन्द्रामृतस्य पूर्णिमा।
अमार्करजसो गुह्ये कलोष्णीषे मणौ तयोः॥ ९॥

सभी बुद्धों का सहस्रदल कमल में या ललाट में चन्द्रामृत की पूर्णिमा थी, सूर्यरज के कारण वहाँ पर अमावस्या हो गयी थी दोनों का कला का उष्णीष में और नाभि में पूर्णता हुई थी॥

इति वज्रपदं शास्तुर्विपरीतं सर्वदेहिनाम्।
अप्रतिष्ठितनिर्वाणाद्विपरीतं यान्ति धातवः॥ १०॥

यह वज्रपद शास्ता का है और प्राणियों के वासना से विपरीत ही है। अप्रतिष्ठित निर्वाण से विपरीत भी है और धातुगण उसी की ओर जा रहे हैं॥

ऊर्णेत्यादि। बुद्धानां तु चन्द्रामृतस्य पूर्णिमा पञ्चदशकलापरिपूर्णत्वम् ऊर्णाब्जे ललाटे भवति। अर्करजसो ऽमावसी गुह्ये भवति। तयोश् चन्द्रार्कयोः षोडशी कला यथाक्रमेणोष्णीषे च वज्रमणौ च बुद्धानामिति। तदुक्तं नामसङ्गीत्याम्–

बुद्धों के लिए चन्द्रामृत की पूर्णिमा पञ्चदश कलाओं की पूर्णता से ललाट में चन्द्रोदय होता है। सूर्यरजों की अमावस्या गुह्य में ही है। उसके बाद चन्द्र और सूर्य की षोडशी कला क्रमशः शिर में और मणि (नाभि) में होती है बुद्धों का, यही नामसंगीति में कहा है –

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एकपादतलाक्रान्तमहीमण्डतले स्थितः।
ब्रह्माण्डशिखराक्रान्तः पादाङ्गुष्ठनखे स्थितः॥ इति।

इत्युक्तं वज्रपदम्। यही वज्रपद कहा गया है।

पद्यते गम्यते येन तत् पदं ज्ञानमक्षरम्।
पदस्याराधनं नित्यं शिरसा पादवन्दना॥ इति ।

जिससे पहुँचा जाता है औरकालचक्रतन्त्रम्184द्वितीयं दीक्षाप्रकरणम्184 जाया जाता है वही पद है और ज्ञान वही है साथ ही अक्षर भी वही है। नित्य ही पद की आराधना करनी चाहिए साथ ही शिर से पाद की वन्दना करनी चाहिए।

अभेद्यज्ञानं शास्तुः। सर्वदेहिनाम् इति सर्वसंसारिणां विपरीतम् अप्रतिष्ठितम्। तस्माद् अप्रतिष्ठितनिर्वाणाख्यमहासुखसंज्ञकशुद्धकायाद् धातवः पृथिव्यादयो विपरीतं निरावरणतां यान्ति। अन्ये ते धातवोऽभेद्याः।

अभेद्य ज्ञान शास्ता का ही है। सभी देहधारियों का ज्ञान प्रतिष्ठित नहीं है। अतः अप्रतिष्ठित निर्वाण नामक महासुख नामक शुद्ध काय से धातुगण पृथिवी आदि विपरीत रूप से आवरण रहित हो जाते हैं। अन्य धातु अभेद्य हैं।

धारणाबलेन स्वरसप्रवृत्तायाश्चण्डाल्या ज्वालाया आनन्दादिभेदेन शिरसोऽवलम्बितानां कायवाक्चित्तज्ञानबिन्दूनामूर्ध्वे क्रमेण बहिर्निर्गमा-भावादक्षरसुखपूरितानां चतुःकायविशुद्धिमाह -

धारणा के बल से स्वभावत प्रवृत्त चाण्डाली के ज्वाला की आनन्द आदि भेदों से शिर में अवलम्बित काय, वाक्, चित्त, ज्ञान बिन्दुओं के ऊपर क्रमशः बाहर निर्गम के अभाव के कारण अक्षर सुखों से आपूरित चार कायों के शुद्धियों को बता रहे हैं–

मणौ चित्तं च गुह्ये वाक्कायो नाभौ महासुखात्।
धर्मसम्भोगनिर्माणाः शुद्धकायात् स्फुरन्त्यमी॥ ११॥

मणि में चित्त, गुह्य में वाक्, नाभि में काय महान् सुख से होते हैं साथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही धर्मकाय, सम्भोगकाय और निर्माण काय से सब शुद्धकाय से प्रस्फुटित होते हैं॥

मणाव् इत्यादि। महासुखाद् इति। महासुखसंज्ञकशुद्धकायाद्विपरीतेन यः कायबिन्दुः स तुर्यावस्थाक्षयतः शुद्धकायः। स च वज्राग्रे स्थितः। तस्मान् मणौ चित्तं सुषुप्तक्षयतः। गुह्ये वाक् स्वप्नक्षयतः। नाभौ कायो जाग्रदवस्थाक्षयत इति। एते च धर्मसम्भोगनिर्माणकायाः शुद्धकायात् स्फुरन्ति।

महासुख नामक शुद्धकाय से विपरीत जो काय है वही बिन्दु है वह तुर्यावस्था के क्षय होने से शुद्ध कहा गया है। वह भी वज्र के अग्र में स्थित है। उससे मणि में चित्त स्थिर हो जाता है सुषुप्ति के क्षय के कारण। स्वप्न के क्षय होने से गुह्य में वाक् है। जाग्रत् के क्षय से नाभि में काय है।

अधोपायस्य राजेन्द्र प्रज्ञाया ऊर्ध्वतो भवेत्।
ललाटे कायवज्रमस्या ग्रीवहृन्नाभिपङ्कजे॥ १२॥
वाक्चित्तज्ञानवज्राणि निर्माणाद्यात् स्फरन्त्यमी।
स्फरणं स्कन्धधातूनां निरावरणतः सुखात्॥ १३॥

नीचे का जो उपाय है उसका कारण ऊर्ध्वगामी प्रज्ञा ही है। ललाट में इसका कायवज्र है जो ग्रीवा, हृदय और नाभि पद्म में अवस्थित होता है।

निर्माण काय से वाक्, चित्त और ज्ञानवज्र उत्पन्न होते हैं। निरावरणात्मक सुख से स्कन्ध एवं धातुओं का स्फरण - अर्थात् प्रकाशन होता है॥

अधोपायस्येति। अधो वज्राग्राद्यत् स्फरणमेतेषां धर्मकायादीनां तद् उपायभागस्य व्यवस्थाप्यते। प्रज्ञायाः पुनर् ऊर्ध्वतो भवेत्। तद्दर्शयति ललाट इत्यादि। अस्याः प्रज्ञाया निर्माणाख्यः कायो ललाटे पूर्ववद्विपरीते-नैवं कण्ठे हृन्नाभिपङ्कजे यथाक्रमेण वाक्चित्तज्ञानवज्राणि सम्भोगधर्म-सहजकायाः प्रज्ञाभागस्य व्यवस्थाप्यन्ते। एवं प्रज्ञोपायात्मकवज्रसत्त्वकायात् स्कन्धादीनां वैरोचनादिस्वरूपत्वेन सत्त्वार्थाय स्फरणम्। एतेनार्थगत्या-नुस्मृत्यङ्गमुद्दिष्टमिति॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वज्र के अग्र भाग से जो स्फरण कहा गया है वह उपायरूप है। इस प्रकार प्रज्ञा, उपाय स्वरूप व वज्रसत्त्व काय से स्कन्ध-धातु आदि का वैरोचन आदि स्वरूप में प्राणियों के हित के लिए प्रकाश - स्फरण होता है। इसी से अर्थ, गति, अनुस्मृति आदि अङ्गों का वर्णन किया गया है।

इति श्रीनारोपापादविरचितायां कालचक्रतन्त्रस्य
सेकोद्देशटीकायामानन्दप्रकरणं समाप्तम्।

आनन्दप्रकरण पूरा हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ षष्ठं मुद्राप्रकरणम्
मुद्राप्रकरण

फलमुद्दिश्य तत्साधनमाह फल का उल्लेख करके उसका साधन बता रहे हैं -

कर्ममुद्रासमापत्त्या ज्ञानमुद्रावलम्बनैः।
महामुद्रैकयोगेन वृद्धिं याति तदक्षरम्॥ १ ॥

कर्ममुद्रा के योग, ज्ञानमुद्रा का अवलम्बन और महामुद्रा के सहयोग द्वारा उस अक्षर सुख में वृद्धि होती है॥

कर्ममुद्रेत्यादि। कर्ममुद्रा स्तनकेशवती कामधातुसुखस्य हेतुः। कर्म चुम्बनालिङ्गनगुह्यस्पर्शवज्रास्फालनादिव्यापारात्मकम्। तेनोपरक्षिता मुद्रा प्रत्ययकारिणी। प्रत्ययो ऽत्र क्षरसुखलक्षणः। मुदं सुखविशेषं राति ददातीति मुद्रा। ज्ञानमुद्रा स्वचित्तपरिकल्पिता विश्वमातादिदेवीस्वभावा पूर्वानुभुक्तेति यावत्। रूपधातुसुखस्य हेतुः। ज्ञानं पूर्वहसितरमितभावादिभावनालक्षणम्। प्रत्ययो ऽत्र स्पन्दसुखलक्षणः। महती चासौ मुद्रा च महामुद्रा। महत्त्वं पुनरस्याः सर्वाकारवरोपेतत्वं न प्रादेशिकत्वम्। मुद्रचते ऽनेन बोधिचित्त-वज्रेणेति मुद्रा। प्रत्ययो ऽत्र स्वचित्तपरिकल्पनाधर्मरहितो धूमादिनिमित्त-पूर्वकः स्वचित्तप्रतिभासो योगिगम्यः प्रतिसेवावदिति। फलरूपा महामुद्रा मुदं परमाक्षरसुखज्ञानलक्षणं राति सर्वकालमादत्ते पूर्णावस्थाया अचल-नयोगेनेति मुद्रा। महत्त्वं चास्याः प्रहाणमहत्त्वेनाधिगममहत्त्वेन च। तत्र प्रहाणमहत्त्वं सवासनसर्वावरणप्रहाणलक्षणस्वाभाविकाख्यप्रभास्वर-साक्षात्करणलक्षणम्। अधिगममहत्त्वं तु परिशुद्धसर्वबुद्धात्मकयुग-नद्धाख्यधर्मकायसाक्षात्कारस्वभावम्। यत् पुनस् तमस्तुहिनाद्यखिल-मलापगतगगनसन्निभशून्यैकरसप्रभास्वरसाक्षात्कार एव सकलबुद्ध-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धर्माधिगमः। अशेषविश्वार्थसम्पादनशक्तिरूपेण तत्र सर्वबुद्धधर्माणां विद्यमानत्वात्। अत एव धर्माणामाश्रयः कायो धर्मकाय इत्याचक्षते। तत्र चाप्रतिभासने ऽप्यवगमव्यवस्थायां, घटप्रतिभासे पटाद्यधिगमप्रसङ्गो दुर्निवारः। किं च सांख्यदर्शनमदूषणमेव स्यात्। अपि च मायास्वप्नगन्धर्व-पुरप्रतिसेनादिवत्कल्पितमशेषस्कन्धधात्वायतनादिदर्शनं संवृतिसत्यदर्शनं स्वाधिष्ठानं चोच्यते। संवृतिसत्यमेव च परमार्थसत्यात्मकप्रभास्वर-परिशुद्धमादर्शज्ञानादिरूपवैरोचनाद्याधेयदेवतावृन्दं कूटागाराद्याधारमण्डलं च। तदेव लोकोत्तरमण्डलतया सर्वतन्त्रराजेषु गीयते समस्तबुद्धधर्म-स्वभावतया च। एतदेव च सत्यद्वयाद्वैधीभावस्वभावं युगनद्धाख्यमुच्यते। तस्माद्युगनद्धकाय एव धर्मकायः साम्भोगिकस्वाभाविकाभ्यां पृथग्भूतो योगिप्रत्यात्मवेद्यः। उक्तं चार्यमञ्जुश्रीपादैस्तन्त्रोत्तरे–

कर्ममुद्रा का अर्थ स्तन केशवाली स्त्री जो कामधातु के सुख का कारण होती है। यहाँ कर्म से चुम्बन, आलिङ्गन, गुह्यस्पर्श आदि व्यापार परिगृहीत होते हैं। इनसे संयुक्तमुद्रा ही सुखदायिनी है। मुद्रा का अर्थ है विशेष सुख को देने से - मुद = विशेषसुख राति = ददाति = देना, इसीलिए मुद्रा कहा है। स्वचित्त के द्वारा परिकल्पित, विश्वमातादि देवीस्वभावयुक्त जो पहले ही अनुभूत है वही ज्ञान मुद्रा है। सांसारिक सुख का कारक। ज्ञान - पहले अप्रयुक्त हँसना, खेलना आदि भाव है। वही मुद्रा ही महामुद्रा है। बोधिचित्त वज्र के द्वारा आमुद्रित - गृहीत होने से भी मुद्रा है। प्रत्यय का अर्थ - स्वचित्त परिकल्पित धर्मरहित, धूमादिनिमित्तपूर्वक, स्वचित्त प्रतिभास और योगियों से गम्य ही है। फलरूप महामुद्रा - परमाक्षर सुखज्ञान ही मुद है, और सदैव पूर्णावस्था का बोध कराने से ही है, इस प्रकार अचल आनन्द में स्थित होना ही मुद्रा है। त्याग और प्राप्ति ही इसका महत्त्व है। समग्र वासनाओं का त्याग और अक्षरसुख की प्राप्ति ही है।

अधिगम महत्त्व - सर्वशुद्ध सर्वबुद्धात्मकयुगनद्ध - धर्मकाय साक्षात्कार स्वभाव ही अधिगम महत्त्व है।

समस्त अज्ञानरूपमलों के अवगत होने से आकाश सदृश निर्मल शून्य एकरस प्रभास्वर का साक्षात्कार ही सकल बुद्धधर्म का सार है। समग्र संसार के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए ही बुद्धधर्म की स्थिति है। इसीलिए धर्मों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का आश्रय काय ही धर्मकाय कहा गया है। उसमें यदि वह काय प्रतिभासित नहीं होता है तो साङ्ख्य दर्शन आदि दूषित नहीं होते। और भी माया-स्वप्न-गन्धर्वपुर-प्रतिसेना के तरह कल्पित होकर अशेष स्कन्ध-धातु-आयतन आदि दर्शन ही संवृति सत्य दर्शन है जिसे स्वाधिष्ठान कहा जाता है। वही संवृति सत्य ही परमार्थ सत्यात्मक प्रभास्वर परिशुद्ध आदर्श ज्ञानादिरूप वैरोचन आदि आधेय देवतावृन्द और कूटागारादि आधार मण्डल भी है। वही लोकोत्तर मण्डल के रूप में सभी तन्त्रराजों में गाया जाता है और समस्त बुद्धधर्म स्वभाव के रूप में भी। यही सत्य द्वय का द्वैधीभाव स्वभाव है जिसे युगनद्ध कहा जाता है। इसीलिए युगनद्ध काय ही धर्मकाय है - संभोगकाय और स्वाभाविक कायों से अलग है जिसे योगिगण साक्षात्कार करते हैं।

आर्य मञ्जुश्री ने उत्तर तन्त्र में कहा है -

यत्रोद्भूतो ऽस्ति सत्यं सितकुशलगणो धर्मकायो जिनानां
धर्मात् सम्भोगकायः सकलरुतगणो लक्षणव्यञ्जनानाम्।
राशिर्निर्माणकायो ऽक्षरपरमसुखो धर्मकायो न तस्मात्
कायानां लक्षणं यत् तदिह सुखगताचार्यनागाह्वयेन॥

जहाँ समग्र स्वच्छ कुशलगण उपस्थित और प्रतीत होते हैं वहीं जिन भगवान् का धर्मकाय है। उसी धर्मकाय से संभोग का उद्भव हुआ है। जिसमें समग्र उपदिष्ट धर्म लक्षणा व्यञ्जना सहित प्रतीत हुए हैं। अक्षर, परमसुख की खानि ही वह धर्मकाय है इसीलिए कायों का लक्षण आचार्य नागार्जुन ने नहीं कहा है क्योंकि वे शरीर समग्र सुखों के आश्रयभूत हैं।

यो नैको नाप्यनेकः स्वपरहितमहासम्पदाधारभूतो
नैवाभावो न भावः खमिव समरसो दुर्विभाव्यस्वभावः।
निर्लेपं निर्विकारं शिवमसमसमं व्यापिनं निष्प्रपञ्चं
वन्दे प्रत्यात्मवेद्यं तमहमनुपमं धर्मकायं जिनानाम्॥

यह धर्मकाय न एक है न ही अनेक है, स्वार्थ सम्पत् और परा सम्पत् का आधारभूत है। न भावस्वरूप है न अभाव स्वरूप ही है और आकाश के तरह समरस है। इस काय का स्वभाव अगम्य अबोध्य है। ऐसे निर्लेप,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निर्विकार, शिवस्वरूप, समान और असमान निष्प्रपञ्च तथा व्यापक, प्रत्यात्मवेद्य, समग्र उपमाओं से रहित, जिनों के धर्मकाय को नमस्कार करता हूँ।

लोकातीतामचिन्त्यां सुकृतशतफलामात्मनो यो विभूतिं
पर्षन्मध्ये विचित्रां प्रथयति महतीं धीमतां प्रीतिहेतोः।
बुद्धानां सर्वलोकप्रसृतमविरतोदारसद्धर्मघोषं
वन्दे सम्भोगकायं तमहमिह महाधर्मराज्यप्रतिष्ठम्॥

लोकातीत, अचिन्त्य, अनन्तसुकृत फलों की विभूति, परिषद् में विचित्र, जो विद्वानों को भी आनन्दित करते हुए विराजमान होता है, सर्वलोक में व्यापकरूप से स्थित, उदार सद्धर्म का घोषरूप, धर्मराज्य की प्रतिष्ठा स्वरूप भगवान् के संभोगकाय को नमस्कार करता हूँ।

सत्त्वानां पाकहेतोः क्वचिदनल इवाभाति यो दीप्यमानः
सम्बोधौ धर्मचक्रे क्वचिदपि च पुनर्दृश्यते यः प्रशान्तः।
नैकाकारप्रवृत्तं त्रिभवभयहरं विश्वरूपैरुपायैर्
वन्दे निर्माणकायं दशदिगनुगतं तन्महार्थं मुनीनाम्॥

कहीं कहीं प्राणियों के कर्मों को पकाने के लिए अग्नि के तरह जाज्वल्यमान होकर दिखता है। सम्बोधि के अवस्था में तथा धर्मचक्र प्रवर्तन के अवसर पर जो काय शान्त-गंभीर रूप में दिखाई देता है। विश्वरूप अनन्त उपायों से युक्त, अनेक प्रकार से प्रवृत्त, तीनों तापों और लोकों के दुखों का नाशक, दशों दिशाओं में फैला हुआ, महान् अर्थ को सिद्ध करने वाले महामुनि के इस निर्माणकाय को मैं नमस्कार करता हूँ।

त्रैलोक्याचारमुक्तं गगनसमगतं सर्वभावस्वभावं
शुद्धं शान्तं विविक्तं परमशिवमयं योगिनामेव गम्यम्।
दुर्बोधं दुर्विचारं स्वपरहिततमं व्यापिनं निर्निमित्तं
वन्दे कायं जिनानां सुखमसमसमं निर्विकल्पैकमूर्तिम्॥

तीनो लोकों के आचार व्यवहार से दूर में स्थित, आकाश सदृश व्यापक, समग्र पदार्थों के स्वभावयुक्त, शुद्ध, शान्त, एकाग्र, परमआनन्दमय, योगियों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के द्वारा मात्र बोध्य, दुर्बोध, दुर्विचार, स्वहित, और परहित में निमग्न, व्यापक, निमित्तरहित, निर्विकल्प-एकमूर्ति, समस्त सुखों के आधारभूत भगवान् के काय को नमस्कार करता हूँ।

जिता मे पापका धर्मास् तेनोपगजिनो ह्यहम् इति वचनाद्विजित-चतुर्मारत्वाज्जिनाः सम्यक्सम्बुद्धाः। तेषां सुखं कायं वन्दे महासुखसञ्ज्ञक-माकाशवत् सर्वावरणरहितत्वेन प्रभास्वरम्। परमाक्षरसुखज्ञानलक्षणं चतुर्थं कायं नमस्करोमीत्यर्थः। असमसममिति। निष्यन्दादिक्रमेण प्रकर्षपर्यन्त-प्राप्तवैमल्यफलरूपत्वादसममसाधारणं श्रावकप्रत्येकबुद्धबोधिसत्त्व-सुखैः। सर्वधर्मैकरसत्वात् समम्। त्रैलोक्याचारमुक्तमिति। त्रैलोक्याचारो हसितेक्षणादिलक्षणं सुखम्। तेन मुक्तं परित्यक्तम्। अन्यथा दिव्यमपि सुखं तत्त्वं भवेत्। उक्तं मूलतन्त्रे–

सारे पापपूर्ण कृत्यों पर मैंने विजय पा लिया है इसीलिए मैं जिन - बुद्धत्व के समीप में हूँ इस वचन के द्वारा चार मारों को जितने से ही जिन कहलाते हैं बुद्ध भगवान्। उनके सुखकाय को नमस्कार करता हूँ क्योंकि महासुख नामक आकाश के सदृश सर्वआवरण न होने से प्रभास्वर हैं। अक्षरात्मक परमसुख का कारण चौथे काय को नमस्कार करता हूँ यह अर्थ है।

निष्यन्द आदि क्रम से प्रकर्ष–अन्तिम तक प्राप्त अति विमल फलरूप होने से असमम् - असाधारण कहा है - क्योंकि यह श्रावक - प्रत्येक बुद्ध - बोधिसत्त्वों के सुखों के समान नहीं है। सर्वधर्मों में एक रस होने से भी समम् कहा है। तीनों लोकों का आचरण हँसना, खाना–पीना आदि से युक्त भी है। अन्यथा दिव्य सुख भी सामान्य लौकिक हो जाएगा। मूल तन्त्र में कहा है -

सुखं द्वीन्द्रियजं तत्त्वं देवानां रागिणां स्मृतम्।
त्रैलोक्याचारनिर्मुक्तं बुद्धानां सुखमक्षरम्॥

दो इन्द्रियों से उत्पन्न सुख को सामान्य सुख कहा जाता है, जो रागी और देवताओं के लिए समान कहा गया है किन्तु त्रैलोक्य के आचरण से मुक्त बुद्धों का सुख अक्षर है। लोकोत्तर है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हसितेक्षणादिनिर्मुक्तं सर्वद्वन्द्वविवर्जितम्।
कार्यकारणनिर्मुक्तं त्रैलोक्याभासमद्वयम्॥

हँसना, देखना, खाना, पीना आदि से निर्मुक्त, सर्वद्वन्द्वों से रहित और कार्य तथा कारण से मुक्त, त्रैलोक्य में भासित न होने वाला अद्वय सुख बुद्धों का होता है।

हसितेक्षणपाण्याप्त्यालिङ्गनद्वन्द्वसम्भवैर्लोकाचारसुखैः स्पन्दैर्वर्जितं परमाक्षरमिति। गगनसमगतमिति। गगनेन समा सदृशी गतिरवबोधो यस्य स तथा। यथा गगनं व्यापित्वेन सर्वगतमपि न क्वचिद्वस्तुनि संसक्तं लक्षणवर्जितं च तथा भगवतो ऽपि निःशेषज्ञेयविषयमपि ज्ञानं न कस्मिंश्चिद् धर्मे प्रतिष्ठितं लक्षणवर्जितं चेत्यर्थः। यथोक्तमागमे –

हँसना, देखना, सामग्री लेना, देना, आलिङ्गन आदि द्वन्द्वों से उत्पन्न होने से सांसारिक सुखों के स्पर्श से सुदूर बुद्ध का सुख है। आकाश के सदृश गति अर्थात् बोध होने से, जैसे आकाश सर्वत्र होते हुए भी किसी भी पदार्थ के साथ लगा हुआ नहीं होता यद्यपि सभी के साथ-साथ दिखता है उसी प्रकार भगवान् भी सर्वत्र व्यापक होते हुए भी उनका धर्म किसी के साथ भी प्रतिष्ठित नहीं है साथ ही समग्र लक्षणों से रहित भी है। जैसा कि आगम में कहा है –

अनिश्रितेन ज्ञानेन सर्वक्षेत्राणि पश्यसि।
सर्वसत्त्वचरीं चैव निरालम्ब नमोऽस्तु ते॥

आधार रहित (अप्रतिष्ठित) ज्ञान के द्वारा समग्र क्षेत्रों को आप देखते हैं, समग्र प्राणी में आप व्याप्त हैं, ऐसे हे निरालम्ब! आपको नमस्कार है।

ज्ञानसिद्धाविन्द्रभूतिपादैश्च ज्ञानसिद्धि में इन्द्रविभूतिपाद भी कहते हैं –

अप्रतिष्ठं यथाकाशं व्यापि लक्षणवर्जितम्।
तद्वत् तत् परमं तत्त्वं वज्रज्ञानमनुत्तरम्॥ इति।

आपका ज्ञान अप्रतिष्ठित है और व्यापक है जैसा कि आकाश। उसी प्रकार वह परम तत्त्व भी है जो अनुत्तर वज्रज्ञान है।

अन्यत्र च अन्यत्र भी कहा गया है –

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अप्रतिष्ठं यथाकाशं व्यापि लक्षणवर्जितम्।
अनिर्देश्यमरूपं च एतत् तत्त्वस्य लक्षणम्॥ इति।

अप्रतिष्ठित जैसा कि आकाश – व्यापक एवं लक्षणहीन है, उसी प्रकार आपका स्वरूप अनिर्देश्य, अरूप है यही तत्त्व का लक्षण है।

अथवा गगनेन समा गतिरवस्थास्येति गगनसमगतिः। महासुखकायो वर्णसंस्थानरहितत्वाद् गगनवद् सर्वाभासरहित इत्यर्थः। उक्तं च –

अथवा आकाश के समान है गति जिसकी वही गगनसमगति है। महासुखकाय जो वर्ण संस्थानों से रहित है इसीलिए आकाश जैसा है जो समग्र आभासों से भी रहित है। कहा भी है –

सर्वबुद्धेषु यः कायो निराभासो निराश्रयः।
अजातो ऽकृतकः शुद्धो भावाभावादिवर्जितः॥ इति।

सभी बुद्धों का जो काय है वह निराभास एवं निराश्रय है। साथ ही अजात, अनिर्मल, शुद्ध एवं भावाभाव रहित भी है।

श्रीतन्त्रे श्रीतन्त्र में भी कहा है –

स्फटिकमणिरिव ज्ञानवज्रं जिनस्य॥ इति।

भगवान् का ज्ञानवज्र स्फटिकमणि के तरह ही स्वच्छ हुआ करता है।

चन्द्रगोमिपादैश्च आचार्य चन्द्रगोमि ने भी कहा है –

यद्विशुद्धमिवाकाशमज्ञानतिमिराकुलैः।
चन्द्रकैरिव सञ्छन्नं वस्तुभिर्वेद्यते जिनैः॥ इति।

जो अत्यन्त शुद्ध है, आकाश के तरह ही निर्लेप है, तिमिरों के द्वारा अनाच्छादित है क्योंकि ज्ञान चन्द्र का उदय होने से, ऐसे भगवान् को ज्ञान के द्वारा ही संसार जानता है।

सर्वभावस्वभावमिति। भवन्ति हेतुप्रत्ययेभ्यः सकाशादिति भावाः। स्कन्धधात्वायतनादिकायाः स्थिरचलाः पदार्थाः। सर्वे च ते ऽशेषत्रैधातुक-संगृहीता भावाश्च। तेषां स्वभावस्तदुत्पत्तितन्निष्ठत्वाभ्यां सत्तासत्तादिसर्व-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रपञ्चवर्जितमहासुखस्वभावतथतैकरूपत्वम्। उक्तं चार्यवज्रगर्भपादैर्- निर्विकल्पे मनसि नास्ति भावको न भाव्यो ऽस्ति मन्त्रं नास्ति न देवता। तिष्ठेते विद्येते चैव मन्त्रदेवौ निष्प्रपञ्चस्वभावतः। तेनैव सहजानन्दस्वभावेन प्रत्यस्तमितसकलविकल्पकलङ्करूपेणेति। चन्द्रगोमिपादैश्च–

हेतु प्रत्ययों के द्वारा उत्पन्न होने से ही भाव कहा गया है। स्कन्ध-धातु-आयतन आदि काय ही स्थिरचल पदार्थ हैं। वे सब अशेष त्रैधातु में संगृहीत हैं। वे अपने स्वभाव से ही उत्पन्न हैं, कारणों से निर्गत हैं, सत्ता और असत्ता आदि समग्र प्रपञ्चरहित होने से महासुख स्वभावयुक्त हैं। इसे ही आर्यवज्रगर्भपाद ने कहा भी है – निर्विकल्प मन में भावक और भाव्य भी नहीं है, न ही मन्त्र है न देवता ही है। मन्त्र और देवता निष्प्रपञ्च स्वभावयुक्त हैं। इसीलिए सहजानन्द स्वभाव के द्वारा प्रत्यस्तमित सकल विकल्प रहित होने से भी यह उत्तम है। चन्द्रगोमि ने भी कहा है –

तथता धर्मकायोऽस्य विकल्पानामगोचरः।
स्वभावः सर्वसत्त्वानां सर्वार्थानां च सोऽन्वयः॥
सत्त्वासत्त्वमनित्यत्वं ध्रौव्यं नानार्थमेकता।
शुद्धाशुद्धी च बोधिश्च सर्वमत्र प्रकल्पितम्॥

भगवान् का धर्मकाय तथता है जो समग्रविकल्पों से रहित है। यही सभी प्राणियों का स्वभाव है समग्र इच्छाओं का पूरक यही काय है। यहाँ पर सत्त्व, असत्त्व, नित्य अनित्य, ध्रुव, अध्रुव आदि नानार्थता और एकता, शुद्ध, अशुद्ध बोधि आदि सब कुछ इस काय में कल्पित होते हैं।

तरङ्गाणामिवाम्भोधौ छायानामिव दर्पणे।
स्वप्नानां मनसीवार्थे भावानां यत्र सम्भवः॥
यद्विशुद्धमिवाकाशमज्ञानतिमिराकुलैः।
चन्द्रकैरिव संछन्नं वस्तुभिर्वेद्यते जिनैः॥

जैसे समुद्र में तरङ्गों का, आइने में छाया का, मन में स्वप्नों के तरह ही पदार्थों की स्थिति इस काय में होती है। आकाश में जैसे विशुद्धि स्वतः है अज्ञान अन्धकार में चन्द्रमा के द्वारा प्रकाश होता है उसी प्रकार समग्र पदार्थों का प्रकाशन भगवान् के द्वारा होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मूर्तयो विश्वरूपस्य जगतस्तत्त्वरूपताम्।
यत्रैकरसतां यान्ति निम्नगा इव सागरे॥

समग्र जगत् की मूर्तियाँ जगत् को तत्त्व के रूप में हैं, वे सब एक रूप होकर भगवान् में समाहित होते हैं जैसे सारी नदियाँ समुद्र में समा जाती हैं।

सोऽयमेवंविधः कायो धर्मकायोऽस्य तायिनः।
सर्वाकारविशुद्धायाः सम्बोधेरेव गोचरः॥ इति।

यह, इस प्रकार का काय ही धर्मकाय है – तायी का – बुद्ध का, जो समग्र विशुद्ध आकार और सम्बोधि का आधार स्वरूप है। इति।

परिशुद्धसकलबुद्धधर्माणामाश्रयो हेतुः कायो धर्मकायः। शुद्धमिति क्लेशमलैरसंस्पृष्टम्। शान्तमित्यष्टादशधातुविकाररहितम्। उक्तं चार्यवज्रगर्भैः – स्वरूपेण नास्ति रूपमित्यादि। स्वरूपं स्वसंवेदकं तथागतज्ञानम्। तेन स्वरूपेण ग्राह्यग्रहणग्राहकाष्टादशधातुविकाररहितेन योगिनां बाह्यरूपं नास्ति न द्रष्टा न चक्षुर्विज्ञानम्। तथा न शब्दो न श्रोता न च श्रोत्रविज्ञानम्। एवं न गन्धो न घ्राता न च घ्राणविज्ञानम्। तथा न रसो नापि रासको न जिह्वाविज्ञानम्। एवं न स्पर्शो न स्प्रष्टा न कायविज्ञानम्। एवं न धर्मधातुर्न ग्राहको न मनोविज्ञानम् इति। एवमष्टादशधातुविकाररहितं तत्त्वरत्नं तत्त्वयोगिना भावनीयमिति। विविक्तमिति। ज्ञेयसमापत्त्याद्यावरणात् पृथग्भूतम्। अत एव सर्वोपद्रवविरहादत्यन्तकल्याणात्मकत्वेन कल्याण-हेतुत्वेन च परमशिवमयम्। योगिनामेव गम्यमिति। योगः षडङ्गयोगो लब्धोत्कर्षपर्यन्तः। स योगो येषामस्ति ते योगिनो महावज्रधरपद-प्राप्तास्तेषामेव गम्यम्। ततो नापरप्रत्ययाधिगमतया प्रत्यात्मवेद्यतामस्य प्रकाशयति। सादरनिरन्तरप्रवृत्तधूमादिमार्गभावनाप्रकर्षपर्यन्ताधिगम्यत्वाद् बालयोगिनां दुर्बोधम्। श्रुतचिन्तामयज्ञानेनातिशयितप्रत्ययात्मनामप्य-शक्यपरिच्छेदत्वाद्दुर्विचारम्। स्वपरहिततममिति। सवासनसर्वावरण-प्रहाणिलक्षणस्वार्थसम्पद्योगादेकान्तेन स्वहितं, विनेययथाशयं यथागोत्रं च तदधिष्ठानात् सम्भोगनिर्माणाभ्यां निःशेषपरार्थनिष्पत्तेरतीव परहितं चेत्यर्थः। प्रतिनियतदेशकालाभवाद् व्यापकं सर्वव्याप्येषु परचित्तादि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वस्तुष्विति व्यापिनम्। कर्मज्ञानमुद्राहेतुरहितत्वान्निर्निमित्तम्। ग्राह्यग्राहक-संस्थानकल्पनाद्वन्द्ववर्जितत्वान्निर्विकल्पा परमार्थसत्यैकरूपत्वादेका, अद्वितीया द्वितीयस्य संवृतिसत्यस्याभावादत्रेति निर्विकल्पैकमूर्तिः। आर्यपुण्डरीकपादैश्च–

परिशुद्ध सकल बुद्धधर्मों का आश्रय एवं कारणभूत काय ही धर्म काय है। क्लेशमलों से अस्पृष्ट होने से शुद्ध है। अठार धातुओं के विकार से रहित ही शान्त है। आर्यवज्रगर्भ ने भी यही कहा है – स्वरूप – स्वसंवेदक तथागत ज्ञान है। उस स्वरूप के कारण ग्राह्य-ग्राहक-अष्टादश धातुओं से रहित योगियों के लिए बाह्य स्वरूप नहीं है। द्रष्टा और चक्षुविज्ञान नहीं है। शब्द नहीं है, श्रोता और श्रोत्रविज्ञान भी नहीं है। इसी प्रकार गन्ध, रस, स्पर्श आदि भी नहीं हैं। इसी प्रकार न धर्मधातु, न ग्राहक, न मनोविज्ञान ही है। इस प्रकार अष्टादश धातु के विकारों से रहित तत्त्वरत्न को योगिद्वारा भावित करना चाहिए। ज्ञेय समापत्ति आवरण रहित विविक्त है। अतएव समग्र उपद्रवों से रहित होने से अत्यन्त कल्याण मय एवं परमशिवमय है। योगियों के द्वारा मात्र बोध्य भी है। योग षडङ्ग योग ही है। महावज्रपद प्राप्त ही योगी हैं जिसमें षडङ्गयोग है। प्रत्यात्मवेद्यों के द्वारा ही ज्ञेय है। बालयोगिगण जो धूमादिमार्ग भावना पर्यन्त जानने वाले हैं उनके लिए यह दुर्बोध्य है। श्रुतमयी, भावनामयी एवं चिन्तामयी भावनाओं के अतिशयता में इसे जान सकने के कारण भी यह दुर्विचार है। वासनायुक्त समग्र आवरणों का प्रहाणपूर्वक साधित स्वार्थसम्पत् का पूर्णरूप से अपने हित के लिए, विनेय जनों के आशय, गोत्रों के अनुरूप उनके कल्याण के लिए उसके अधिष्ठान रूप सम्भोग-निर्माण कायों से निःशेष परार्थ-निष्पत्ति का प्रयोग ही परहित है। प्रतिनियत देशकाल के न होने से समग्र व्याप्यों में व्यापक परचित्त आदि में स्थित पदार्थों में व्यापक होना ही है। कर्मज्ञान मुद्रा हेतु आदि रहित होने से निर्निमित्त है। ग्राह्य-ग्राहक-संस्थान-कल्पना द्वन्द्वरहित होने से निर्विकल्प है, जो परमार्थ सत्य – एक रूप होने से एक है। संवृतिसत्यरूप द्वितीय का अभाव होने से अद्वितीय है। और निर्विकल्पमूर्ति भी है। आर्यपुण्डरीक ने भी कहा है –

सर्वाकारवरोपेतः कायो नानाधिमुक्तितः।
दृश्यते स्वस्वभावेन सत्त्वैर्निर्माणलक्षणः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समग्र आकारों से पूर्ण यह काय है जो नानाअधिमुक्तिगुणों से पूर्ण भी है। अपने स्वभाव से इसे देखा जाता है जो प्राणियों के निर्माण लक्षण से भी व्याप्त है।

सर्वसत्त्वरुतैर्ऋद्धिमात्मनो यः प्रकाशते।
सत्त्वाशयवशेनैव कायः सम्भोगलक्षणः॥

सभी सत्त्वों के द्वारा व्याकृत ऋद्धि जो स्वयं प्रकाशित होती है, सत्त्वों के आशयों के अधीन होकर जो काय व्यवस्थित होता है वही सम्भोग लक्षण है।

नानित्यो नापि नित्यो यो नैको नानेकलक्षणः।
न भावो नाप्यभावो ऽसौ धर्मकायो निराश्रयः॥

जो अनित्य और नित्य नहीं है, जो एक और अनेक भी नहीं है। जो भाव और अभाव दोनो नहीं है, वही निराश्रित धर्मकाय है।

शून्यताकरुणाभिन्नो रागारागविवर्जितः।
न प्रज्ञा नाप्युपायोऽसौ कायः स्वाभाविकोऽपरः॥

शून्यता रूप करूणा से अभिन्न, राग-अराग दोनों से रहित, न प्रज्ञा है और न ही उपाय है, जो स्वाभाविक एवं अपर है वह इनका काय है।

स्वदर्शनमतोद्देशे च स्वदर्शन तथा उद्देश में भी कहा है -

रूपराशिरनन्तो मे निर्माणकाय उत्तमः।
रुतराशिरनन्तो मे सम्भोगकाय उत्तमः॥

मेरे रूप अनन्त हैं, मेरा निर्माणकाय अति उत्तम हैं। मेरा उपदेश भी अनन्त है, मेरा संभोग काय भी अति उत्तम है।

धर्मराशिरनन्तो मे धर्मकायः प्रकीर्तितः।
सुखराशिरनन्तो मे सुखकायो ऽक्षरः परः।
पिण्डो राशिस् तथा कायः सञ्चयः परिकीर्तितः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेरा धर्म भी अनन्त है, वही धर्मकाय कहलाता है, मेरा सुख भी अनन्त है, मेरा सुख काय अक्षर है एवं उत्तम है। समग्र राशियों का समूह ही काय है उसे ही सञ्चय भी कहा गया है।

अभिसमयालङ्कारादिष्वपि स्वाभाविकसम्भोगाभ्यां भेदेनैव धर्मकायो व्यवस्थाप्यते।

अभिसमयालङ्कार आदि में भी स्वाभाविक एवं संभोग कायों से भिन्न ही धर्मकाय की व्यवस्था देखी जाती है।

प्रकृतमुच्यते। लब्धोपदेशस्यादावनुकूलकर्ममुद्रासमापत्त्याधिमात्राधिमात्रविकल्पक्षयान् मृदुमृद्वक्षरसुखवृद्धिः। एवं विश्वमात्रादिदेवीज्ञानमुद्रावलम्बनेनाधिमात्रविकल्पापचयान् मृद्वक्षरसुखवृद्धिः। उक्तं च श्रीतन्त्रे–

अब, प्रसङ्ग के अनुरूप व्याख्या करते हैं। उपदेश प्राप्त करने के बाद अनुकूल कर्ममुद्रा के प्राप्ति के बाद अधिमात्र विकल्प क्षयपूर्वक मृदु और मृदु अक्षर सुख की वृद्धि होती है। इस प्रकार विश्वमात्र आदि ज्ञानमुद्रा के अवलम्बन के द्वारा विकल्पों के क्षय से मुद्रा अक्षर सुख की वृद्धि होती है। श्रीतन्त्र में भी कहा है –

सेव्यादौ कर्ममुद्रा जिनसहजसुखस्यास्य वृद्ध्यर्थहेतोस्
तस्मादादित्यरूपा मुखकरचरणोष्णीषसर्वाङ्गपूर्णा।

सबसे पहले कर्ममुद्रा का सेवन करना चाहिए। क्योंकि जिन सहज सुख की वृद्धि के लिए – इसीलिए उस कर्म मुद्रा के द्वारा प्रकट तेज उत्पन्न होता है जो मुख, हाथ, पैर, शिर आदि समस्त अङ्गों में व्याप्त हो जाता है।.

इत्यादि। आदिशब्दान् महामुद्रायाः पूर्वरूपधूमादिबिम्बधर्ममुद्रालम्बनेन मृदुक्लेशक्षयादधिमात्राक्षरसुखवृद्धिः। पश्चाद्रूपविश्वबिम्बाख्यमहामुद्राभ्यासेन मृदुमृदुसवासनावरणापचयादधिमात्राधिमात्राक्षरसुखवृद्धिः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ननु प्रक्षेपापचयोज्झितमक्षरसुखं कथं वृद्धिं यातीत्याह -

यहाँ आदि शब्द से महामुद्रा का पूर्वरूप धूम आदि बिम्ब धर्ममुद्रा का अवलम्बन करके मृदु क्लेश के क्षय होने से अधिमात्र अक्षर सुख की वृद्धि होती है। बाद में रूप विश्वविम्बरूप महामुद्रा के अभ्यास द्वारा मृदु-मृदु-वासना-आवरण के क्षय होने से अति महत्त्वपूर्ण अक्षरसुख की वृद्धि होती है। यह अक्षर सुख किस प्रकार वृद्धि को प्राप्त होता है? इस पर कह रहे हैं -

वृद्धस्य न च वृद्धिः स्यात् क्षीणस्य क्षीणता न च।
अस्तंगतस्य नास्तगमनमुदितस्योदयं न हि॥ २॥
न प्रकाशः प्रकाशस्य पिहितं पिहितस्य न।
जातस्यैय न जन्म स्यान् मृतस्य मरणं न च॥ ३॥
मुक्तस्य न च मुक्तिः स्यादस्थितस्य न चास्थितिः।
अभावो न ह्यभावस्य भावो भावस्य नैव च॥ ४॥
क्षरस्यापि क्षरो न स्यादक्षरस्य न चाक्षरः।

बढ़े हुए की वृद्धि नहीं होती, क्षीण की क्षीणता भी नहीं हो सकती। अस्त हुआ फिर अस्त नहीं हो सकता, उदित हुआ फिर उदित नहीं हो सकता है। प्रकाश का फिर प्रकाश नहीं, ढके हुए का फिर ढकना नहीं, जन्म हुआ फिर जन्म नहीं होता, मृत्यु प्राप्त फिर मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। मुक्त की मुक्ति फिर नहीं होती, अस्थित की अस्थिति भी नहीं, अभाव का अभाव भी नहीं, भाव का भाव भी संभव नहीं होता। क्षर का क्षरण फिर नहीं होता साथ ही अक्षर का अक्षर भी नहीं होता।

वृद्धस्य न हि वृद्धिः स्याद् इति। क्रमभाविनी ह्यब्धातुकनकाकाश-शुद्धिवदावरणप्रहाणवृद्धिः। सा च वृद्धस्य सवासनसर्वावरणप्रहाण्या वैमल्याख्यापूर्णावस्थात्मकवृद्धियुक्तस्य न स्यात्। एवं क्रमभाव्या-वरणोपचयेन पुनः क्षीयते। तत् तस्य क्षीणस्य या क्षीणता कल्प्यते सापि नास्ति नित्योदितत्वात्।

एवं तर्हि वृद्धिक्षययोरभावात् कथं न मार्गादिवैफल्यमित्याह -

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अप् धातु सुवर्ण और आकाश के तरह शुद्ध होने से आवरण क्षीण हो जाता है। वासना सहित समग्र आवरणों के प्रहाण से विमल अवस्था के होने से वृद्धि नहीं होती इसी प्रकार समग्र क्रमभावी पदार्थों के विषय में कहा गया है। शेष प्रष्ट है। इस प्रकार वृद्धि और क्षयों के न होने से मार्ग आदि की विफलता क्यों नहीं होती? इस पर कहते हैं–

स्वभावाभावधर्माणां मायोत्पादः क्षयस्तथा॥ ५॥
न क्षयं यान्ति भूतानि न जायन्ते स्वभावतः।
निःस्वभावमिदं विश्वं भावाभवैकलक्षणम्॥ ६॥

स्वभाव अभाव धर्मों का माया द्वारा होने वाली उत्पत्ति और क्षय भी क्षय को प्राप्त नहीं होते, – प्राणी भी मृत्यु और जन्म रहित ही हैं स्वभावतः, इसी से सिद्ध होता है कि यह समग्र विश्व निःस्वभाव है जो भावाभाव – एक लक्षणात्मक है॥

स्वभावाभावधर्माणाम् इति। स्वभावस्याभावो येषां वृद्ध्यादीनां धर्माणां ते स्वभावाभावधर्माः। तेषां य उत्पादः क्षयश् च स मायैव न तत्त्वतः। तथाशब्दादस्तमनोदयादिलक्षणापि लोकसंवृतिर्मायैव। तदाह – न क्षयं यान्तीत्यादि। नोत्पद्यन्ते स्वभावतः। अत एव – निःस्वभावमिदं विश्वं भावाभावैकलक्षणम्॥ इति। संवृत्यार्थक्रियाकारित्वाद्भावरूपम्। तत्त्वतः शून्यत्वादभावलक्षणम्।

जो भी वृद्धि या क्षय है वह वास्तविक न होकर मायामय मात्र है। शब्दों के द्वारा और इन्द्रियों का द्वारा व्यक्त–भोग्य भी माया होने से संवृति मात्र है। संवृति और अर्थ क्रिया कारिता के कारण ही भावरूप हैं। तत्त्वतः शून्य होने से अभाव स्वरूप हैं।

क्षरस्पन्दादिभावनामाह क्षर–स्पन्द आदि भाव बता रहे हैं –

स्वप्रज्ञालिङ्गितं चित्तं पद्मे वज्रमणौ गतम्।
तत्र चन्द्रगतस्पन्दो निःस्पन्दाक्षरभावना॥ ७॥

स्वप्रज्ञा में आलिङ्गित चित्त को पद्म में और वज्रमणि में स्थिर करके वहाँ पर चन्द्रगति – प्रकाशमयता ही स्पन्द है और अक्षर भावना निस्पन्द है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वप्रज्ञेत्यादि। कर्ममुद्रादिस्वप्रज्ञालिङ्गितं बोधिचित्तं वज्रमणिपद्मगतं यदा तत्र वज्रमणौ चन्द्रगता कर्ममुद्रया क्षरसुखावस्था। ज्ञानमुद्रया स्पन्दसुखावस्था। स्पन्देति स्रावसाधर्म्यात् क्षरस्यापि संग्रहः। एते सुखावस्थे साक्षात्कृते कामरूपधात्वैश्वर्यलक्षणलौकिकसिद्धिसाधने। महामुद्रया निष्पन्दाक्षरभावना तु सर्वज्ञत्वलक्षणलोकोत्तरसिद्धिसाधनी।

वज्रमणि में चन्द्रगता – कर्ममुद्रा के द्वारा क्षरसुख की अवस्था का वर्णन है और ज्ञानमुद्रा द्वारा स्पन्द सुखावस्था का वर्णन है। महामुद्रा के द्वारा निष्पन्दाक्षर भावना की बात है।

कायवाक्चित्तनाडीषु कायवाक्चित्तभावना।
समाहारस्त्रिवज्राणां शङ्खिन्यां ज्ञानभावना॥ ८॥

काय, वाक् और चित्त नाडियों में काय-वाक्-चित्त की भावना करनी चाहिए। तीन वज्रों का समाहार शङ्खिनी नाडी में करना ही ज्ञान भावना है।

कायवाक्चित्तनाडीष्वित्यादि मध्यमैवानन्दचतुष्टये प्राणायामबलेन शुक्रेन्दुव्याप्तचतुर्भागाश्चतस्त्रः कायादिनाड्यो व्यवस्थाप्यन्ते। तत्र ललाटे कायभावना हृदि वाग्भावना गुह्ये चित्तभावना। कायादिबिन्दूनां समाहार एकत्वं वज्रमणौ ज्ञानभावना। सार्ध श्लोकद्वयेन समाध्यङ्गमुद्दिष्टम्।

मध्यम नाडी में आनन्द चतुष्टय उपलब्ध होते हैं जो प्राणायाम के बल से शुक्र इन्दु व्याप्त चार भाग है उनमें काय आदि नाडियाँ व्यवस्थित होती हैं। ललाट में काय की भावना, हृदय में वाग्भावना और गुह्य में चित्त भावना का क्रम है। काय आदि बिन्दुओं का समाहार ही एकत्व है जो वज्रमणि में ज्ञानभावना कहलाती है। दो श्लोकों के द्वारा समाधि के आठ अङ्गों का वर्णन करते हैं –

चतुर्बिन्दूनां बन्धनमाह –

चार बिन्दुओं का बन्धन बता रहे हैं।

प्रज्ञारागद्रुतानां च बिन्दूनां शिरसः क्रमात्।
पूर्णापदं प्रविष्टानां बन्धनं परमार्थतः॥ ९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रज्ञा राग के धावन द्वारा शिर से क्रमशः बिन्दुओं के वहाव से पूर्णपद में प्रविष्ट योगिओं का बन्धन पारमार्थिक ही होता है॥

प्रज्ञेत्यादि प्रज्ञारागद्रुतानां चण्डालीज्वालेन द्रुतानां बिन्दूनाम् उक्तक्रमेण शिरसो ललाटात् पूर्णास्थानं मणिपद्मं तत्प्रविष्टानां मणिपद्मगानां बन्धनं परमार्थत इति प्राणबन्धेनाक्षरसुखेन तत्त्वभावनयेति यावत्।

उक्तक्रमेणाक्षरसुखस्य वृद्धिक्षयादिकमतात्त्विकं प्रतिपाद्य लौकिकदृष्टान्तेन तदेव दृढयति -

चण्डाली ने ज्वाला से शिर से नीचे की ओर वहने वाले बिन्दुओं का क्रमशः ललाट, मणिपद्म आदि में आने से जो सुख होता है वह प्राण बन्धन से ही संभव होता है। उक्त क्रम से अक्षर सुख का वृद्धि और क्षय आदि अतात्त्विक है यह प्रतिपादन करने के बाद लौकिक-दृष्टान्त के द्वारा उसे ही दृढ करते हैं -

यथोदितः क्रमाच्चन्द्रः कलाभिर्याति पूर्णताम्।
वासनाहरणं पूर्णा न चन्द्रच्छेदो न पूरणम्॥ १०॥

उदित हुआ चन्द्रमा जैसे क्रमशः कलाओं से पूर्णता को प्राप्त होता है। वासना का हरण ही पूर्ण नहीं है और चन्द्र का छेदन अर्ध स्वरूप भी पूर्णता नहीं है॥

तथोदितं क्रमाज्ज्ञानं भूमिभिर्याति पूर्णताम्।
क्लेशाद्याहरणं पूर्णा न ज्ञानच्छेदो न पूरणम्॥ ११॥

उसी प्रकार क्रमशः ज्ञान भी दशभूमियों के द्वारा पूर्ण होता है। क्लेश आदि का छेदन ही पूर्णता है ऐसी बात नहीं है और ज्ञान का छेदन भी पूर्णता नहीं है॥

यथोदित इत्यादि। यथोदितश्चन्द्रः क्रमात् कलाभिः पूर्णतां याति। पूर्णचन्द्रस्य लोकस्य वासनाहरणम् एव केवलं पूर्णा। न तस्य छेदः पूरणं वा। स हि नित्यपूर्णोऽपि तमः पिधानापिधानाभ्यां क्षीणः पूर्णश्च

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यवह्लीयते। तथाक्षरज्ञानमपि वज्रमणावुदितं क्रमान् निःष्यन्दादिभेदेन वक्ष्यमाणभूमिभिर् मुदिताद्याभिरूर्ध्वमुष्णीषचक्रे पूर्णतां याति। क्लेशादीति क्लेशज्ञेयसमापत्त्यावरणवासनाया आहरणम् अपगम एव पूर्णाशब्देन व्यपदिश्यते। न ज्ञानच्छेदो न च तस्य पूरणम्। तदुक्तमागमे -

पूर्णचन्द्र के द्वारा लौकिक व्यक्तियों के वासना हरण ही न केवल पूर्णता है, उसका छेदन या पूरण नहीं है। वह नित्य पूर्ण होते हुए भी अन्धकार के द्वारा ढका जाना और फिर न ढकने के कारण क्षीण और पूर्ण का व्यवहार होता है। उसी प्रकार अक्षर ज्ञान भी वज्रमणि में निःष्यन्त आदि भेद से मुदिता आदि भूमियों से ऊपर सहस्रारचक्र में पूर्ण होती है। हटाना ही पूर्णता है। ज्ञान को काटना या पूर्ति करना नहीं है। इसे ही आगम में कहा है।

नित्योदितं तु बुद्धानां नाविद्यादुष्टचेतसाम्॥

अविद्या के द्वारा जिनका चित्त ढका हुआ नहीं है ऐसे बुद्धों को निरन्तर ज्ञान उदित ही हुआ रहता है।

सरहपादैश्च सरहपाद ने भी कहा है -

जयति सुखराज एकः कारणरहितः सदोदितो जगताम्।
यस्य च निगदनसमये वचनदरिद्रो बभूव सर्वज्ञः॥

सर्वदा वे विजयी हैं जो एक हैं, सुखराज हैं, कारणरहित एवं सदैव जागृह हैं जगत् में जिनके बोलने के समय में जो स्वयं ही वचनों से दरिद्र हो गये थे।

पूरणे दृष्टान्तमुक्त्वा छेददृष्टान्तमाह पूरण में दृष्टान्त कहकर छेदन में दृष्टान्त बता रहे हैं—

यथा मध्यशशाङ्केन पूर्णायां न स्थिरः शशी।
संसारवासनाङ्केन तथा चित्तं सुखे ऽक्षरे॥ १२॥

जैसे मध्य चन्द्र के द्वारा पूर्णिमा में चन्द्र स्थिर नहीं होते, उसी प्रकार संसार के वासना के द्वारा अक्षर सुख में चित्त नहीं रमता है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथा मध्येत्यादि। यथा मण्डलमध्यगतमोबीजभूताङ्करूपेण शशेन क्रमवर्धमानेन पूर्णायां न स्थिरः शशी न नित्यपूर्ण इत्यर्थः। तथा संसार-वासना या क्षरसुखलक्षणा तस्याः क्रमवृद्ध्या चित्तम् अप्यक्षरे सुखे न स्थिरम्। रागविरागजन्मनिरोधादेरभावादद्वयमक्षरसुखम्।

जैसे मण्डल के मध्य में स्थित अन्धकार बीज के रूप द्वारा क्रमशः बढ़ने से पूर्णिमा में चन्द्र स्थिर नहीं होते। उसी प्रकार संसार वासना के द्वारा जो क्षरसुख लक्षणात्मक उसके वृद्धि से चित्त भी अक्षर सुख में स्थिर नहीं होता। राग, विराग, जन्म, मरण आदि के निरोध से अद्वय, अक्षर सुख उपलब्ध होता है। जन्म निरोध आदि के अभाव के कारण अद्वय अक्षर सुख उपलब्ध होता है।

बाह्याध्यात्मश्लेषव्याजेन दृष्टान्तं दर्शयन्नाह बाह्य-अध्यात्म-श्लेष के माध्यम से दृष्टान्त को दिखा रहे हैं -

उत्पत्तिः प्रलयः पक्षः शुक्लः कृष्णः प्रतिष्ठितः।
तयोर्मध्ये तु या पूर्णा सा पूर्णा न प्रतिष्ठिता॥ १३॥

उत्पत्तिः - प्रलय, पक्ष, शुक्ल, कृष्ण, प्रतिष्ठित, इन दो में जो पूर्णा तिथि (पूर्णिमा) है वही पूर्णा है जो प्रतिष्ठित नहीं है॥

एकक्षणाभिसम्बुद्धं पूर्णायां निश्चलं भवेत्।
यदा वज्रमणौ चित्तं तत् सर्वक्षणपूरकम्॥ १४॥

एक क्षण में ही सम्बुद्ध होकर निश्चय होना चाहिए, जब वज्रमणि में चित्त लग जाता है तब वही सर्वपूरक क्षण हो जाता है॥

उत्पत्तिर् इत्यादि। यथेन्दोः प्रतिपदादिकलानां क्रमेणोत्पत्तिः शुक्लपक्षः। कलानां क्रमेण हानिः कृष्णपक्षः। तौ प्रतिष्ठितौ लोकगम्यौ। तन्मध्यगा तु षोडशी कलैकक्षणोदयान् न तथा। तथा शुक्रेन्दोः।

चन्द्र का प्रतिपद आदि कलाओंका क्रमपूर्वक उत्पत्ति ही शुक्लपक्ष है। कलाओं की क्रमश हानि ही कृष्णपक्ष है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदा तु योगिनां बोधिचित्तं मणिपूर्णायामेकक्षणे ऽक्षरम् अभिसम्बुद्धं सततं निश्चलं भवेत्। तदा तच्चित्तवज्रं वज्रमणौ निष्पन्देन सर्वक्षणपूरकम् इति द्व्ययुतद्व्यष्टशतश्वासक्षणानां पूरकमविच्छेदवाहि। उक्तं च परमार्थसेवायाम् –

जब योगियों का बोधिचित्त मणिपूर में एक क्षण के लिए जो अक्षर अभिसम्बुद्ध सतत निश्चल होता है। इत्यादि। इसी बात को परमार्थ सेवा में कहा है –

नक्तन्दिनं ध्यानवशात् क्रमेण चित्तं यदा तिष्ठति मध्यनाड्याम्।
अनन्तमूर्तिं सुविशुद्धमद्वयं तदेकशूकं कुलिशं नमामि॥

न स्थितिः शुक्लपक्षे ऽस्य गमनं नासिते क्वचित्।
पक्षद्वयस्य मध्यस्थं पूर्णायां गतमद्वयम्॥ १५॥

दिन–रात ध्यान के वशीभूत होकर क्रमपूर्वक जब चित्त मध्यनाडी में स्थित हो जाता है। अनन्तमूर्ति, सुविशुद्ध, अद्वय, वही एक शूक रूप कुलिश को नमस्कार करता हूँ। शुक्लपक्ष में स्थिति नहीं होता है। इसका गमन कृष्ण पक्ष में नहीं होता। दोनों पक्षों के बीच में पूर्णिमा में अद्वय स्थिति की उपलब्धि होती है॥

एवम् अस्य चित्तवज्रस्य न शुक्लपक्षे रागे स्थितिर्न च गमनमसिते पक्षे विरागे रागारागान्ताभ्यामपगतत्वात्। अत एव पक्षद्वयस्य मध्यस्थं पूर्णायां गतमद्वयम् अप्रतिष्ठितम्। तदुक्तं नामसङ्गीत्याम् –

इस चित्तवज्र का शुक्लपक्ष में राग में स्थिति नहीं होती है गमन – कृष्ण पक्ष में नहीं होता। इसीलिए पक्षद्वय के मध्य में पूर्णिमा में अद्वय की स्थिति होती है, जो अप्रतिष्ठित है। नामसङ्गीति में यही कहा है –

एकक्षणाभिसम्बुद्धः सर्वक्षणविभावकः।
अकलः कलनातीतश्चतुर्थध्यानकोटिधृक्॥ इति।

एक क्षण में अभिसम्बुद्ध सर्वक्षण विभावक, अकल और कलनातीत जो चतुर्थ ध्यान रूप कोटि के धारक भगवान् तथागत हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हेवज्रे ऽपि हेवज्र में भी कहा है –

आइ न अन्त न मज्झ तहिं नउ भव नउ निब्बाण।
एहु सो परममहासुह नउ पर नउ अप्पाण॥ इति।

जहाँ अन्त नहीं है – दो इडा और पिङ्गला नहीं है उसके बीच में अवस्थित सुषुम्ना में प्रवेश से निर्वाण प्राप्त होता है। यही परम महासुख है। इसके पार अन्य कोई विशिष्ट सुख नहीं है।

सांसारिकक्रममाह सांसारिक क्रम को बता रहे हैं –

उष्णीषादुदयं तस्य पूर्णा वज्रमणौ भवेत्।
सविरागात् कलाहानिर् वज्राद्धानेः प्रपूर्णता॥ १६॥

उसका उदय सहस्रार से होता है वही पूर्णिमा है वह वज्रमणि में होता है। राग के कारण कला की हानि होती है वज्र से हानि होने पर पूर्ण हो जाता है॥

उष्णीषे ह्युदयो भूयः पूर्णा वज्रमणौ पुनः।
सविरागात् कलाहानिर्ज्ञानहानिर्न देहिनाम्॥ १७॥

फिर उष्णीष में उदय हो जाता है वज्रमणि में पूर्णता होती है। विराग से कला की हानि होती है देवियों की ज्ञान हानि नहीं होती है॥

उष्णीषेत्यादि। तस्येति बीजभूतस्येन्दोः षोडशानां कलॉनां पूर्णत्वाद् वज्रमणौ पूर्णा। किं त्वनुपायेन सविरागाद् रागनाशयोगात् कलाहानिः पञ्चदशानां कलानां नाशः। वज्राद् आरभ्य हाने रजोरूपरवेरुष्णीषे प्रपूर्णता।

बीजभूत चन्द्र का १६ कलाओं की पूर्णता से वज्रमणि में पूर्णा होती है। अनुपाय द्वारा राग के कारण अर्थात् रागनाश के योग से पञ्चदश कलाओं का नाश होता है। अन्य सुगम है।

भूयः पुनः पुनः कर्ममुद्रादियोगेनोष्णीष उदयः। पुनर्वज्रमणौ पूर्णता। सविरागात् कलाहानिर्ज्ञानहानिर्न देहिनाम्। ज्ञानं षोडशी कला तस्यास्तु न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हानिः। उक्तं च तथागतज्ञानगर्भाः सर्वसत्त्वा इति। किं च ज्ञानहान्या मरणमेव स्यात्।

फिर पुनः पुनः कर्ममुद्रादि योग के द्वारा उष्णीष में उदय होता है। ज्ञान १६ कलायें है उनकी हानि नहीं होती। कहा भी है – तथागत ज्ञान गर्भ सर्वसत्त्व हैं। और ज्ञानहानि से मरण ही होता है।

पूर्णाशब्दस्यार्थमाह पूर्ण शब्द का अर्थ बता रहे हैं –

महासुखस्वभावोऽस्य पूर्णाशब्देन गीयते।
अन्यभावान्तरं सर्वं सृष्टिसंहारहेतुकम्॥ १८॥

महासुख स्वभावात्मक तत्त्व को पूर्णा शब्द से कहा गया है। सब कुछ अन्य भावान्तर होता है जो सृष्टि और संहार का हेतु है॥

महासुखेत्यादि। अस्य बोधिचित्तस्य महासुखस्वभावो यः स पूर्णा भण्यते। इयमेव योगिभिः स्थिरीकरणीया। महासुखस्थिरीकरणं विहायान्य-भावान्तरं तस्य महासुखस्योत्पादव्ययलक्षणसृष्टिसंहारहेतुकं देहिनाम्। पूर्णायामस्थिरीकृतो ह्यसौ सुखेन्दुः पुनः पुनरुत्पद्यते नश्यति च।

बोधिचित्त का महासुख स्वभाव ही पूर्णा कहलाती है। इसे ही योगियों को स्थिर करना चाहिए। इस स्थिरीकरण को छोड़कर अन्य भावान्तर उसका महासुख की उत्पाद व्यय लक्षण सृष्टि संहार हेतुक है। पूर्णा में अस्थिरीकृत यह सुखेन्दु फिर वारम्बार उत्पन्न एवं विनष्ट होता है।

अत्र दृष्टान्तमाह यहाँ दृष्टान्त कह रहे हैं –

भवाद्गच्छति निर्वाणं तस्मादेति पुनर्भवम्।
स्वपक्षाभ्यां यथा चन्द्रो ऽयनाभ्यां भास्करो यथा॥ १९॥
पूर्णायां निश्चलस्यास्य भूमिभिः परिपूर्णता।
द्वचयुतद्वचष्टशतैः श्वासैरक्षरक्षरभक्षितैः॥ २०॥
पक्षद्वयं व्यतिक्रम्य भूमिभिः परिपूरितम्।
द्वादशाकारसत्यार्थं षोडशाकारमक्षरम्॥ २१॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वपक्षाभ्याम् इत्यादि। यथा शुक्लकृष्णपक्षाभ्यां चन्द्रः। उत्तर-दक्षिणायनाभ्यां रविः। दिवावृद्धिक्षयरूपरविवृद्धिक्षयदर्शनात्। भावना-बलेन तु पूर्णायां स्थिरस्यास्य महासुखस्य क्रमेणोष्णीषे द्वादशभूमिभिः परिपूर्णता। गुह्यादुष्णीषान्तं प्रतिचक्रेऽक्षरणनिरुद्धषट्त्रिंशच्छतश्वासैर् द्विद्विभूमिलाभः। तदक्षरं यदोदयलयरूपरागविरागपक्षद्वयातिक्रमात् पक्षद्वयोज्झितं तदा भूमिभिः पूर्णं द्वादशाकारसत्यार्थं षोडशाकारम्। तं निर्दिशति–

संसार से निर्वाण में जाते हैं निर्वाण से फिर संसार में जाते हैं। जैसे चन्द्र दो पक्षों में और सूर्य दो अयनों से जाते हैं। पूर्णिमा में इस निश्चल स्वभाव के कारण भूमि (दश)यों से परिपूर्णता होती है। दो अरब चार सौ श्वासों के द्वारा अक्षर भक्षण भक्षित होते हैं। दोनों पक्षों को अतिक्रम करके भूमियों से परिपूरित जो द्वादशाकार सत्य के लिए वह षोडशाकार अक्षर है। इसी से निर्देश कर रहे हैं –

भूमिभिर्द्वादशाकारं पूरितं परमाद्वयम्।
कलाभिः पूरितं चित्तं षोडशाकारमक्षरम्॥ २२॥

१२ आकार से युक्त भूमियों से परम अद्वय पूर्ण हो जाता है। कलाओं से परिपूर्ण चित्त ही षोडशाकार अक्षर तत्त्व है॥

भूमिभिर् इत्यादि। भूमिभिः समन्तप्रभाऽमृतप्रभा गगनप्रभा वज्र-प्रभारत्नप्रभापद्मप्रभाबुद्धकर्मकरीअनुपमोपमाप्रज्ञाप्रभासर्वज्ञताप्रत्यात्म-वेद्यानामाभिः। द्वादशाकारं मेषवृषादिद्वादशसंक्रान्तिनिरोधाद् द्वादश-भूमिलाभतः। परमाद्वयं प्रज्ञोपायलक्षणस्याभावात्। न प्रज्ञा नाप्युपायः सहजतनुरियम् इति श्रीतन्त्रे ऽभिधानात्। षोडशाकारमक्षरं सांसारिकषोडश-कलाक्षयतः।

भूमियों से अर्थात् समन्तप्रभा, अमृतप्रभा, गगनप्रभा, वज्रप्रभा, रत्नप्रभा, पद्मप्रभा, बुद्धकर्मकरी, अनुपमा, उपमाप्रज्ञा, प्रभासर्वज्ञता, प्रत्यात्मवेद्यनामों से युक्त भूमियाँ हैं। द्वादशाकार – मेष–वृष आदि द्वादश सङ्क्रान्ति के निरोध से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वादशभूमि लाभ होता है उसी से द्वादशाकार सिद्ध होता है। न प्रज्ञा, न उपाय है केवल यह सहजतनु मात्र है। श्रीतन्त्र में यही कहा है। षोडशाकार अक्षर का अर्थ है – सांसारिक षोडश कलाक्षय होने से अक्षर होता है।

एकार्थमद्वयं धर्मं परमार्थमविनश्वरम्।
पूर्णावस्थां गतं चित्तमासमन्तात् प्रपूरितम्॥ २३॥

एकार्थ, अद्वय, धर्म, परमार्थ, अविनश्वर चित्त है जो पूर्णावस्था को प्राप्त हुआ है, चारों ओर से पूर्ण भी है॥

विरागादिमहारागं वज्रानङ्गं महाक्षरम्।
परिपूर्णमसंक्लिष्टं पक्षद्वयस्य वासनैः॥ २४॥

विराग आदि महाराग, वज्रानङ्ग, महाक्षर, परिपूर्ण, असंक्लिष्ट, दो पक्षों के वासनाओं से उपलब्ध होता है॥

इदं समन्तात् कलाभिः पूर्णं चित्तमेकार्थादि यथार्थदर्शनात्मकम्। यद् अद्वयधर्मं तद् एकार्थम् उभयपक्षाभावात्। विरागादिमहारागम् इति सेकक्षणश्चतुर्थः। तदुक्तं नामसङ्गीत्यां –

यथार्थ दर्शनों से एकार्थ है। उभयपक्ष के अभाव से एकार्थ है। विराग आदि महाराग – अभिषेक क्षण चौथा है। इसे नामसंगीति में भी कहा है –

विरागादिमहारागो विश्ववर्णो ज्वलप्रभः।
सम्बुद्धवज्रपर्यङ्को बुद्धसङ्गीतिधर्मधृक्॥ इति।

विराग आदि महाराग, विश्ववर्ण, ज्वलप्रभ, सम्बुद्ध, वज्रपर्यङ्क, बुद्धसंगीति धर्मधृक् वे भगवान् हैं।

तच्च रागविरागपक्षद्वयवासनाभिर् असंक्लिष्टम्। तस्मिन्नक्षरे प्रविष्टो भावग्रामोऽक्षर इति। अक्षरविद्याधरशास्तरि सुखमयसर्वाकारसर्वभाव-प्रतिभास इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राग-विराग पक्ष द्वय वासनाओं से असंक्लिष्ट है। उसी अवसर में भावग्राम ही अक्षर हो जाता है।

यथा नद्युदकं विष्टं समुद्रे तत्पयःसमम्।
तथा भावसमूहो ऽयमक्षरे तत्समोऽक्षरः॥ २५॥

जैसे नदी का जल बहकर समुद्र में चला जाता है। उसी प्रकार भावों का समूह भी अक्षर में समाहित हो जाता है, वही अक्षर है॥

यथा धातुसमूहोऽयं रसत्वं याति भक्षितः।
बीजैर्बीजस्वभावं च फलकाले मानवर्जितम्॥ २६॥

जैसे धातुओं का समूह भक्षण करने पर वह रस के रूप में परिवर्तित होता है उसी प्रकार बीजों से बीज स्वभाव है जो फल काल में मानवर्जित हो जाता है॥

एवं भावसमूहोऽपि परमाक्षरभक्षितः।
परमाक्षरतां याति सर्वाकारस्वरूपधृक्॥ २७॥

इसी प्रकार भावसमूह भी परमाक्षर द्वारा भक्षित होकर परम अक्षर ही हो जाता है जो सर्वाकार के स्वरूप को धारण करता है॥

यथेति दृष्टान्तः स्पष्टः। अपरो ऽपि दृष्टान्तार्थः। यथाभ्रकादिधातुग्रामो रसभक्षितो रसतां याति। स्वर्णादिबीजैश्च जीर्णैर् बीजताम्। अष्टलोह-वेधलक्षणफलकाले जारिताधिककोट्यादिवेधत्वेन मानोज्झितम्। एवम् इति दार्ष्टान्तिकम्। एवं भावसमूहो ऽपि स्थिरचलात्मकः परमाक्षरभक्षितः परमाक्षरत्वं प्रकृतिप्रभास्वरगगनामलमहासुखैकरसतां याति। ततश्च सर्वाकारस्वरूपधृग् भवति। सर्वभावप्रतिभासरूपत्वात्। विषदृष्टान्तेन निर्विकल्पमहासुखस्य व्यापित्वमाह -

जैसे अभ्रक आदि धातुग्राम भक्षित होने पर रस ही हो जाता है। उसी प्रकार स्थिर चलरूप भावसमूह भी परमाक्षर में मिलकर वही हो जाता है -

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वाकारस्वरूपधृक् हो जाता है। सर्वाभाव-प्रतिभासरूप होने से। साथ ही विष के दृष्टान्त से निर्विकल्प महासुख के व्यापकत्व को कह रहे हैं -

न दंशे वेदनां वेत्ति नान्यत्र चापि दष्टकः।
न विषयानिन्द्रियद्वारैः पूर्णावस्थां विषे गते॥ २८॥

जहाँ डंक मारा जाता है उसे वेदना नहीं पता है, जो डंक मारता है उसे भी वेदना पता नहीं चलता है। इन्द्रियद्वारों से विषयों को नहीं जाना जा सकता है। विष समाप्त होने पर पूर्णावस्था की उपलब्धि होती है॥

नैवं वज्रमणौ योगी नान्यत्र वेत्ति सत्सुखम्।
न विषयानिन्द्रियद्वारैश्चित्ते पूर्णकलां गते॥ २९॥

वज्रमणि में योगी नहीं लगते, अन्यस्थानों में भी उस सुख को प्राप्त नहीं कर सकते। चित्त पूर्ण कला में स्थिर हो जाता है तो इन्द्रियों के द्वारा हम विषयों पर नहीं पहुँच सकते॥

न दंश इत्यादि। पूर्णावस्थां व्यापित्वं गते विषे दष्टको दंशस्थाने वेदनां दुःखं न वेत्ति न चान्यत्रापि कुत्रचित् कायस्थाने न च विषयान् रूपादीन् इन्द्रियद्वारैर् वेत्ति। एवं चित्ते पूर्णकलां गते व्यापित्वं गते न योगी वज्रमणौ वेत्ति सत्सुखं नान्यत्रापि। न विषयानिन्द्रियद्वारैर् इति। एकदेशस्थितमपि रोमकूपसन्धिपर्यन्तं क्रामतीति सिद्धरसलोहदृष्टान्तेनाह

इसके बाद दो सरल दृष्टान्त उपस्थापित करते हैं—

यथा लोहैकदेशे ऽपि संस्थितो हि महारसः।
लोहं तीव्राग्निसन्तप्तं वेधयेदासमन्ततः॥ ३०॥
तथैवैकप्रदेशेऽपि संस्थितं सुखमक्षरम्।
चित्तं कामाग्निसन्तप्तं वेधयेदासमन्ततः॥ ३१॥

जैसे लोहा के एक किसी स्थान में स्थित महारस अग्नि से तीव्र तप्त होने पर चारों ओर उसमें प्रविष्ट हो जाता है। उसी प्रकार अक्षर महासुख किसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक स्थान पर स्थित होने पर भी कामाग्नि से संतप्त चित्त को चारों ओर से वेध करता है। तन्मय बना देता है॥

एकदेशे वज्रमणौ स्थिरीकृतं सुखं कर्तृ कर्ममुद्रादियोगेन ज्वलित-चण्डालीज्वालया सन्तप्तं चित्तं कर्म सर्वतो वेधयेत्। तन्मयत्वापादनात्।

एक देश में वज्रमणि में स्थित, सुख - कर्तृ कर्ममुद्रा आदि के योग से ज्वलित चण्डाली ज्वाला से संतप्त चित्त को ढक देता है।

यथा च विद्धलोहानां नैव मलो भवेत् क्वचित्।
तथा च विद्धचित्तानां न वासना भवेत् क्वचित्॥ ३२॥
हेमत्वं हि गतं लोहमग्निना निर्मलं भवेत्।
भूयो भूयस्तथा चित्तं निर्मलं रागवह्निना॥ ३३॥

जैसे पूर्णरूप से जले हुए लोहा में कहीं भी मल नहीं रहता है, उसी प्रकार विद्धचित्तों में कहीं वासना नहीं होती। सोने में मिश्रण हुआ लोहा अग्नि से नष्ट हो जाता है उसी प्रकार वारम्बार रागवह्नि से चित्त निर्मल हो जाता है॥

यथेत्यादि श्लोकद्वयं स्पष्टम्। वासना रागादिक्लेशानाम्।

यथा महामणिस्पर्शाद्याति शिला प्रदीप्तताम्।
तथाक्षरसुखस्पर्शात् सुखतां चित्तमेति वै॥ ३४॥

जैसे महामणि के स्पर्श मात्र से शीला प्रदीप्त होती है वैसे ही अक्षर सुख के स्पर्श से चित्त में सुख उपलब्ध हो जाता है॥

यथेति। अस्ति कश्चिन् महामणिर्यत्स्पर्शात् शिला प्रदीप्ततां प्रभा-स्वररत्नतां याति। दार्ष्टान्तिकस्य स्पष्टम्। वै निश्चितम्।

जैसे महामणि के स्पर्श मात्र से शिला चमकीली होती है।

कथं बालजनसाधारणोऽपि शुक्रधातुर्बुद्धत्वसाधनमित्याशङ्कानिरा-सार्थमाह—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कैसे बाल साधारण व्यक्ति भी शुक्रधातु - बुद्धत्व का साधन हो सकता है यह शंका कर सकते हैं उसके निवारणार्थ यह बता रहे हैं -

किमत्र बहुनोक्तेन लोकसंवृतिसत्यतः।
अवितर्क्यो रससद्भावो लोहस्यावेधनं प्रति॥ ३५॥
वितर्क्यो ज्ञानसद्भावः किं पुनः परमार्थतः।
मलागन्तुकलिप्तस्य चित्तस्यावेधनं प्रति॥ ३६॥

बहुत ज्यादा कहने से कोई भी लाभ नहीं है। वस्तुतः लौकिक संवृति सत्य से यह अतर्क्य है यह रस का सद्भाव जैसे लोह का वेधन किया जाता है। ज्ञान का सद्भाव तर्कातीत है, परमार्थ से क्या लाभ हो सकता है क्योंकि यह आगन्तुकमलों में लिप्त चित्त के लिए नहीं है जो चित्त परमार्थ से अविद्ध है उसमें यह सुख उपलब्ध नहीं हो सकता है॥

किमत्रेत्यादि। किं पुनः परमार्थतः परमार्थसत्यतो ज्ञानस्य सद्भावः प्रभावो वितर्क्यो विचारणीयश् चित्तस्यावेधनं प्रति मलागन्तुकलिप्तस्य। नैवेत्यर्थः॥

परमार्थ सत्य से ज्ञान का सद्भाव प्रभाव विचारणीय है। चित्त का अवेधन के प्रति मलागन्तुकलिप्त चित्त को सुख उपलब्ध नहीं है।

इति श्रीनारोपापादविरचितायां कालचक्रतन्त्रस्य सेकोद्देशटीकायां मुद्राप्रकरणं समाप्तम्।

मुद्राप्रकरण पूरा हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ सप्तमं मलप्रकरणम्

मलप्रकरण

नागन्तुको मलश्चित्ते न चित्ताच्चिरकालिकः।
न चित्तेन विना जातो न चित्ते संस्थितोऽव्ययः॥ १॥

चित्त में अवस्थित मल आगन्तुक भी नहीं है और चिरकाल तक रहनेवाला भी नहीं है। चित्त के बिना हुआ भी नहीं है और चित्त में सर्वदा रहने वाला भी नहीं है॥

यद्यागन्तुक एव स्याच्चित्तं प्रागमलं तदा।
चिरकाली यदा चित्तात्तस्यैव सम्भवः कुतः॥ २॥

यदि वह आगन्तुक मल होता तो चित्त पहले निर्मल हुआ होता। बहुत दिनों से यदि वही है तो उसकी उत्पत्ति कैसे हुई होगी॥

यदि चित्तं विना जातस्तदा खकुसुमं यथा।
यदि स्थितः सदा चित्ते न नश्येत् सर्वतस्तदा॥ ३॥

विना चित्त के ही यदि वह हुआ है तो वह आकाश पुष्प के तरह ही है, यदि सदा ही उसमें रहता है तो वह नष्ट भी नहीं होगा॥

ताम्रस्य कालिमा यद्वद्रसयोगेन नश्यति।
न तस्य सत्त्वता नश्येन्निर्मलत्वेन या स्थिता॥ ४॥

जैसे ताँबे में लगी हुई कालिमा अम्लरस से नष्ट हो जाती है। किन्तु ताबें का अपनी अवस्था ज्यों की त्यों ही रहती है तथा शुद्धता होती है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तद्वच्चित्तमलः शून्यतायोगेन प्रणश्यति।
न तस्य ज्ञानता नश्येन्निर्मलत्वेन या स्थिता॥ ५॥

उसी प्रकार शून्यता रूपी रस के योग से चित्त का मल नष्ट हो जाता है किन्तु चित्त की ज्ञानावस्था नष्ट नहीं होती, वह तो निर्मल हो जाती है॥

क्लेशादीनां तात्त्विकतां नेत्यादिश्लोकत्रयेण निषेधयति। ते तावन् नागन्तुका वीतरागस्यापि रागित्वप्रसङ्गात्। नापि चित्तात् प्राग्भाविनो हेतोरभावात्। चित्तविठपिता हि क्लेशादयः। नाप्यहेतुकाः खकुसुमादिवद-किञ्चित्करत्वात्। नापि स्वभावभूताः क्लेशा अविनाशप्रसङ्गात्। प्रहाणौ वा प्रदीपवन्निर्वाणप्रसङ्गात्। अत्र ताम्रदृष्टान्तेन बोधयति। यद्ययम् आगन्तुको मलस् ताम्रे तदा पूर्वं ताम्रं कलङ्करहितम्। यदा चिरकालिकमलः पश्चात् ताम्रस्य सद्भावस् तदा मलस्य तस्य कुतः कस्मात् सम्भवः। अथ ताम्रेण विना जातस्तदाकाशकुसुमस्यापि सम्भवः। अथ ताम्रेऽव्ययत्वेन संस्थित-स्तदा सिद्धरसेनाप्यपनेतुं न शक्यते। तस्मात् सर्वमेतद्युक्तचा न सङ्गच्छते। तस्मादिदमत्रार्थसत्यम्। ताम्रेण सहोत्पन्नो ऽयं कलङ्को रससंयोगान् नश्यति। न पूर्वं न पश्चान्न तद्रहित इति निर्मलत्वेन स्वर्णत्वेन स्थिता सत्त्वता। एवं चित्तस्यापि दर्शयति - तद्वद् इत्यादि। शून्यता धूमादिमार्गः। ज्ञानता प्रत्यात्मवेद्यत्वम्। उक्तं चार्यनागार्जुनपादैर्धर्मधातुस्तवे -

तात्त्विक रूप में वे क्लेश आदि नहीं है यही दिखा रहे है उपर्युक्त तीन श्लोकों के द्वारा, क्योंकि वे मल आगन्तुक नहीं है क्योंकि अन्यथा वीतरागियों में राग का प्रसङ्ग उपस्थित हो जाता है। चित्त से पहले ही उत्पन्न भी नहीं हैं कारण के अभाव के चलते, निर्हेतुक भी नहीं हैं अन्यथा आकाश कुसुम जैसे होंगे। स्वभावतः भी नहीं हुए हैं अन्यथा नष्ट ही नहीं होंगे। यदि नष्ट भी होंगे तो दीप के तरह ही बुझ जायेंगे। इसीलिए उपर्युक्त श्लोकों में ताँबे के दृष्टान्त द्वारा पुष्ट कर रहे हैं इससे यह सिद्ध हो जाता है कि ताँबे के साथ ही हुए हैं और केमिकल रस द्वारा नष्ट होने के तरह ही चित्त के मल भी शून्यता (केमिकल) रस से नष्ट होते हैं चित्त निर्मल ज्ञानमय हो जाता है। शून्यता का अर्थ - धूमादि मार्ग है, ज्ञानता का अर्थ - प्रत्यात्मवेद्य ही है। इसे तो आर्य नागार्जुन ने भी धर्मधातु स्तुति में कहा है -

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निर्मलौ चन्द्रसूर्यौ हि आवृतौ पञ्चभिर्मलैः।
अभ्रनीहारधूमेन राहुवक्त्ररजोमलैः॥
एवं प्रभास्वरं चित्तमावृतं पञ्चभिर्मलैः।
कामव्यापादमिद्धेन औद्धत्यविचिकित्सया॥
अग्निशौचं यथा वस्त्रं मलिनं विविधैर्मलैः।
अग्निमध्ये यथाक्षिप्तं मलं दग्धं न वस्त्रता॥
एवं प्रभास्वरं चित्तं मलिनं रागजैर्मलैः।
ज्ञानाग्निना मलं दग्धं न दग्धं तत्प्रभास्वरम्॥
शून्यताहारकाः सूत्रा ये केचिद्भाषिता जिनैः।
सर्वैस्तैः क्लेशव्यावृत्तिर्नैव धातुविनाशनम्॥
पृथिव्यन्तर्हितं तोयं यथा तिष्ठति निर्मलम्।
क्लेशैरन्तर्हितं ज्ञानं तथा तिष्ठति निर्मलम्॥

निर्मल चन्द्र और सूर्य भी पाँच मलों से ढके जाते हैं। अभ्र - मेघ द्वारा, नीहारिका द्वारा, धूम, राहुवक्त्र और रज - धूलि के द्वारा, इसी प्रकार प्रभास्वर चित्त भी पाँच मलों से आवृत हो जाता है - काम, व्यापाद, मिद्ध, औद्धत्य एवं विचिकित्सा - ये पाँच मल हैं। जैसे ताम्र आदि धातु वस्त्रों में लगा हुआ मल अग्नि में जलाने से नष्ट हो जाता है किन्तु वह ताम्र आदि नष्ट नहीं होता और उसकी प्रभास्वरता प्रकट होती है। शून्यता को प्रकट करने वाले कुछ सूत्र भगवान् ने कहे हैं, उनके द्वारा क्लेशों की निवृत्ति होती है धातुओं का नाश नहीं होता। जैसे पृथिवी के अन्दर रहने वाला जल निर्मल पवित्र होता है उसी प्रकार अन्दर रहने वाला ज्ञान भी मलरहित ही होता है।

उक्तमार्यदेवपादैश्च - तमोऽपगतं क्षणात् प्रभास्वरमतिस्वच्छं सततालोकस्वभावं परमार्थसंत्यलक्षणं ज्ञानचक्षुषा पश्येदिति ज्ञानस्वभावं प्रभास्वरमिति च।

आर्यदेव ने भी कहा है - एक क्षण में ही अन्धकार नष्ट हो गया, प्रभास्वर, अतिस्वच्छ, निरन्तर प्रकाशात्मक परमार्थ सत्य है जिसे ज्ञान चक्षुओं से देखा जा सकता है। क्योंकि ज्ञान का स्वभाव प्रभास्वर है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रसविद्धो यथा लोहो न पुनर्लोहतां व्रजेत्।
सुखविद्धं तथा चित्तं न पुनर्दुःखतां व्रजेत्॥ ६॥

रस से विद्ध लौह फिर लौह नहीं हो सकता। सुख से विद्ध चित्त में फिर दुःख नहीं होता॥

रसेत्यादिश्लोकेन मुक्तस्य पुनः संसाराभाव उक्तः।

मुक्तपुरुष फिर संसार में नहीं लौट सकता यही भाव है।

न विरागात् परं पापं न पुण्यं सुखतः परम्।
अतोऽक्षरसुखे चित्तं वेशनीयं सदा नृप॥ ७॥

राग से बड़ा पाप नहीं है सुख से बड़ा पुण्य भी नहीं है इसीसे सदैव अक्षरसुख में अपने चित्त को लगाना चाहिए॥

नेत्यादि।

पापं रागविनाशतः प्रियतमाद्वेषो यतो जायते
द्वेषान् मोह इतः स्ववज्रपतनाच्चित्तस्य मूर्छा सदा।
अन्यस्मिन् विषये प्रवृत्तिरखिलासत्खानपानादिके
चित्तं तेन विडम्बितं हतसुखं षड्जन्मसु भ्राम्यते॥ इति।

राग के विनाश के पाप होता है क्योंकि सत्कामिनी में जिससे द्वेष उत्पन्न हो जाता है। द्वेष से मोह हो जाता है क्योंकि हर्ष नाश होने से मूर्छा होती है क्योंकि सुखनाश रूप उपेक्षा के कारण अन्य विषयान्तर में प्रवृत्ति होती है अतएव समग्र सांसारिक भोजन-पान आदि में होने वाली प्रवृत्ति के कारण चित्त भ्रमित-अशान्त हो जाता है, सुख नष्ट होता है फिर अनेक जन्मों तक भव में फँसा ही रहता है।

पापं रागविनाशतः करुणाक्षयात्मकत्वात्। एतदेव कस्मात्। यतो यस्मात् प्रियतमायां सत्कामिन्यां द्वेषः प्रेमनाशो मैत्रीक्षयात्मकः। जायत इति प्रत्येकमभिसम्बध्यते। द्वेषान् मोहः संहर्षनाशो मुदिताक्षयात्मकः। मूर्छा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुखनाशलक्षणा उपेक्षाक्षयात्मिकेति चतुर्ब्रह्मविहाराभावात् पापमेव कुतः पुण्यमिति।

ननु रागवृद्धिलक्षणा करुणा द्वेषनाशात्मिका मैत्री मोहक्षयात्मिका मुदिताक्षरसुखात्मिकोपेक्षेति किमेतदप्यस्ति। अस्ति बुद्धकपाले यथा -

शंका होती है कि राग की वृद्धि से करुणा, द्वेषनाश से मैत्री, मोहक्षय से मुदिता - अक्षर सुखरूपा है फिर क्यों यह कहा गया है। जैसा कि बुद्ध कपाल में कहा है -

दृष्टियुक्ता भवेत् करुणा मैत्र्यालिङ्गनस्य च।
संघृष्टियोगात्ममुदिता वराङ्गनायास् तथा॥
उभयमेलापके यदक्षरमुपेक्षा सा स्मृता मया।
एवं भावयोगयुक्तस्य कथं रागेण बाध्यते॥ इति।

श्रेष्ठ स्त्री को (दृष्टि) - देखने से करुणा होती है, आलिङ्गन से मैत्री, क्रिया निर्वृत्ति से मुदिता और दोनों के मिलन से जो अक्षर सुख रूप उपेक्षा है उसके स्मरणमात्र से मैंने जान लिया है आनन्द का स्रोत, इस प्रकार के भावयोगयुक्त व्यक्ति कैसे राग से बन्धन में हो सकता है?

वेशनीयम् इति मार्गभावनया। वाक्पथातीतत्वमक्षरसुखस्याह -

अक्षरसुख वचनातीत है यह दिखा रहे हैं -

वक्तुं न शक्यते सौख्यं कुमार्या सुरतं विना।
यौवने सुरतं प्राप्य स्वतो वेत्ति महासुखम्॥ ८॥

कुमारी के साथ सुरत क्रिया किए विना उस आनन्द को जैसे नहीं बताया जा सकता है और यौवन में सुरत से गुजरने के बाद वह महासुख स्वतः ही ज्ञात हो जाता है॥

एवं न शक्यते वक्तुं समाधिरहितैः सुखम्।
समाधावक्षरं प्राप्य स्वतो विन्दन्ति योगिनः॥ ९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसी प्रकार समाधि के महासुख को समाधि रहित के द्वारा नहीं बताया जा सकता है। समाधि में प्रविष्ट होने पर योगी स्वतः ही उस महासुख को जान जाते हैं॥

अक्षरजसुखज्ञाने सर्वज्ञैरपि शंक्यते।
तथा क्वचिन्न कर्तव्यो विरागो मनसोऽसुखात्॥१०॥

अक्षर से उत्पन्न सुखज्ञान में अवस्थित होने के लिए सर्वज्ञ भगवान् सक्षम हैं। इसीलिए मन को सुख से विरत कभी भी नहीं करना चाहिए॥

वक्तुं नेत्यादि यौवने सुरतं प्राप्य स्वयमेव वेत्ति। समाधिरहितैः शून्यतासमाधिरहितैः। विरागे मनसो ऽसुखम्। असुखाद् हेतोर् विरागो न कर्तव्यः। च्युतिरेव परम्परया संसारहेतुरिति दर्शयति -

च्युति ही परम्परा से संसार का कारण है यह दिखा रहे हैं -

च्युतेर्विरागसम्भूतिर्विरागाद्दुःखसम्भवः ।
दुःखाद्धातुक्षयः पुंसां क्षयान् मृत्युरिति स्मृतः॥११॥

च्युति से विराग, विराग से दुःख उत्पन्न होता है। दुःखों से धातुक्षय, धातुक्षय से मृत्यु कहा गया है॥

मृत्योः पुनर्भवस्तेषां भवान् मृत्युश्चच्युतिः पुनः।
एवं विरागसम्भूतेः सत्त्वानां नान्यथा भवः॥१२॥

मृत्यु से पुनर्जन्म होता है, पुनर्जन्म से फिर मृत्यु और च्युति। इस प्रकार विराग के द्वारा प्राणियों की दुःख परम्परा निरन्तर बनी रहती है॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन च्युतिरागं विवर्जयेत्।
येनाक्षरसुखं याति योगी संसारबन्धनात्॥१३॥

इसीलिए सभी प्रयत्नों के द्वारा च्युति राग को हटाना चाहिए। जिसके द्वारा योगी संसार बन्धन से छूट कर अक्षर सुख को प्राप्त होता है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

च्युतेर् इत्यादि। एवम् इत्युक्तक्रमेण सत्त्वानां विरागसम्भूतिः। नान्यथेति। यदि तेषां च्युतिहेतुका विरागसम्भूतिर्न भवति तदा नान्यप्रकारेण तेषां भवः संसारः। तस्माच् च्युतिरेव कारणमित्यर्थः। यत एवं तस्माच् च्युतिरागं विवर्जयेत्। यथा पञ्चलक्षाभिधाने –

यदि च्युति का कारण विराग न हो तो उसके प्रवाह में संसार भी नहीं होगा इसीलिए मृत्यु–जन्म आदि का कारण च्युति ही है यह बताया गया है। जैसा कि पञ्चलक्षणाभिधान में कहा गया है –

क्षराविद्यानिरोधेन संस्कारस्य निरोधनम्।
संस्कारस्य निरोधेन विज्ञानस्य निरोधनम्॥
विज्ञानस्य निरोधेन नामरूपनिरोधनम्।
नामरूपनिरोधेन षडायतनरोधनम्॥
षडायतननिरोधेन स्पर्शस्य निरोधनम्।
स्पर्शस्य च निरोधेन वेदनाया निरोधनम्॥
वेदनाया निरोधेन तृष्णायाश्च निरोधनम्।
तृष्णायाश्च निरोधेनोपादानस्य निरोधनम्॥
उपादानस्य निरोधेन भवस्यापि निरोधनम्।
भवस्यापि निरोधेन जातेरपि निरोधनम्॥
जातेरपि निरोधेन जरामरणरोधनम्।
निरोधः स्कन्धधातूनां सैवोपशमनं स्मृतम्॥
एवं कायनिरोधेन प्राणस्यापि निरोधनम्।
प्राणस्य च निरोधेन बोधिचित्तनिरोधनम्॥
बोधिचित्तनिरोधेन च्यवनस्य निरोधनम्।
च्युतिक्षणनिरोधेन बुद्धत्वं सर्वदेहिनाम्॥
एवं क्लेशनिरोधेन कर्मणो ऽपि निरोधनम्।
कर्मणश्च निरोधेन दुःखस्यापि निरोधनम्॥
दुःखस्यापि निरोधेन क्लेशोत्पादो भवेन्न सः।
क्लेशोत्पादं विनोत्पादः कर्मणो नैव जायते॥
तस्योत्पादं विनोत्पादो दुःखस्यापि न जायते।
दुःखं विना सुखी योगी सत्त्वार्थं कुरुते सदा॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षरात्मक-अविद्या के निरोध से संस्कार का निरोध, संस्कार के निरोध से विज्ञान का निरोध, विज्ञान के निरोध से नामरूप का निरोध, रामरूप के निरोध से षडायतन निरोध, षडायतन निरोध से स्पर्श निरोध, स्पर्श निरोध से वेदना निरोध, वेदना निरोध से तृष्णा का निरोध, तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध, उपादान निरोध से भव निरोध, भव निरोध से जाति का निरोध, जाति निरोध से जरामरण निरोध होता है। इस प्रकार स्कन्ध-धातुओं के निरोध ही उपशमन कहा गया है। एवं - काय के निरोध से प्राण का निरोध, प्राण के निरोध से बोधि चित्त का निरोध, बोधिचित्त के निरोध से च्यवन का निरोध, च्युति के निरोध से सभी प्राणी बुद्धत्व प्राप्त कर रहे हैं। इस प्रकार क्लेश के निरोध से कर्म का भी निरोध हो जाता है। कर्म के निरोध से दुःख का निरोध, दुःख के निरोध से क्लेशोत्पाद नहीं होता है। क्लेशोत्पाद के विना कर्म की उत्पत्ति ही नहीं होती। उसके विना दुःख संभव नहीं है। दुःख के विना - दुःख नष्ट होने पर योगी सुखी होता है और समग्र प्राणियों के कल्याणार्थ सदा लग ही जाता है।

येनेति च्युतिसुखविवर्जनेन। कामुक इत्यादिनाक्षरसुखे यत्नमाह -
अक्षर सुख में य़त्न करने के लिए इस प्रकार कह रहे हैं -

कामुकोऽपि विरागान्न कामशास्त्रं समीहते।
मयोक्ते किं पुनस्तन्त्रे योगी दुःखं समीहते॥ १४॥

विरागी होकर कामुक व्यक्ति भी काम शास्त्र को नहीं चाहत्ता है तो मेरे द्वारा बताए हुए तन्त्र में योगी क्यों दुःख चाहेगा? ॥

दुःखं विरागलक्षणम्।
दुःख ही विराग का लक्षण है।

शुक्राक्षरस्वभावेन साधयेत् परमाक्षरम्।
आधारे च्युतिमापन्न आधेयस्य विरागता॥ १५॥

शुक्राक्षर स्वभाव द्वारा परम अक्षर को सिद्ध करना चाहिए। आधार में च्युति होने पर आधेय में विरागता उत्पन्न होती है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आधाराधेयसम्बन्धो यावन्नाक्षरतां व्रजेत्।
चित्तमक्षरतां प्राप्तं नाधाराधेयलक्षणम्॥ १६॥

आधार और आधेय का सम्बन्ध जब तक अक्षर सुख में परिवर्तित नहीं होते तब तक आधार आधेयता में फँसा हुआ चित्त अक्षर को प्राप्त नहीं होता है॥

शुक्रेत्यादि। यस्माद् आधारे शुक्रे च्युत आधेयस्य सुखस्य विरागता भङ्गस् ततः शुक्रस्यैवाक्षरत्वेन महासुखं साध्यम्। तावच्चायम् आधाराधेयभेदो यावद् उष्णीषे न पूर्णता। पूर्णतायां चित्तमक्षरतां प्राप्तं यदा तदा नाधाराधेयलक्षणम्। वैमल्यावस्थामाह -

आधार - शुक्र है। आधेय - सुख है। विरागता - भङ्ग है। इसी से शुक्र ही अक्षर सुख का आधार हो जाता है। पूर्णता में ही चित्त अक्षर हो जाता है। विमल अवस्था का वर्णन कर रहे हैं -

अक्षरोद्भवकायस्य ऊर्णाचक्रगतस्य तु।
आलिकालिसमायोगो हूंकारो नेष्यते नृप॥ १७॥

प्राणवायु जो अक्षर से समुत्पन्न है वह जब आलि-काली-योग से ललाट में प्रविष्ट हो जाता है वहाँ पर हूँ कार की आवश्यकता नहीं रहती है॥

अक्षरेत्यादि। इहाक्षरं परमाक्षरसुखज्ञानम्। तस्मादुद्भवतीत्यक्षरोद्भवः। कायः स्कन्धधात्विन्द्रियादिशरीरं यस्य तस्य परमाक्षरोद्भवकायस्योर्णाचक्रं ललाटचक्रम्। तद्गामित्वेनोष्णीषगा षोडशी कला सामर्थ्यादुक्तास्याधेयः। आकारादिस्वरपरिणतश्चन्द्रः कादिव्यञ्जनपरिणतः सूर्यः। तयोः सम्पुटे नाधार आलिकाल्योर् वामदक्षिणयोर्वा समायोगो मीलनं मध्यमाप्रवाहित्वं नापि हूंकारादिपरिणतं मण्डलनायकरूपमाधेयम्। किंतूष्णीषमणि-वरटकस्थचन्द्रसूर्यावाधारः सर्वव्यापिमहासुखरूपमाधेयम्। तदुक्तं विमलप्रभायाम् -

अक्षर यहाँ परमसुख ज्ञान ही है। काय - स्कन्ध-धातु-आयतन-इन्द्रिय-शरीर आदि हैं, जिसमें स्थित उर्णा चक्र ललाट चक्र है। उसी से आगे सहस्रार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में १६ कला रूप आधेय है। अकारादि स्वर चन्द्र है, कादिव्यञ्जन सूर्य है। आलि-काली-दक्षिण वाम नासिका स्थित नाडी - वायु है। विमलप्रभा में भी यही कहा है -

एकं पदं वज्रमणौ रजोऽर्के उष्णीषशुक्रे शशिनि द्वितीयम्।
न्यस्तं सदाछेद्यमभेद्यमिष्टं भर्तुस् त्रिलोकमहितं शिरसा प्रणम्य॥
इति।

वज्रमणि में एकपद है जहाँ सूर्य किरण हैं, सहस्रार शुक्र में दूसरा चन्द्र है। सदा अछेद्य, अभेद्य और इष्ट प्रभु का तेज वहाँ विराजमान है, जो तीनों लोकों से पूजित है उसे मैं शिर से प्रणाम करता हूँ।

भर्तुर्बोधिचित्तवज्रस्य श्रीकालचक्रस्य।
पद्यते गम्यते येन तत् पदं ज्ञानमक्षरम्।

भर्ता यहाँ पर बोधिचित्त वज्र रूप श्रीकालचक्र हैं। जिससे प्राप्त किया जाता है या जाया जाता है वही पद है जो ज्ञान अक्षर रूप है।

न्यस्तमारोपितमविद्यानिरोधाय। वज्रमणावप्रतिष्ठितनिर्वाणभूमौ रजोऽर्के महीमण्डतले ज्ञानधातावेकं यद्दक्षिणमित्येकपादतलाक्रान्तः। उष्णीषे भवसुखातिक्रान्ते शुक्रशशिनि पादाङ्गुष्ठनखे प्राक्कामकलोदयात्मके विज्ञानधातौ द्वितीयं यद्वाममिति ब्रह्माण्डशिखराक्रान्तः। सदा कालत्रये। क्लेशावरणातिक्रान्तत्वादविद्याज्ञानकर्त्तिकयाच्छेद्यम्। विज्ञानधर्मतातीतत्वाद् ग्राह्यग्राहककोटयाभेद्यम्। महासुखरूपत्वादिष्टं कृतकृत्यस्थले मणौ स्थितम्। लोकाचारोज्झितत्वात् त्रिलोकमहितम्। संसारपारकोटावुष्णीषे स्थितमिति। एतदुक्तं भवति। यदूर्ध्वाधो निरुद्धषण्णाडिकास्वभावषड्धातुको ज्ञानकायो भगवांस् त्रैधातुकवन्दितचरणारविन्दः शुक्लकृष्णपक्षस्य भवविभवात्मकस्य निरावरणतया द्विपञ्चदशशून्यताकरुणात्मकाभ्यां पादाभ्यां चन्द्रसूर्यस्वरूपाभ्यां संसारनिर्वाणमार्गावरोधकाभ्यां पूर्णिमा ममावस्यां चाभिव्याप्तवाञ् जगदेकभर्ता। तस्य पदं प्रणम्येति।

अविद्या के निरोध के लिए यह ज्ञान वहाँ पर रखा गया है। वज्रमणि में - अप्रतिष्ठित निर्वाण भूमि में, रज रूप सूर्य में, पृथिवी मण्डल में, ज्ञानधातु में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो दक्षिण है वह एक पैर पृथिवी में रखता है। उष्णीष में अर्थात् भवसुख से अतिशय अलौकिक सुख में शुक्रचन्द्र में पहले काम कला के उदय में, विज्ञान धातु में, दूसरा जो वाम है ब्रह्माण्ड शिखर से आक्रान्त है। इसका संक्षेप में तात्पर्य यही निकलता है कि ऊपर और नीचे, जिसने ६ नाडियों को निरुद्ध कर लिया है और जो ज्ञानकाय रूप है, वह भगवान् है, तीनों धातुओं के सत्त्वों द्वारा चरण वन्दित हैं वे – शुक्लकृष्ण पक्ष के भवविभवात्मक निरावरण होने से शून्य-करूणा रूप पैरों से जो पैर चन्द्र सूर्य स्वरूप हैं, उनसे संसार निर्वाण जगत् को ढके हुए हैं, इसीलिए जगत् के एकमात्र स्वामी हैं, उनके इन पैरों को प्रणाम करके कहा गया है।

परमाक्षरज्ञानसिद्धौ त्वक्षरशब्देन परमाक्षरसुखज्ञानं वज्रसत्त्व इति। तथा मनस्त्राणभूतत्वान् मन्त्रो ऽपि परमाक्षरज्ञानमुच्यते। मूलतन्त्रे च –

परमाक्षर ज्ञान सिद्धि में अक्षर शब्द के द्वारा परमाक्षर सुख जो वज्रसत्त्व हैं उनको कहा गया है। मन को त्राण करने के कारण ही मन्त्र भी परमाक्षर ज्ञान कहा जाता है। मूल तन्त्र में भी कहा है –

कायवाक्चित्तधातूनां त्राणभूतो यतस्ततः।
मन्त्रार्थो मन्त्रशब्देन शून्यताज्ञानमक्षरम्॥
पुण्यज्ञानमयो मन्त्रः शून्यताकरुणात्मकः। इति।

काय-वाक्-चित्त धातुओं का त्राणभूत यह मन्त्र है यही मन्त्रार्थ है, मन्त्र शब्द से शून्यता का बोध होता है जो अक्षर ज्ञान है। पुण्य ज्ञानमय ही मन्त्र होता है। शून्यता और करुणात्मकता उसमें रहती हैं।

तथापराध्यात्मिका विद्या प्रज्ञापारमिता प्रकृतिप्रभास्वरा महामुद्रा सहजानन्दरूपिणी धर्मधातुनिष्यन्दपूर्णावस्था सहजतनुरित्युच्यते जिनैः। तौ प्रतीत्यसमुत्पन्नानामिन्द्रियाणामगोचरौ दिव्येन्द्रियगोचरौ वज्रसत्त्व-बुद्धमातरौ परमाक्षरसुखस्वभावौ परमाणुधर्मतातीतावादर्शप्रतिसेना-स्वप्नतुल्यौ परमाक्षरस्वरूपाविति। अत्राक्षराणि रूपवेदनासंज्ञासंस्कार-विज्ञानानि। निरावरणानि पञ्चाक्षरमहाशून्यान्युक्तानि। तथा पृथिव्यप्तेजो-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाय्वाकाशधातवो निरावरणाः पञ्चाक्षराण्युक्तानीति। षडक्षराणि चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकायमनांसि निरावरणानि प्रत्येकं स्वस्वविषयग्रहण-विवर्जितानि। तथा रूपशब्दगन्धरसस्पर्शधर्मधातवो निरावरणाश्च षडक्षराण्युक्तानीति। एतानि स्कन्धधात्वायतनान्येकसमरसीभूतानि बिन्दुशून्यो भवति। स च बिन्दुरच्युतः सन् परमाक्षर उच्यते। परमाक्षरो ऽप्यकारः। अकारसम्भवः सम्यक्सम्बुद्धः प्रज्ञोपायात्मको वज्रसत्त्वो नपुंसकपदं सहजकाय इत्युच्यते ज्ञानज्ञेयात्मको हेतुफलयोरभेदत्वात्। स च कालचक्रो भगवान् परमाक्षरः सुखपदम्। उक्तं च नामसङ्गीत्यां -

तथा अपरा आध्यात्मिक विद्या ही प्रज्ञापारमिता है जो प्रकृति प्रभास्वर है, महामुद्रा है, सहजानन्दरूपा है, धर्मधातु निःस्यन्दपूर्णावस्था है। जिसे सहज तनु ऐसा जिनों ने कहा है। उन्हें आधार बनाकर उत्पन्न इन्द्रियों से अगोचर अर्थात् दिव्य-इन्द्रियों के विषयभूत परमाक्षर सुख स्वभाव हैं, जो बुद्ध की माता और वज्रसत्त्व स्वरूप हैं - परमाणु धर्मता से अतीत, आदर्श प्रतिसेना स्वप्न के समान ही परमाक्षर स्वरूप युक्त हैं। अक्षर - रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान हैं। निरावरण - पञ्चाक्षर महाशून्य हैं। तथा पृथिवी आदि धातु भी निरावरण हैं। षडक्षर - चक्षुःश्रोत्र - घ्राण आदि मन तक निरावरण हैं वे अपने विषय-ग्रहण से वर्जित हैं। इसी प्रकार रूप-शब्द-गन्ध आदि और धर्म धातु भी निरावरण षडक्षरयुक्त हैं। वे स्कन्ध-धातु-आयतन आदि एकरस होकर बिन्दु शून्य होते हैं। वही बिन्दु अच्युत होकर परमाक्षर कहा जाता है। परमाक्षर अकार है। अकार से निर्गत - उत्पन्न सम्यक्संबुद्ध है। वही प्रज्ञोपायरूप वज्रसत्त्व है जिसे सहजकाय भी कहा गया है - क्योंकि ज्ञान और ज्ञेय रूप हेतु फल में अभेद है। वह कालचक्र भगवान् परमाक्षर सुखपद है। नाम संगीति में कहा भी है -

सर्वमन्त्रार्थजनको महाबिन्दुरनक्षरः।
पञ्चाक्षरो महाशून्यो बिन्दुशून्यः षडक्षरः॥

सर्वमन्त्रों के अर्थ के जनक, महाबिन्दु, अनक्षर, पञ्चाक्षर, महाशून्य, बिन्दु शून्य और षडक्षर हैं।

मूलतन्त्रे च मूलतन्त्र में भी कहा है -

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अकारसञ्ज्ञया प्रोक्तो धर्मधातुर्महाक्षरः।
वज्रयोनिर्जिनेन्द्राणां कायवाक्चित्तकारणम्॥
तद्यथा भगवान् बुद्धः सम्बुद्धो ऽकारसम्भवः।
अकारः सर्ववर्णाग्र्यो महार्थः परमाक्षरः॥
महाप्राणो ह्यनुत्पादो वागुदाहारवर्जितः।
सर्वाभिलापहेत्वग्रः सर्ववाक्सुप्रभास्वरः॥
कायवाक्चित्तनिष्पत्तिस् त्रिवज्राभेद्यधर्मिणी।
यस्याः सा जिनकायानां वज्रयोनिः प्रगीयते॥
सर्वैश्वर्यादिधर्माणां बुद्धानामुदयो यतः।
स धर्मोदय आख्यातः पुण्यज्ञानमयः परः॥ इति॥

अकार से धर्मधातु महाक्षर कहा गया है। काय, वाक् और चित्त के कारण जिनेन्द्र की वज्रयोनि ही है। जैसा कि भगवान् बुद्ध - सम्बुद्ध, अकार से निर्गत, उद्भुत हैं। अकार सभी अक्षरों में प्रथम है, वही महार्थ है, परमाक्षर है, महाप्राण है, अनुत्पाद है, वचनों से परे है। सभी शब्दों के कारणों में अग्रस्थान में है। सभी वाणियों में तेजस्विनी है। काय, वाक् और चित्तों के कारण है, त्रिवज्रों से अभेद्य है, वह समग्र जिन कायों की वज्रयोनि अर्थात् कारण कहलाती है। जहाँ से समग्र ऐश्वर्य आदि धर्मों का, बुद्धों का भी उदय हुआ करता है। वही धर्मोदय कहा गया है, वही पुण्य ज्ञानमय है। वही पर अर्थात् उत्तम है।

इति श्रीनारोपापादविरचितायां कालचक्रतन्त्रस्य सेकोद्देशटीकायां मलप्रकरणं समाप्तम्।

मलप्रकरण पूरा हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथाष्टमं कार्यकारणभावसम्बन्धप्रकरणम्

कार्यकारणभावसम्बन्ध

इयता च समाध्यङ्गमुद्दिश्येदानीं संवृत्या हेतुफलभावमाह -

अब तक समाधि के अङ्गों को बताकर अब संवृति के आधार पर कारणकार्य के स्वभाव को बताते हैं -

बिम्बं शून्योद्भवं हेतुः फलमक्षरजं सुखम्।
फलेन मुद्रितो हेतुर्हेतुना मुद्रितं फलम्॥ १॥

बिम्ब शून्य से उद्‌भूत है वही हेतु भी है, उसका फल अक्षर से समुत्पन्न सुख विशेष है। फल से हेतु संयुक्त है और हेतु से फल भी संयुक्त ही है। दोनों भिन्न नहीं हैं॥

बिम्बम् इत्यादि। शून्याद् आकाशाद्भूतं बिम्बं सर्वाकारलक्षणं हेतुः कारणम्। शुक्राक्षरजं सुखं फलम्। हेतुश् च फलेनानास्रवसुखेन मुद्रितः सुखरूपः कृतः। हेतोरपि सुखरूपत्वात्। हेतुना चैवम्भूतेन मुद्रितम् अनास्रवसुखम्। तस्यापि निरालम्बशून्यतात्मकत्वात्। एतद् द्वयं शून्यताकरुणालक्षणमित्याह -

शून्य - आकाश है। बिम्ब - सर्वाकार लक्षण हेतुभूत है। फल - आश्रवसुख है। मुद्रित - मिला हुआ है। इन दोनों का शून्यता - करूणा में ही परिणति होती है यही कह रहे हैं -

शून्यता बिम्बधृग्धेतुः करुणाक्षरधृक् फलम्।
शून्यताकरुणाभिन्नं बोधिचित्तं तदच्युतम्॥ २॥

बिम्ब ग्राहक चित्त ही शून्यता है, अनालम्बन करूणा ही फल है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसीलिए शून्यता और करूणा में कोई भेद नहीं है। बोधिचित्त अच्युत अवस्था है॥

शून्यतेत्यादि। सालम्बशून्यता बिम्बधृक् चित्तं हेतुः। अनालम्ब-करुणाक्षरधृक् फलम्। अनयोः शून्यताकरुणयोर् यद् अभिन्नत्वमेकत्व-लक्षणं बोधिचित्तं तदच्युतम् उच्यते। नान्यत् कर्मज्ञानमुद्राजनितं क्षरस्पन्द-लक्षणम्। एतच्चोच्छेदसंसाररहितमित्याह -

कर्मज्ञानमुद्रा से उत्पन्न क्षरस्पन्दन है। यह उच्छेदवाद एवं संसार रहित है यही बताते हैं -

निर्वाणरहितं बिम्बं संसारातीतमक्षरम्।
शाश्वतोच्छेदनिर्मुक्तस्तयोर्योगोऽद्वयोऽपरः॥ ३॥

बिम्ब निर्वाण से रहित है, संसारातीत है, अक्षर है। शाश्वत और उच्छेद दोनों से रहित, उन दोनों का योग रूप अद्वय अतिशय उत्कृष्ट है॥

निर्वाणेत्यादि। निर्वाणेन तुच्छरूपेण रहितं बिम्बम्। संसारेण क्षरसुखलक्षणेनातीतम् अनास्रवमहासुखम् अक्षरम्। तयोर् अक्षरबिम्बयोर् योगो ऽद्वयो ऽपर उत्कृष्टः। अत एवाह - शाश्वतोच्छेदनिर्मुक्त इति।

अत्रोपपत्तिमाह -

इस पर उपपत्ति-तर्क दिखाते हैं -

अभावो नास्ति बिम्बस्य अभावोद्भूतलक्षणात्।
भावो नास्त्यक्षरस्यापि भावसम्भूतलक्षणात्॥ ४॥

बिम्ब का अभाव नहीं है, क्योंकि अभाव लक्षण से उत्पन्न होता है। अक्षर का भी भाव नहीं है, क्योंकि भाव भी लक्षण से ही उत्पन्न होता है॥

अभावभावसंयोगो वज्रयोगोऽद्वयोऽपरः।
रूपारूपविनिर्मुक्तः प्रतिसेनेव दर्पणे॥ ५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभाव और भाव का संयोग ही वज्रयोग है, वही अद्वय और उत्कृष्ट है, रूप और अरूप से निर्मुक्त भी है, दर्पण में कुमारिका के प्रतिसेना के समान ही है॥

बिम्बं न भवमायाति नापि निर्वाणमक्षरम्।
अन्योन्यालिङ्गितं शान्तं नपुंसकपदं परम्॥ ६ ॥

बिम्ब संसार में नहीं आता है और निर्वाण में भी नहीं जाता है। एक दूसरे के परिपूरक हैं, वही शान्त है लिङ्गवर्जित और अतिशय उत्कृष्ट भी है॥

अभाव इत्यादि। बिम्बस्य सर्वाकारस्वचित्ताभासस्याभाव उच्छेदो नास्ति। कुतः। अभावोद्भूतलक्षणात्। अभावाच् छून्यात् केवलामल-नभस्तलादेव प्रत्यात्मवेद्यस्य त्र्यध्वत्रैधातुकप्रतिभासस्योत्पत्तेः। वक्ष्यति चात्र मूले - गगनोद्भवबिम्बेन सेवितेन तथात्मनः। इति। अक्षरस्यानास्रव-सुखस्य न भावो ऽस्ति। कुतः। भावसम्भूतलक्षणात्। प्रतिभासमानबिम्ब-लक्षणभावसम्भूतत्वात्। एतच्च प्रज्ञा हेतोरजातत्वाद् इत्यादिना स्फुट-यिष्यति। यद्वा मणेरूर्ध्वगशुक्ररूपभावाल्लोकविलक्षणनिरास्रवसुखस्य सम्भूतेः। अभावभावाव् उक्तलक्षणे। शून्यताकरुणयोरनयोः संवृति-परमार्थसत्यस्वभावयोः संयोगो मीलनं वज्रयोगः। स चाद्वयो युगनद्धाख्यो ऽक्षरश्चेत्येतदेव तत्त्वम्। तदुक्तमार्यदेवपादैः सूतके -

बिम्ब अर्थात् सर्वाकारस्वचित्ताभास का अभाव नहीं होता। अभाव से अर्थात् मलरहित आकाश से ही प्रत्यात्मवेद्य त्र्यध्व-त्रैधातुक प्रतिभास की उत्पत्ति होती है। अक्षर - अनास्रव सुख ही है। संयोग - वज्रयोग - अर्थात् शून्यता और करूणा के संवृति - परमार्थसत्यस्वभाव का संयोग - मीलन कहा गया है। अद्वय - अर्थात् युगनद्ध नामक अक्षर, यही तत्त्व है। इसे ही आर्यदेव ने सूतक में कहा है -

यद्भूतं तत् तत्त्वम्। किमेतद्भगवन् भूतं नाम। यदविसंवादकं तद्भूतम्। किमेतदविसंवादकं नाम। यो भूतनयात्मकः समाधिस्तदविसंवादकम्। क एष भूतनयात्मकः समाधिर्नाम। यत् सत्यद्वयाद्वैधीकारलक्षणं स

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूतनयात्मकः समाधिः। किमेतद्भगवन् सत्यद्वयं नाम। प्रथमं संवृतिसत्यं द्वितीयं परमार्थसत्यं च। इति।

जो भूत है वही तत्त्व है। हे भगवन् यह भूत क्या है? जो अविसंवादक है वही भूत है। यह अविसंवादक क्या है? जो भूतनयात्मक समाधि है वही अविसंवाद है। यह भूतनयात्मक समाधि क्या है? जो सत्य-द्वय का अद्वैधीकार लक्षण ही भूतनयात्मक समाधि है। यह सत्यद्वय क्या है? प्रथम संवृतिसत्य है दूसरा परमार्थ सत्य है।

अत एव रूपारूपविनिर्मुक्त इत्युच्यते। प्रतिसेनायां हि दर्पणाद्युपलभ्यमानशरीरायां न रूपलक्षणं परमाणुद्रव्यसन्दोहाभावान्नारूपलक्षणमुपलभ्यमानस्य दुरपक्रमत्वात्। तस्मान् न बिम्बं भवं संसारम् आयाति निर्वाणम् उच्छेदं याति नाक्षरम्। अन्योन्यालिङ्गितं शान्तम् अविकारीन्द्रियविकाररहितत्वात्। इदमेवोभयात्मकं नपुंसकपदं केवलप्रज्ञोपायपक्षयोरभावात्। परम् उत्कृष्टं सकलजगदसाधारणत्वात्।

नपुंसकपद - केवल प्रज्ञोपायपक्षों के अभाव एवं उपयात्मक होने से भी नपुंसकपद है।

ननु महामुद्रासमुत्पन्नत्वात् सहजस्य हेतुजत्वं महामुद्रायाश्च हेतुत्वम्। एवं हि हेतुः फलं च द्वयमप्यनतिक्रान्तम्। अतः कर्ममुद्रा ज्ञानमुद्रा च हेतुरस्तु। महामुद्राया अपि को वै विशेष इत्याह -

शंका - महामुद्रा के उत्पन्न होने से सहज का कारण है और महामुद्रा का भी हेतु है। इस प्रकार हेतु और फल दोनों ही अनतिक्रान्त हैं। अतः कर्ममुद्रा और ज्ञानमुद्रा दोनों कारण हो जाना चाहिए। महामुद्रा का भी क्या विशेष है? यह बता रहे हैं -

प्रज्ञा हेतोरजातत्वात् प्रज्ञाहेतूद्भवं फलम्।
प्रज्ञा हेतोरजातत्वात् प्रज्ञाजातं न हेतुजम्॥ ७॥

प्रज्ञा कारण से उत्पन्न नहीं है। प्रज्ञा रूपी हेतु से फल उत्पन्न होता है। प्रज्ञा हेतु से उत्पन्न न होने के कारण प्रज्ञोत्पन्न हेतुत्पन्न भी नहीं है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रज्ञेत्यादि। प्रज्ञा बिम्बलक्षणा सर्वाकारावबोधरूपिणी सर्वधर्म-शून्यता। सा च हेतोः सकाशान्न सम्भूता न जाता। अकृतत्वात् प्रकृतेः परमार्थतः। यदपि प्रज्ञाहेतूद्भवं फलं प्रज्ञाजातम् इत्यभिधीयते तदपि न हेतुजम् इति प्रज्ञाहेतुजं न भवति। कुतः। प्रज्ञाहेतोर् न जातत्वात्। प्रज्ञाया अहेतुजत्वात् फलमपि सहजाख्यं कथमिव हेतुजं भवितुमर्हति प्रागेव हेतुकथाया निरासात्।

प्रज्ञा बिम्बलक्षणा है जो सर्वाकारा व बोधरूपिणी है जो सर्वधर्मशून्यता के नाम से प्रसिद्ध है। वह हेतु से उत्पन्न नहीं है।

अतो न हेतुजं ज्ञानं प्रज्ञाज्ञानमनुत्तरम्।
फलेन हेतुनान्योन्यं न परस्परमुद्रणम्॥ ८॥

अतः अनुत्तर प्रज्ञात्मक ज्ञान है वह हेतु से समुत्पन्न नहीं है। फल से हेतु और हेतु से फल अन्योन्य मिश्रण नहीं है॥

अतोऽस्मात् करणाद्यदक्षरं ज्ञानं तत् प्रज्ञाज्ञानं न हेतुजम्। ततश्च हेतुफलभावाभावात् फलेनैव हेतुर्मुद्रितो हेतुनैव वा फलमित्यन्योन्यम् अपि न भवति। फलेनापि हेतुर्मुद्रितो हेतुनापि फलमिति परस्परम् अपि न भवति। कुत इत्याह -

क्योंकि -

हेतुः फलं च यत् सर्वं तत् प्रतीत्यसमुद्भवम्।
अन्योन्यमुद्रितं बिम्बं नोत्पन्नं न च निर्वृतम्॥ ९॥

हेतु और फल से दोनों भी प्रतीत्य समुत्पन्न हैं। एक दूसरे के साथ मिले हुए बिम्ब उत्पन्न भी नहीं हैं और उत्पाद व्ययरहित भी नहीं हैं॥ १५४ ॥

प्रज्ञा चात्यन्तनिर्वृता उत्पन्नश्च परोऽक्षरः।
हेतुफलविनिर्मुक्तिर्न परस्परमुद्रणम्॥ १०॥

प्रज्ञा अत्यन्त निर्वृत है परम अक्षर उत्पन्न भी है। हेतु और फल की मुक्ति - निवृत्ति परस्पर मुद्रण नहीं है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हेतुर् इत्यादि। यतो हेतुफले प्रतीत्यसमुत्पन्नत्वात् संवृते तस्य लोकोत्तरत्वेनानादिनिधनत्वात्। अतोऽन्योन्यमुद्रितम् उभयाभिन्नयुग-नद्धाख्यं बिम्बं नोत्पन्नं न च निर्वृतम् उत्पादव्ययरहितम्। उक्तं च– उत्पादाद्वा तथागतानामनुत्पादाद्वा तथागतानां स्थितैवैषा धर्माणां धर्मतेति। यतश्चोभयाभिन्नबिम्बस्य प्रज्ञाभाग आदिशान्तत्वान्नित्यानुत्पन्नः। उपायभागस्तु प्रत्यात्मवेद्यत्वात् सदोदित एव। ततो ऽपि न हेतुफलत्वं नापि परस्परमुद्रणम्। अन्योन्यामुद्रितत्वे युक्त्यन्तरमाह –

अन्योन्य मुद्रित – उभय अभिन्न होने से युगनद्ध हैं इसीलिए बिम्ब न उत्पन्न है न ही उत्पाद व्यय रहित भी है। तथागत के अनुत्पाद से, तथागत के स्थिति से ही यह धर्मों की धर्मता है। क्योंकि उभय भिन्न बिम्बों का प्रज्ञा भाग आदि शान्त होने से नित्य और अनुत्पन्न है। एक दूसरे से न मिलने में युक्ति बता रहे हैं –

अजातस्यानिरुद्धस्य यज्ज्ञेयस्येह दर्शनम्।
तत् स्वचित्तस्य नान्यस्य बाह्यज्ञेयविभागतः॥११॥

अजात, अनिरुद्ध, ज्ञेय का जो दर्शन है वह सब अपने ही चित्त का दर्शन है क्योंकि बाह्य ज्ञेय का विभाग होने से अन्य किसी का दर्शन नहीं है॥

अजातस्येत्यादि। ज्ञानाकारव्यतिरिक्तस्य बाह्यस्यासम्भवात् स्वचित्तमेव त्रैधातुकाकारतया बहिर्विभक्तमेवोपलभ्यते। न स्वचित्ता-दन्यत्। योगिनस्तदानीं स्वपरविभागविकल्पाभावात्। उक्तं च हेवज्रे –

ज्ञानाकार के अतिरिक्त बाह्य आकार संभव न होने से स्वचित्त ही त्रैधातुक के आकार के रूप में बाहर विभक्त जैसा लगता है। वह सब चित्त से भिन्न नहीं है। योगी के लिए उस समय स्व और पर विकल्प नहीं रह जाता है। हेवज्र में भी कहा है –

स्वर्गमर्त्यैश्च पातालैरेकमूर्तिर्भवेत् क्षणात्।
स्वपरभागविकल्पेन बाधितुं नैव शक्यते॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तत्काल ही एक हो जाते हैं क्योंकि स्व और पर भागरूप विकल्प से यह एकत्व बाधित नहीं हो सकता।

बाह्यज्ञेयविभागत इति बाह्यज्ञेयं पृथक्कृत्वा।
बाह्य ज्ञेय विभाग का अर्थ – बाह्य ज्ञेय पदार्थ को अलग करना ही है।

अतो न चात्मनात्मानं मुद्रितुं शक्यते क्वचित्।
किं छिनत्ति महाखड्ग आत्मानमात्मधारया॥ १२ ॥

इसीलिए अपने द्वारा अपने को ही मुद्रित नहीं किया जा सकता है। क्या महान् खड्ग भी अपने आप को कभी काट सकता है? ॥

अतो नेत्याद्युपसंहारः। किं छिनत्तीत्यादिदृष्टान्तः।

ननु महामुद्राया अजातत्वात् फलमप्यसम्भवि, न ह्यनुत्पन्नस्य कस्यचिद् धर्मस्य किंचिदेव फलमनुभूयते कैश्चिदपीत्याह –

शङ्का – महामुद्रा अजात होने से फल भी असंभव हो जाता है। क्योंकि अनुत्पन्न किसी भी पदार्थ का कोई फल कभी अनुभूत नहीं हो सकता।

वन्ध्यादुहितृसङ्गेन स्वप्ने सौख्यं यथा भवेत्।
गगनोद्भवबिम्बेन सेवितेन तथात्मनः॥ १३॥

पैदा न हुई अपनी लड़की को स्वप्न में देखकर माता या पिता को जैसा सुख होता है उसी प्रकार आकाश से उत्पन्न बिम्ब के सेवा से अपने को वैसा ही (योगी को) सुख होता है॥

वन्ध्येत्यादि। अनुत्पन्नाया अपि वन्ध्यादुहितुः संयोगे स्वप्नकाले सौख्यं यदनुभूयते तदाकाशोद्भवबिम्बसेवनात् फलरूपं सहजसुखं योगिभिः संवेद्यत एव। न हि प्रज्ञोपायेन्द्रियानुत्पन्नं महामुद्रासमुत्पन्न-माकाशम् इवावरणवर्जितं सर्वभूतस्थम् अतत्त्वविद्भिर्वेद्यते।

प्रज्ञोपायरूप, इन्द्रियों से अनुत्पन्न, महामुद्रा समुत्पन्न आकाश के तरह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आवरण रहित, सभी प्राणियों में अवस्थित तत्त्व को अतत्त्वज्ञ को ज्ञान नहीं हो सकते।

ननु तथागतेनोक्तं स्कन्धधात्वायतनाभावे द्वीन्द्रियसंयोगरहितं प्रज्ञाज्ञानं स्वसंवेद्यं न भवत्यच्युतत्वात्। कथं योगी स्वचित्तप्रतिभासे स्वचित्तेनानुषङ्गं कृत्वा स्वचित्तं निरावरणं करोति महाक्षरसुखज्ञानं चोपभुङ्क्ते परमाणुसन्दोहशरीराभावात्। एतदेव विपरीतम्। देवदत्त आत्मनः स्कन्धमारुह्य ग्रामं गच्छतीति वाक्यवत्। इह कस्यचिदभिप्रायो भविष्यति। तस्मादुच्यते - इह हि यद्वक्तव्यं मूर्खैः परमाणुसन्दोहात्मकैः स्कन्धधात्वायतनैर्विना चित्तमात्रेण प्रज्ञाज्ञानं स्वसंवेद्यं न भवति तन्न। कस्मात्। आगन्तुकचित्तवासनावशात्।

इह स्कन्धधात्वायतनं नामागन्तुकचित्तवासना। तस्याः प्रसादेन चित्ते सुखदुःखचित्तवेदना प्रविशति। परमार्थतो विचार्यमाणे नास्य शरीरस्य क्षुद्रोपद्रवेणेति। इह परमाणुसन्दोहात्मकं शरीरं स्वप्नावस्थायामापतितं तिष्ठति नास्य क्षुद्रोपद्रवः कश्चिदस्ति येन चित्ते दुःखं प्रविशति। इह सर्वलोकेषु प्रसिद्धं तस्यामेवावस्थायामन्यच्चित्तवासनात्मकं शरीरं परमाणुसन्दोहरहितं देशान्तरं व्रजन् प्रतिभासते। तस्य देशान्तरं व्रजतः शरीरे चौरादिभिरुपद्रवे कृते सति तेनोपद्रवेण चित्ते दुःखं प्रविशति। तेन दुःखेनाक्रन्दति। तदिदं महदद्भुतम्। शरीरं विना चोरादिभिर्विना स्वसंवेद्यं दुःखज्ञानं प्रवर्तते चित्तस्य। एवं स्वप्ने महाकामोपभोगैश्चित्ते सुखं प्रविशति। तदेवाश्चर्यम्। शरीरेण विना कामोपभोगैर्विना स्वसंवेद्यं सुखज्ञानं चित्तस्य प्रवर्तते सत्त्वानामिति। एतदेव पण्डितैर्विचारयितुं न शक्यते प्रादेशिकज्ञानमपि। किं पुनः संसारवासनातिक्रान्तं निर्वाणवासनोद्भूतं योगिस्वसंवेद्यं समन्तभद्रं महाक्षरसुखज्ञानं वितर्कयितुं शक्यते मूर्खैरिति।

तथागत ने जो कहा है कि - स्कन्ध-धातु-आयतनों के अभाव में दो इन्द्रियों के संयोग रहित प्रज्ञा ज्ञान स्वसंवेद्य हो नहीं सकता अच्युत न होने से। कैसे योगी स्वचित्त के प्रतिभास में स्वचित्त द्वारा अपने धारण करके अपने चित्त को निरावरण करता है महा अक्षर सुख ज्ञान का उपभोग भी करता है क्योंकि वहाँ पर परमाणु समूहों के शरीर के अभाव होने से, यही विपरीत है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जैसे देवदत्त अपने ही स्कन्धों पर चढ़कर गाँव को जाता है वाक्य के तरह हो जाता है। यहाँ किसी का यह अभिप्राय हो सकता है।

इसीलिए कहा जाता है – यहाँ जो मूर्खों ने कहा है परमाणु के समूह रूप स्कन्ध–धातु आयतनों के विना चित्तमात्र से प्रज्ञाज्ञान जो स्वसंवेदनात्मक है नहीं हो सकता। क्यों? आगन्तुक चित्त के वासना के कारण। यहाँ स्कन्ध–धातु–आयतन आगन्तुक चित्तवासना है। उसी के प्रसाद से चित्त में सुखदुःख चित्तवेदना प्रविष्ट होती है। परमार्थरूप में विचार करने से इस शरीर का क्षुद्र उपद्रव है। यहाँ परमाणु समूहात्मक शरीर स्वप्नावस्था में पाया गया शरीर ही है, इसी से इसका छोटा उपद्रव कोई है जिससे चित्त में दुःख प्रविष्ट होता है। सर्वलोक में प्रसिद्ध, उसी अवस्था में, दूसरी चित्त को वासनात्मक शरीर है जो परमाणु समूह रहित है वह दूसरे स्थानों को जाते हुए दिखता है। देशान्तर को जाता हुआ चौर आदि उपद्रव में उसके चित्त में दुःख प्रविष्ट होता है। उस दुःख से रोता भी है। यह आश्चर्यजनक है। शरीर के विना, चोर आदि के विना स्वसंवेद्य दुःख ज्ञान प्रवृत्त होता है चित्त का। इसी प्रकार स्वप्न में महाकामों के उपभोगों से चित्त में सुख प्रविष्ट होता है। यह भी आश्चर्य है। शरीर के विना, कामोपभोगों के विना स्वसंवेद्य सुख का ज्ञान प्राणियों के चित्त में प्रवृत्त होता है। यही प्रादेशिक ज्ञान भी पण्डितों के द्वारा अविचारित ही है। फिर क्या कहा जाय उस विशिष्ट ज्ञान के बारे में जो सांसारिक वासनाओं से सुदूर है, निर्वाण की वासना से भरा हुआ है, योगिओं के द्वारा स्वसंवेद्य, समन्तभद्र, महाक्षरसुखज्ञान के विषय में तर्कना या विचार किया जा सकता है मूर्खों के द्वारा!!

यदपि प्रज्ञोपायाभिन्नमित्युच्यते तदपि परमार्थतो नास्तीत्याह –

जो यह – प्रज्ञोपाय से अभिन्न कहा जाता है वह भी परमार्थिक रूप में नहीं है यह बता रहे हैं –

न प्रज्ञा नाप्युपायो ऽसौ सहजः प्रज्ञया सह।
आपूर्णश्चैव सौख्येन सर्वावरणवर्जितः॥ १४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह न प्रज्ञा है और न ही उपाय ही है, यह तो प्रज्ञा के साथ सहज ही है, सौख्य द्वार सुपूर्ण है, सर्वावरण रहित है॥

आकाशवन्निरावरणो विषयेन्द्रियवर्जितः।
सर्वतः सर्वभूतस्थ अच्छेद्यो भेदवर्जितः॥ १५॥

आकाश के तरह निरावरण है, विषय इन्द्रिय वर्जित भी है। सर्वत्र व्यास है, अच्छेद्य है, भेदरहित है॥

न प्रज्ञेत्यादि। न प्रज्ञा नाप्युपायः पृथग्भूतो राशिरस्ति येन तदभिन्नं बोधिचित्तं स्यात्। तस्या अवस्थाया बालयोगिभिरविज्ञेयत्वात्। सहज इत्यपि प्रज्ञया धियया सहजत्वादुच्यते। आ समन्तात् सुखपूर्णावस्थालाभात् सर्वैरावरणै रागादिक्लेशज्ञेयादिभिर्विरहितो निर्णेयः। करादिस्पर्शाभावान् निरावरणः। ग्राह्यग्राहकवैधुर्याद् विषयेन्द्रियवर्जितः। सर्वव्यापकत्वात् सर्वतः। सर्वाकारज्ञत्वात् सर्वभूतस्थः कालत्रये ऽपि। परमाणुधर्मतातिक्रान्तत्वादविद्याज्ञानकर्त्तिकयाच्छेद्यः। विज्ञानधर्मतातीतत्वाद् ग्राह्यग्राहककोटच्याभेद्यत्वाद् भेदवर्जितः॥

प्रज्ञा और उपाय ये दोनों समूह हैं, जिससे उससे भिन्न बोधिचित्त होगा। उस अवस्था का बोध बालयोगियों के लिए संभव नहीं है। सहज यह भी प्रज्ञा के द्वारा बोध होता है। सुखा पूर्णावस्था के लाभ से समग्र रागादिक्लेश ज्ञेयादि से रहित हैं यह जानना चाहिए। करादि स्पर्शाभास से निरावरण है। ग्राह्यग्राहक रहित होने से विषयेन्द्रियवर्जित है। सर्वव्यापक होना ही सर्वतः है। सर्वभूतस्थ – तीनों काल में। परमाणुधर्म को अतिक्रान्त होने से अविद्या ज्ञान को काटने वाला न होने से अच्छेद्य है। विज्ञान धर्मों से अतीत होने से ग्राह्य–ग्राहक कोटि से अभेद्य होने से भेदरहित कहा है।

इति श्रीनरोपापादविरचितायां कालचक्रतन्त्रस्य सेकोद्देशटीकायां कार्यकारणभावसम्बन्धप्रकरणं समाप्तम्।

कार्यकारणभावसम्बन्ध पूरा हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ नवमं षडाध्यात्मिकतत्त्वप्रकरणम्

छह आध्यात्मिकतत्त्वप्रकरण

स्वयम्भूर् इत्यादिश्लोकत्रयं लोकोत्तरषट्सत्त्वोद्देशः –

निम्न श्लोकों के द्वारा लोकोत्तर ६ प्रकार के प्राणियों के विषयों में बता रहे हैं –

स्वयम्भूर्वज्रसत्त्वो ऽसौ महार्थः परमाक्षरः।
महारागो महासत्त्वः सर्वसत्त्वरतिङ्करः॥ १॥

वे स्वयम्भू ही वज्रसत्त्व हैं, महार्थ, परमाक्षर, महाराग, महासत्त्व, सर्वसत्त्वरतिकर भी हैं॥

बोधिसत्त्वो महाद्वेषः क्लेशक्षयी महारिपुः।
समयसत्त्वो महामोहो मूढधीमोहसूदनः॥ २॥

बोधिसत्त्व, महाद्वेष, क्लेशक्षयी, महारिपु, समयसत्त्व, महामोह, मूढबुद्धि के नाशक हैं॥

वज्रयोगो महाक्रोधः क्रुद्धमारमहारिपुः।
कालचक्रो महालोभः क्षरलोभनिषूदनः॥ ३॥

वज्रयोग, महाक्रोध, क्रुद्धमारमहारिपु, कालचक्र, महालोभ, क्षरलोभ के नाशक हैं॥

अनुत्पादानिरोधत्वात् स्वयम्भूः। महार्थो जगदर्थकारित्वात्। गुह्या-दुष्णीषान्तषट्चक्रे क्रमेण वज्रसत्त्वमहासत्त्वबोधिसत्त्वसमयसत्त्ववज्र-योगकालचक्रषण्णामकः। अस्य निर्देशो वज्रम् इत्यादि –

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुत्पाद और अनिरोध होने से स्वयम्भू हैं। जगत् अर्थ करने से महार्थ हैं। गुह्य से लेकर उष्णीष पर्यन्त षट्चक्रों में क्रमशः वज्रसत्त्व, महासत्त्व, बोधिसत्त्व, समय सत्त्व, वज्रयोग, कालचक्र नामक ६ सत्त्व रहते हैं। इसी की व्याख्या करते हैं -

वज्रमभेद्यमित्याह महार्थं भगवानिह।
सत्त्वस् त्रिभवस्यैकता तदुक्तं परमाक्षरम्॥ ४॥

अभेद्य होने से वज्र कहा है। महार्थपूरक होने से भगवान् हैं। तीनों भवों की एकता के कारण सत्त्व हैं। उसे ही परमाक्षर भी कहा है॥

परमाक्षरसुखापूर्णो भूमिभिः परिपूरितः।
महारागो महासत्त्वः सर्वसत्त्वरतिङ्करः॥ ५॥

परमाक्षरसुख से पूर्ण हैं, १२ भूमियों से भी परिपूरित है। महाराग, महासत्त्व, सर्वसत्त्वरतिकर भी हैं॥

बोधौ व्यवस्थितः सत्त्वो बोधिसत्त्वस्ततोऽचलः।
क्लेशादिद्वेषसङ्घानां महाद्वेषो महारिपुः॥ ६॥

बोधि में व्यवस्थित ही सत्त्व है - इसी से बोधिसत्त्व अचल भी है। क्लेशादिद्वेष सङ्घों का महाद्वेष और महारिपु भी हैं॥

समयश्चन्द्रामृतं शुक्रमच्युतिस्तस्य भक्षणम्।
समयसत्त्वो ऽनया युक्त्या मूढधीमोहसूदनः॥ ७॥

समय चन्द्रामृत ही शुक्र है, उसका भक्षण अच्युति है। इसी युक्ति से समय सत्त्व कहा गया है, मूर्खता के नाशक भी हैं॥

एकत्वं सर्ववज्राणां प्रज्ञाकायाक्षरैः सह।
महाक्रोधो महाशत्रुर्माराणां क्रोधरूपिणाम्॥ ८॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रज्ञाकाय अक्षरों से सभी वज्रों की एकता भी – महाक्रोध, महाशत्रु – क्रोधरूपी मार – कामों के हैं॥

महाक्षरसुखोपायात् सत्त्वार्थं न त्यजेत् क्वचित्।
सत्त्वान् मोक्तुं महालोभः क्षरलोभनिषूदनः॥ ६॥

महाक्षरसुखोपायों से सत्त्वों के लिए कभी त्याग न करें। सत्त्वों को मुक्त करने के लिए महालोभ हैं और क्षर लोभ के नाशक हैं॥

वज्रं शून्यबिम्बम्। तद्यस्माद् अभेद्यं तस्मान् महार्थमिहोद्देशे। यः सत्त्वः कामधात्वादिरूपकायवाक्चित्तैकत्वाख्यः स परमाक्षरम् उद्दिश्यत इति वज्रसत्त्वः। यद्वा वज्रमभेद्यं कायवाक्चितैकरसं महासुखज्ञानं सत्त्वस् त्रिभवस्यैकता ज्ञेयम्। आभ्यामैक्यं परमाक्षरम्।

वज्र शून्यबिम्ब है। सत्त्व – कामधातु आदि रूप काय-वाक्चित्त नामक वह परमाक्षर को उद्देश करके बताना ही वज्रसत्त्व है। अथवा काय वाक् चित्त रस रूप महासुख ज्ञान ही त्रिभव की एकता है। इनकी एकता परमाक्षर है।

स महान् महासुखपूर्णत्वान् महाराग उद्दिष्टः। स च सत्त्वो भूमिभिः पूर्णत्वात् सर्वसत्त्वरतिङ्कर उद्दिष्ट इति महासत्त्वः। यद्वा महच्छब्देनात्र परमाक्षरसुखं तेन पूर्णो यः सत्त्वो भूमिभिश् च स महासत्त्वः।

महासुखपूर्ण होने से महाराग कहा है। वह भूमियों से पूर्ण होने से सर्वसत्त्व प्रेमी कहा है। अथवा परम अक्षर सुख से पूर्ण होने से महासत्त्व है।

यतोऽसौ बोधौ शून्यताकरुणात्मिकायां धर्मचक्रे स्थितो ऽचलस्थितः। क्लेशादिरूपद्वेषसङ्घानां विजयित्वान् महाद्वेषो महारिपुश् चोद्दिष्टः। ततः सत्त्व इति बोधिसत्त्वः।

धर्म चक्र में स्थित होने से अचल है। सत्त्व – बोधिसत्त्व हैं।

स यतः समयस्तस्य चन्द्रामृताख्यशुक्रस्य सुखे ऽच्युतिरूपं भक्षणम्। मोहविजयित्वान् महामोहो मूढधियां मोहघातकश्चोद्दिष्टस्ततः समयसत्त्वः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चन्द्रामृत नामक शुक्र का सुख के क्षण में अच्युतिरूप भक्षण करना ही समय है।

सैव यतः कायादिवज्राणां प्रज्ञया बिम्बेनाक्षरबिन्दुभिश्च सहयोग एकत्वम्। निर्जितक्रोधत्वान् महाक्रोधो मारविजयित्वात् क्रुद्धमाररिपुश् चोपदिष्ट इति वज्रयोगः।

प्रज्ञा और अक्षर की एकता ही एकत्व है। क्रोध को जितने से महाक्रोध हैं।

यतः स कालो महासुखं तस्माद् उपायाद् अपरित्यक्तचक्राख्या-नन्तरसत्त्वार्थो भगवान्। अत एव सत्त्वान् मोचयित्वा महालोभः क्षरलोभ-घातकश् चोपदिष्ट इति कालचक्रः॥

वह काल ही महासुख है उस उपाय के द्वारा अपरित्यक्त – अनन्त रसों के कारण जो सत्त्वों के लिए है इसीलिए भगवान् हैं। इसी से सत्त्वों को मोचन करके महालोभ हो गए है। क्षरलोभघातक यही कालचक्र का स्वरूप भी है।

इति श्री नारोपापादविरचितायां कालचक्रतन्त्रस्य सेकोद्देशटीकायां षडाध्यात्मिकतत्त्वप्रकरणं समाप्तम्।

छह आध्यात्मिकतत्त्व प्रकरण पूरा हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ दशमं षट्कुलप्रकरणम्
छह कुलप्रकरण

एते ह्युक्ताः षडाकारा अक्षरज्ञानवेदना।
विज्ञानरूपसंस्कारसञ्ज्ञाः स्कन्धकुलानि ते॥ १॥

वे कहे गए षडाकार, अक्षरज्ञानवेदना, विज्ञान, रूप, संस्कार, संज्ञा, वे स्कन्ध कुल हैं॥

ज्ञानाग्न्यम्बरपृथिवीवायूदका यथाक्रमम्।
मनश्चक्षुःश्रुतिकायनासजिह्वास्तथैव च॥ २॥

ज्ञान, अग्नि, आकाश, पृथिवी, वायु, उदक से क्रमशः मन, चक्षुः, श्रुति, काय, नासिका, जिह्वा उत्पन्न होते हैं॥

शब्दरसधर्मधातुगन्धस्प्रष्टव्यरूपिणः ।
क्रोधराट् षण्मुखो भीमः षट्कुलैः परिशोधितः॥ ३॥

शब्द, रस, धर्मधातु, गन्ध, प्रष्टव्य रूप हैं। वे परिशोधित होते हैं वे हैं क्रमशः क्रोधराट्, षण्मुख, भीम षट्कुल॥

षण्णाडीरूपषडारचक्रे ऽमी वज्रसत्त्वादयः प्रत्येकं षट्प्रकाराः। तत्राधः शङ्खिनीरूपारे ऽक्षरज्ञानम्। रसनारूपदक्षिणारे ऽक्षरवेदना। अवधूतीरूपोर्ध्वारे ऽक्षरविज्ञानम्। विण्णाडीरूपपश्चिमारे ऽक्षररूपम्। मूत्रनाडीरूपपूर्वारे ऽक्षरसंस्कारः। ललनारूपोत्तरारे ऽक्षरसञ्ज्ञा इति षट्स्कन्धाः। त एव षट्कुलानि यथाक्रमम् अक्षरज्ञानादिषड्धातूनामेव-मक्षरमन आदिषडिन्द्रियाणां तथाक्षरशब्दादिषड्विषयाणामिन्द्रियोप-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लक्षणादक्षरदिव्येन्द्रियपाण्युपस्थपायुवाक्पादाख्यकर्मेन्द्रियाणां तथा विषयोपलक्षणादक्षर शुक्रच्युत्यादानमूत्रस्रावविडुत्सर्गालापगत्याख्य-कर्मेन्द्रियक्रियाणाम्। एतानि च षट्त्रिंशत् क्रमेण मण्डले महाकामाख्य-वज्रसत्त्वमहारागाख्यरत्नेशमहाक्रोधाख्याक्षोभ्यमहामोहाख्यवैरोचनमहा-द्वेषाख्यामोघसिद्धिमहालोभाख्यामिताभाः प्रज्ञापारमितापाण्डरावज्र-धात्वीश्वरीलोचनातारामामक्यः समन्तभद्रक्षितिगर्भवज्रपाणिसर्वनिवरण-विष्कम्भीखगर्भलोकेश्वराः शब्दवज्रारसवज्राधर्मधातुवज्रागन्धवज्रास्पर्श-वज्रारूपवज्राः शुम्भप्रज्ञान्तकोष्णीषयमान्तकविघ्नान्तकपद्मान्तका महा-नीलाजम्भिनीरौद्राक्षीशुम्भिनीमहावीर्यामानिन्यः। अयं च षट्त्रिंषद्देवता-व्यापको ऽचित्तचित्तवज्रः। सावरणरागादिनिरोधात् क्रोधराण् महाकामादि-षण्मुखः। मृत्युमारादीनां भयानकत्वाद् भीमः। उक्तज्ञानादिषट्कुलैः शोधितः।

६ नाडीरूप ६ चक्रों में वे वज्रसत्त्व आदि प्रत्येक ६ प्रकार के हैं। प्रथम नीचे शङ्खिनी रूप आरे में अक्षर ज्ञान है। रसना रूप दक्षिण आरे में अक्षर वेदना। अवधूतीरूप ऊर्ध्व आरे में अक्षर विज्ञान। विण्णाडीरूप पूर्व आरे में अक्षर संस्कार ललनारूप उत्तर आरे में अक्षर सञ्ज्ञा वे षट् स्कन्ध हैं। वे षट्कुल क्रमशः अक्षर ज्ञानादि षड्धातुओं का तथा अक्षर मन षड् इन्द्रियों का एवं अक्षर शब्द आदि षड्विषयों का तथा अक्षर दिव्य इन्द्रिय तत्त्व उपस्थ, पायु, वाक्, पाद नाम कर्मेन्द्रियों का, विषय उपलक्षित अक्षर शुक्रच्युति के द्वारा मूत्र त्याग, विष्टा त्याग, आलाप, गति आति कर्मेन्द्रियों का ही षट्कुल कहा गया है। वे षट्त्रिंशत् (३६) क्रम से मण्डल में महाकाख्य वज्रसत्त्व, महाराग रूप रत्नेश एवं महाक्रोध रूप अक्षोभ्य, महावैरोचन, महाद्वेष रूप अमोघ सिद्धि, महालोभ नामक अमिताभ, प्रज्ञापारमिता, पाण्डरा, वज्रधातु, ईश्वरी, लोचना, तारा, मामकी, एवं समन्तभद्र, क्षितिगर्भ, वज्रपाणि, सर्वनिवारण विष्कम्भी, खगर्भलोकेश्वर तथा शब्दवज्रा, रसवज्रा, धर्मधातुवज्रा, गन्धवज्रा, स्पर्शवज्रा, रूपवज्रा तथा शुम्भप्रज्ञान्तक, उष्णीषयमान्तक, विघ्नान्तक, पद्मान्तक, एवं महानीला, जम्भिनीरौद्राक्षी, शुम्भिनी, रौद्राक्षी, शुम्भिनी, महावीर यामिनी वे षट्त्रिंशत् मण्डल अन्तर्गत हैं। यह षट्त्रिंशत् देवता व्यापक अचित्त चित्त वज्र है। आवरण सहित रागादि निरोध से क्रोधराट् महाकामादि षड्मुख हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मृत्यु-काम आदि के लिए भयानक होने से भीम हैं। उक्त ज्ञानादि षट् कुलों से परिशोधित हैं।

कायगुह्येन्द्रियचित्तं त्रिविधं मण्डलं सदा।
प्रज्ञोपायत्रिवज्राणां जायते वज्रसत्त्वता॥ ४॥

काय, गुह्येन्द्रिय, चित्त वे त्रिविध मण्डल सदा रहते हैं। प्रज्ञा - उपाय त्रिवज्रों का वज्रसत्त्व होता है॥

काय इति कायमण्डलं गुह्येन्द्रियं वाङ्मण्डलं चित्तं चित्तमण्डलम्। एतत्त्रयात्मकषट्कुलमण्डलम्। तन् मार्गभावनया शुद्धं सदा। विशुद्धानां पूर्वोक्तप्रज्ञोपायत्रिवज्राणां वज्रसत्त्वत्वम् अचित्तचित्तवज्रत्वं निष्पादयेत्॥

कायमण्डल - गुह्य इन्द्रिय ही है। वाङ्मण्डल चित्त है - वही चित्तमण्डल भी है। यह तीनों का समवाय ही षट्कुल मण्डल कहलाता है। वह मार्ग भावना के द्वारा सदा शुद्ध होता है। विशुद्ध पूर्वोक्तों का प्रज्ञोपाय त्रिवज्रों का वज्रसत्त्व है। अचित्त द्वारा चित्त वज्रत्व का उत्पादन करना चाहिए।

इति श्रीनरोपापादविरचितायां कालचक्रतन्त्रस्य सेकोद्देशटीकायां षट्कुलप्रकरणं समाप्तम्।

षट्कुलप्रकरण पूरा हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथोपसंहारः

इदं सेकस्य साधनं परमाक्षरसाधनम्।
नाडीकुलसमायुक्तमुद्देशाच्चन्द्र भाषितम्॥ १॥

यह सेक - अभिषेक का साधन, जो परमाक्षर का साधन स्वरूप कालचक्रतन्त्र है। नाडी समूहों से पूर्ण है जिसे नाममात्र के संक्षिप्त निर्देश पूर्वक चन्द्र ने प्रकाशित किया है॥

इदं सेकोद्देशाख्यप्रकरणमुक्तं दशाभिषेकसाधनं परमाक्षराभिषेक-साधनं चोक्तम्। नाडीकुलप्रकाशकं देशक वज्रपाणे उद्देशात् संक्षेपात् स्फुटं कथितमित्याह भगवानिति

यह सेकोद्देश नामक प्रकरणग्रन्थ, जो दश अभिषेकों का साधनरूप है, परमाक्षराभिषेक साधन के रूप में कहा गया है। नाडी कुलों का प्रकाशक है। इसके उपदेशक श्री वज्रपाणि ही हैं। संक्षेप में प्रष्टरूप में कहा गया है ऐसा भगवान् ने कहा है।

सदर्थद्योतिनी शुद्धा सर्वावृतितमोऽपहा।
हरत्वेषा जगत्तापं सेकेन्दुज्ञानचन्द्रिका॥ २॥

सत् अर्थ की द्योतिका, शुद्ध, समग्र अज्ञान अन्धकार को हटाने वाली है। यह ग्रन्थ रूप - अभिषेक - चन्द्रात्मक-ज्ञान चन्द्रकिरण जगत् के तापों का हरण करे।

इति सेकोद्देशटीका समाप्ता॥
कृतिरियं श्रीनरोपादानाम्॥

सेकोद्देशटीका पूर्ण हुई। यह कृति श्रीनरोपाद की है।

इति श्रीनरोपापादविरचितायां कालचक्रतन्त्रस्य
सेकोद्देशटीकायामुपसंहारप्रकरणं समाप्तम्।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

। यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ ।

योगीन्द्रानन्दशिष्येण काशीनाथेन युक्तितः।
सदर्थद्योतिनीहिन्दीव्याख्या सम्पादिता मुदा॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्टः

तन्त्रोपक्रमप्रकरणम्

सर्वावृतिप्रशमनिर्मलबुद्धधर्म
निर्वेधसौधमधिरुह्य वपुर्द्वयेन।
तस्मै नमो भगवते यदुपज्ञकानि
विश्वोपकारविधिनाटकनर्तनानि॥ १॥
उद्धृत्य वाक्यसलिलं विमलप्रभादि-
पयोनिधेर्जलमुचेव मया विमुक्तम्।
उद्देशगूढपदपद्धतिपल्वलेऽस्मिं
स्तर्षोपरोधविधये विबुधा भजध्वम्॥ २॥

सेकः सप्तविधः शास्तस्त्रिविधो ऽनुत्तरस्तथा।
लौकिकोत्तरसिद्ध्यर्थं संक्षेपात् कथयस्व मे॥ ३॥
शृणु सुचन्द्र सेकार्थं सप्तधा त्रिविधं परम्।
नाडीसंचारमायाममुद्देशात् कथयामि ते॥ ४॥
उद्देशस्त्रिविधिस्तन्त्रे निर्देशस्त्रिविधो भवेत्।
प्रत्युद्देशो महोद्देशः प्रतिनिर्देशकोऽपरः॥ ५॥
उद्देश एव निर्देशस्तन्त्रसंगीतिरुच्यते।
प्रत्युद्देशश्च निर्देशः पञ्जिका पदभञ्जिका॥ ६॥
महोद्देशश्च निर्देशष्टीका सर्वार्थसूचिका।
अभिज्ञालाभिभिः सा तु कर्तव्या नैव पण्डितैः॥ ७॥
एवं षट्कोटिभिः शुद्धं वज्रयोगैश्चतुर्विधैः।
चतुःसम्बोधिभिः स्कन्धधात्वायतनषट्कुलैः॥ ८॥
पटलैः पञ्चभिः शुद्धं लोकधात्वादिकैर्मतैः।
सत्याभ्यामादिबुद्धं स्यात् कालचक्राभिधानकम्॥ ९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ द्वितीयं दीक्षाप्रकरणम्

आदौ सप्ताभिषेको यो बालानामवतारणम्।
त्रिविधो लोकसंवृत्या चतुर्थः परमार्थतः॥ १॥
सत्यद्वयेन धर्माणां देशना वज्रिणो मम।
लोकसंवृतिसत्येन सत्येन परमार्थतः॥ २॥
उदकं मुकुटः पट्टो वज्रघण्टा महाव्रतम्।
नामानुज्ञासमायुक्तः सेकः सप्तविधो नृप ॥ ३॥
कायवाक्चित्तसंशुद्धिरभिषेकद्वयं द्वयम्।
अनुज्ञा ज्ञानशुद्धिः स्याद् अन्या धात्वादिशुद्धितः॥ ४॥
उदकं धातुसंशुद्धिर्मौली स्कन्धविशोधनम्।
पट्टः पारमिताशुद्धिर्वज्रघण्टा महाक्षरम्॥ ५॥
बुद्धभाषा न विच्छिन्ना अर्केन्द्वेकत्रशोधनम्।
विषयेन्द्रियसंशुद्धिः स्याद्वज्रव्रतमच्युतम्॥ ६॥
नाम मैत्र्यादिशुद्धिः स्यादनुज्ञा बुद्धशोधनम्।
एते सप्त सेका देया वर्तयित्वा तु मण्डलम्॥ ७॥
कुम्भो गुह्याभिषेकश्च प्रज्ञाज्ञानाभिधानकः।
पुनरेव महाप्रज्ञा तस्या ज्ञानाभिधानकः॥ ८॥
क्षरः क्षरस्ततः स्पन्दो निःस्पन्दश्च ततोऽपरः।
कायवाक्चित्तसंशुद्ध्या अभिषेकत्रयं क्रमात्॥ ९॥
चतुर्थो ज्ञानसंशुद्धिः कायवाक्चित्तशोधकः।
बालः प्रौढस्तथा वृद्धश्चतुर्थस्तु प्रजापतिः॥ १०॥
प्रज्ञास्तनाङ्गसंस्पर्शाद् बोधिचित्तच्युतं सुखम्।
पयोधराभिषिक्तः स बालः प्राप्तं यतः सुखम्॥ ११॥
गुह्यास्फालाच्चिराज्जातं बोधिचित्तच्युतं सुखम्।
प्रौढो गुह्याभिषिक्तः स गुह्यात् प्राप्तं यतः सुखम्॥ १२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुह्यास्फालाच्चिराज्जातं वज्राग्रे स्पन्दतः सुखम्।
प्रज्ञाज्ञानाभिषिक्तः स वृद्धः स्पन्दं गतो यतः॥ १३॥
महामुद्रानुरागाद्यज्जातं निःस्पन्दतः सुखम्।
महाप्रज्ञाभिषिक्तः स यतो निःस्पन्दतां गतः॥ १४॥
प्रजापतिः स विज्ञेयो जनकः सर्वतायिनाम्।
वज्रसत्त्वो महासत्त्वो बोधिसत्त्वो ऽद्वयो ऽक्षरः॥ १५॥
असौ समयसत्त्वः स्याद्वज्रयोगश्चतुर्विधः।
कालचक्र इह ख्यातो योगिनां मुक्तिदायकः॥ १६॥

अथ तृतीयं षडङ्गयोगप्रकरणम्

अस्यैव साधनं कुर्यात् प्रतिभासैरचिन्तितैः।
धूमादिभिर्निमित्तैस्तैः प्रज्ञाबिम्बैर्नभःसमैः॥ १॥
अस्तिनास्तिव्यतिक्रान्तैः प्रत्ययार्थैः स्वचेतसः।
परमाणुरजःसंदोहैः सर्वतः परिवर्जितैः॥ २ ॥
धूममरीचिखद्योतदीपज्वालेन्दुभास्करैः।
तमः कला महाबिन्दुर्विश्वबिम्बं प्रभास्वरम्॥ ३ ॥
पिहितापिहितनेत्राभ्यां शून्ये यत्रानुकल्पितम्।
दृश्यते स्वप्नवद् बिम्बं तद् बिम्बं भावयेत् सदा॥ ४॥
अभावे भावना बिम्बे योगिनां सा न भावना।
भावोऽभावो न चित्तस्य बिम्बेऽकल्पितदर्शनात्॥ ५॥
प्रतिसेनां यथादर्शे कुमारी पश्येदवस्तुजाम्।
अतीतानागतं धर्मं तत्त्वयोग्यम्बरे तथा॥ ६॥
अस्या भावो न भावः स्याद्वस्तुशून्यार्थदर्शनात्।
वस्तुनोऽभावतोऽर्थोऽस्ति मायास्वप्नेन्द्रजालवत्॥ ७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

असति धर्मिणि ह्येष धर्मोत्पादः प्रदृश्यते।
चिन्तामणिरिवानन्तसत्त्वाशापरिपूरकः॥ ८॥
अदृष्टं प्रतिसेनायां कुमारी चौरादि पश्यति।
तत् प्रादेशिकनेत्राभ्यां गत्वा पश्यन्ति साधकाः॥ ९॥
यदि पश्यति सद्रूपं स्वमुखं किं न पश्यति।
यदि पश्यत्यसद्रूपं शशशृङ्गं कथं न च॥ १०॥
न पश्यत्यन्यचक्षुर्भ्यां स्वचक्षुर्भ्यां न पश्यति।
दृश्यमानमजातं तत् कुमार्या जातकं यथा॥ ११॥
दृष्टे बिम्बे ततः कुर्यात् प्राणायामं निरन्तरम्।
ऊर्ध्वाधस्त्रिषु नाडीषु कायवाक्चित्तरोधनात्॥ १२॥
चन्द्रार्कराहुविण्मूत्रशुक्रमार्गप्रवाहिषु ।
तोयाग्निशून्यभूवायुज्ञानधातुकजातिषु॥ १३॥
चन्द्रसूर्यतमिन्यो याः कायवाक्चित्तनाडिकाः।
विण्मूत्रशुक्रवाहिन्यः प्राणे ऽपाने क्रमेण ताः॥ १४॥
चन्द्रःकाय उपायस्य प्रज्ञाया वाग्दिवाकरः।
प्रज्ञाकायस्तु विण्णाडी विभोर्वाङ् मूत्रवाहिनी॥ १५॥
ऊर्ध्वाधश्चित्तनाड्यौ द्वे तमिनीशुक्रवाहिन्यौ।
तमिनी चित्तमुपायस्य प्रज्ञायाः शुक्रवाहिनी॥ १६॥
ऊर्ध्वाधः षट्कुलं ह्येतत् कायवाक्चित्तयोगतः।
प्रज्ञोपायाङ्गभावेन संस्थितं सर्वदेहिनाम्॥ १७॥
अरिष्टं कायवाङ्नाड्योरूर्ध्वाधोऽधिकमारुतैः।
तमिनीशुक्रवाहिन्योरुत्पत्तिमरणस्थितिः॥ १८॥
उत्पादे मृत्युकाले च मैथुने शुक्रवाहिनी।
तमिनी च वहत्यूर्ध्वे संक्रान्तौ विषुवे रवेः॥ १९॥
लग्नोदयाभिसंधौ च विषुवं वहति मध्ये।
षट्पञ्चाशत् सपादाञ्च श्वासोच्छ्वासान्नराधिप॥ २०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अधिकान्पञ्चसप्तत्या षट्शतांश्च दिवानिशम्।
एकविंशत्सहस्रांश्च षट्शतैरधिकांश्च यान्॥ २१॥
वामा च दक्षिणा नाडी वहत्यूनाननेन तान्।
सत्रिपक्षित्रिवर्षाणि शतवर्षे हि मध्यमा॥ २२॥
वामा सव्योर्ध्वे चन्द्रार्कौ ललनेडा पिङ्गलापरा।
तोयतेजःस्वभाविन्यौ पद्मधृग्रत्नधृङ् मते॥ २३॥
अधो विण्मूत्रवाहिन्यौ पृथ्वीवायुस्वरूपके।
मध्यनाडी च वामा च चक्रधृक्खड्गधृङ्मते॥ २४॥
ऊर्ध्वाधो मध्यमा सव्या राहुशुक्रप्रवाहिनी।
शून्यज्ञानस्वभाविन्यौ वज्रधृग्वज्रधृङ् मते॥ २५॥
विण्णाडी चन्द्रमार्गेण रविणा मूत्रवाहिनी।
जातौ मृत्यौ विषुवे रागे राहुणा शुक्रवाहिनी॥ २६॥
या नाभ्यूर्ध्वे ऽवधूती सा सुषुम्ना तमोवाहिनी।
या ऽधः खगमुखा सा च शङ्खिनी शुक्रवाहिनी॥ २७॥
नाभ्यब्जे हृदये कण्ठे ललाटोष्णीषपङ्कजे।
भूतोयाग्निमरुच्छून्यं संहारेण प्रवाहिनी॥ २८॥
निर्गच्छन्ती विशन्ती सा सृष्टिना विशति क्षितौ।
कर्णिकात् कर्णिकामध्येऽवधूत्या गतिरागतिः॥ २९॥
नाभौ गुह्ये च मण्यब्जे कायवाक्चित्तवाहिनी।
निर्गच्छन्ती विशन्ती सा संहारसृष्टिरूपिणी॥ ३०॥
शङ्खिनी सर्वजन्तूनामपानानिलवाहिका।
एषा स्त्रीणां सुखाच्छुक्रं क्रतौ रक्तप्रवाहिनी॥ ३१॥
प्रज्ञोपायाङ्गभावेन ऊर्ध्वे सव्यावसव्ययोः।
अधो विण्मूत्रवाहस्य रजःशुक्रप्रवाहयोः॥ ३२॥
चण्डाली रजसो वाहात् खगमुखा शुक्रवाहतः।
ऊर्ध्वे क्रतौ स्मृता स्त्रीणां डोम्बी पुंसोऽवधूतिका॥ ३३॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विज्ञानाद्यं सदा वामे नाड्यां मण्डलपञ्चकम्।
भूम्याद्यं दक्षिणे नाड्यां मध्ये वहति षष्ठमम्॥ ३४॥
नाभिपद्मदले षष्टिमण्डलानि यथाक्रमम्।
वामे च दक्षिणे लग्ने मेषाद्ये वृषभादिके॥ ३५॥
मूले वामे ततः सव्य ऊर्ध्वे मध्येऽनिलः क्रमात्।
एकैकमण्डलं दण्डाद्भूम्याद्यं नासरन्ध्रयोः॥ ३६॥
नाडिका वहति श्वासान् सषष्टित्रिशतान् क्रमात्।
अष्टादशशतश्वासान्नाड्यः पञ्च वहन्ति तान्॥ ३७॥
षष्टि नाड्यो दिवारात्रं मण्डलानीति देहतः।
दलमध्ये ततः पूर्वे सव्ये वामे ऽपरे क्रमात्॥ ३८॥
आकाशाद्यं सदा वामे भूम्याद्यं दक्षिणे ऽपरात्।
विज्ञानादि भवो वामे संहारः क्ष्मादि दक्षिणे॥ ३९॥
परे पूर्वे धरा वायुः प्रज्ञोपायः परस्परम्।
अङ्गुष्ठनामिकाद्वाभ्यां यतो वक्त्रेऽभिषिञ्चनम्॥ ४०॥
सव्ये वामे हविस्तोयं प्रज्ञोपायः परस्परम्।
मध्यमातर्जनीद्वाभ्यां यतः खड्गो भविष्यति॥ ४१॥
अर्धचन्द्राकृतिर्मुद्रा दंष्ट्रा कर्त्ती कनीयसी।
शून्यमक्षरमूर्ध्वाधः प्रज्ञोपायः परस्परम्॥ ४२॥
दशमण्डलसंयोगे अङ्गुलीनां परस्परम्।
करतले पुटिते मूर्ध्नि एकशूकं सकर्त्तिकम्॥ ४३॥
विषुवत्तन्मध्यनाड्यां सृष्टिसंहारकारकम्।
स्कन्धधातुत्रिवज्राणामेकत्वं मध्यमागतौ॥ ४४॥
चन्द्रार्कनाडिकारुद्धे रुद्धा विण्मूत्रनाडिकाः।
राहुनाडीविरुद्धे स्याद्रुद्धाधः शुक्रवाहिनी॥ ४५॥
मुक्ते मुक्ता भवन्त्येताः सृष्टिसंहारकारिकाः।
संचार एष नाडीनां प्राणापानत्रिमार्गतः॥ ४६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ चतुर्थमरिष्टप्रकरणम्

वामायां दक्षिणायां वा प्रवहत्यधिकोऽनिलः।
एकरात्रं तथा पञ्च त्रिवर्षैर्मरणं ततः॥ १॥
पञ्च दिक्तिथयो विंशतितत्त्वान्येकोत्तरक्रमात्।
त्रयस्त्रिंशद्दिनारोहदि रिष्टं दक्षिणे रवौ॥ २॥
त्रिद्व्येकसमकैर्मासैः षट्त्रियुग्मेन्दुभिर्दिनैः।
तिथिदिक्पञ्चगुणद्व्येकैरायुर्गच्छति देहिनाम्॥ ३॥
मूलादेकोत्तरेण स्याद्वामे चन्द्रस्य रोहणम्।
दिनैर्मासैर्दिनैर्मासैस् त्रिदिनानि द्विमासकौ॥ ४॥
दिने ऽरिष्टं शुभे मासे वृद्धिहानिस्ततस्तयोः।
मध्यमारोहणं मृत्योः शताब्दपरिपूर्णतः॥ ५॥
समविषमदिनैस्तस्य जन्मजातैश्च मण्डलैः।
रोहणं सव्यवामे च पक्षद्वयविनाशनात्॥ ६॥
अन्यथा मरणं न स्यात् पक्षद्वयस्य संस्थितौ।
सव्यावसव्यसंचारात् पञ्चमण्डलवाहतः॥ ७॥
अरिष्टलक्षणं ज्ञात्वा प्राणं बिन्दौ निवेशयेत्।
अवधूतीपदमाश्रित्य भावयेत् परमाक्षरम्॥ ८॥
वज्रोत्थानं सदा कुर्याच्चन्द्रार्कगतिभञ्जनात्।
अन्यथा नावधूत्यङ्गे विशति प्राणमारुतः॥ ९॥
अपानो ऽधश्च शङ्खिन्यां मरणं तदवेशतः।
अरिष्टवञ्चनं ह्येतदानन्दैर्योगिनां भवेत्॥ १०॥

अथ पञ्चममानन्दप्रकरणम्

शुक्रागमनमानन्दमुष्णीषादूर्णापङ्कजे ।
कण्ठे हृदि परमानन्दं विरमानन्दं ततो भवेत्॥ १॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विविधं रमणं नाभौ गुह्यपद्मे यदागतम्।
गुह्याद्वज्रमणिं यावत् सहजानन्दमच्युतम्॥ २॥
अप्रतिष्ठितनिर्वाणं महारागो ऽक्षरः प्रभुः।
विरागाद्यच्च्युतं सौख्यं तन्निर्वाणं प्रतिष्ठितम्॥ ३॥
शुक्रेन्दूदय उष्णीषे पूर्णा गुह्ये सरोरुहे।
कला षोडशमा या सा मणिपद्मे वज्रमूर्धगा॥ ४॥
तदूर्ध्वं च्युतिकालः स्यात् कृष्णप्रतिपदागमे।
रविस्तूर्णापदं याति चामावस्यां विरागतः॥ ५॥
कला षोडशमा तस्य उष्णीषकमले गता।
नष्टचन्द्र इहाख्यातो विरक्ती रागसौख्यतः॥ ६॥
अधश्चन्द्रामृतं याति मरणे सर्वदेहिनाम्।
ऊर्ध्वे सूर्यरजो राहुविज्ञानं भावलक्षणे॥ ७॥
अतश्चन्द्रामृतस्योर्ध्वे कर्तव्यं गमनं नृप।
अधो ऽर्करजसो राहुविज्ञानस्याक्षरे सुखे॥ ८॥
ऊर्णाब्जे सर्वबुद्धानां चन्द्रामृतस्य पूर्णिमा।
अमार्करजसो गुह्ये कलोष्णीषे मणौ तयोः॥ ९॥
इति वज्रपदं शास्तुर्विपरीतं सर्वदेहिनाम्।
अप्रतिष्ठितनिर्वाणाद्विपरीतं यान्ति धातवः॥ १०॥
मणौ चित्तं च गुह्ये वाक्कायो नाभौ महासुखात्।
धर्मसम्भोगनिर्माणाः शुद्धकायात् स्फुरन्त्यमी॥ ११॥
अधोपायस्य राजेन्द्र प्रज्ञाया ऊर्ध्वतो भवेत्।
ललाटे कायवज्रमस्या ग्रीवहृन्नाभिपङ्कजे॥ १२॥
वाक्चित्तज्ञानवज्राणि निर्माणाद्यात् स्फरन्त्यमी।
स्फरणं स्कन्धधातूनां निरावरणतः सुखात्॥ १३॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ षष्ठं मुद्राप्रकरणम्

कर्ममुद्रासमापत्त्या ज्ञानमुद्रावलम्बनैः।
महामुद्रैकयोगेन वृद्धिं याति तदक्षरम्॥ १॥
वृद्धस्य न च वृद्धिः स्यात् क्षीणस्य क्षीणता न च।
अस्तंगतस्य नास्तगमनमुदितस्योदयं न हि॥ २॥
न प्रकाशः प्रकाशस्य पिहितं पिहितस्य न।
जातस्यैय न जन्म स्यान् मृतस्य मरणं न च॥ ३॥
मुक्तस्य न च मुक्तिः स्यादस्थितस्य न चास्थितिः।
अभावो न ह्यभावस्य भावो भावस्य नैव च॥ ४॥
क्षरस्यापि क्षरो न स्यादक्षरस्य न चाक्षरः।
स्वभावाभावधर्माणां मायोत्पादः क्षयस्तथा॥ ५॥
न क्षयं यान्ति भूतानि न जायन्ते स्वभावतः।
निःस्वभावमिदं विश्वं भावाभवैकलक्षणम्॥ ६॥
स्वप्रज्ञालिङ्गितं चित्तं पद्मे वज्रमणौ गतम्।
तत्र चन्द्रगतस्पन्दो निःस्पन्दाक्षरभावना॥ ७॥
कायवाक्चित्तनाडीषु कायवाक्चित्तभावना।
समाहारस्त्रिवज्राणां शङ्खिन्यां ज्ञानभावना॥ ८॥
प्रज्ञारागद्रुतानां च बिन्दूनां शिरसः क्रमात्।
पूर्णापदं प्रविष्टानां बन्धनं परमार्थतः॥ ९॥
यथोदितः क्रमाच्चन्द्रः कलाभिर्याति पूर्णताम्।
वासनाहरणं पूर्णा न चन्द्रच्छेदो न पूरणम्॥ १०॥
तथोदितं क्रमाज्ज्ञानं भूमिभिर्याति पूर्णताम्।
क्लेशाद्याहरणं पूर्णा न ज्ञानच्छेदो न पूरणम्॥ ११॥
यथा मध्यशशाङ्केन पूर्णायां न स्थिरः शशी।
संसारवासनाङ्केन तथा चित्तं सुखे ऽक्षरे॥ १२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्पत्तिः प्रलयः पक्षः शुक्लः कृष्णः प्रतिष्ठितः।
तयोर्मध्ये तु या पूर्णा सा पूर्णा न प्रतिष्ठिता॥ १३॥
एकक्षणाभिसम्बुद्धं पूर्णायां निश्चलं भवेत्।
यदा वज्रमणौ चित्तं तत् सर्वक्षणपूरकम्॥ १४॥
न स्थितिः शुक्लपक्षे ऽस्य गमनं नासिते क्वचित्।
पक्षद्वयस्य मध्यस्थं पूर्णायां गतमद्वयम्॥ १५॥
उष्णीषादुदयं तस्य पूर्णा वज्रमणौ भवेत्।
सविरागात् कलाहानिर् वज्राद्धानेः प्रपूर्णता॥ १६॥
उष्णीषे ह्युदयो भूयः पूर्णा वज्रमणौ पुनः।
सविरागात् कलाहानिर्ज्ञानहानिर्न देहिनाम्॥ १७॥
महासुखस्वभावो ऽस्य पूर्णाशब्देन गीयते।
अन्यभावान्तरं सर्वं सृष्टिसंहारहेतुकम्॥ १८॥
भवाद्गच्छति निर्वाणं तस्मादेति पुनर्भवम्।
स्वपक्षाभ्यां यथा चन्द्रोऽयनाभ्यां भास्करो यथा॥ १९॥
पूर्णायां निश्चलस्यास्य भूमिभिः परिपूर्णता।
द्व्ययुतद्व्यष्टशतैः श्वासैरक्षरक्षरभक्षितैः॥ २०॥
पक्षद्वयं व्यतिक्रम्य भूमिभिः परिपूरितम्।
द्वादशाकारसत्यार्थं षोडशाकारमक्षरम्॥ २१॥
भूमिभिर्द्वादशाकारं पूरितं परमाद्वयम्।
कलाभिः पूरितं चित्तं षोडशाकारमक्षरम्॥ २२॥
एकार्थमद्वयं धर्मं परमार्थमविनश्वरम्।
पूर्णावस्थां गतं चित्तमासमन्तात् प्रपूरितम्॥ २३॥
विरागादिमहारागं वज्रानङ्गं महाक्षरम्।
परिपूर्णमसंक्लिष्टं पक्षद्वयस्य वासनैः॥ २४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथा नद्युदकं विष्टं समुद्रे तत्पयःसमम्।
तथा भावसमूहो ऽयमक्षरे तत्समो ऽक्षरः॥ २५॥
यथा धातुसमूहो ऽयं रसत्वं याति भक्षितः।
बीजैर्बीजस्वभावं च फलकाले मानवर्जितम्॥ २६॥
एवं भावसमूहो ऽपि परमाक्षरभक्षितः।
परमाक्षरतां याति सर्वाकारस्वरूपधृक्॥ २७॥
न दंशे वेदनां वेत्ति नान्यत्र चापि दष्टकः।
न विषयानिन्द्रियद्वारैः पूर्णावस्थां विषे गते॥ २८॥
नैवं वज्रमणौ योगी नान्यत्र वेत्ति सत्सुखम्।
न विषयानिन्द्रियद्वारैश्चित्ते पूर्णकलां गते॥ २९॥
यथा लोहैकदेशे ऽपि संस्थितो हि महारसः।
लोहं तीव्राग्निसन्तप्तं वेधयेदासमन्ततः॥ ३०॥
तथैवैकप्रदेशे ऽपि संस्थितं सुखमक्षरम्।
चित्तं कामाग्निसन्तप्तं वेधयेदासमन्ततः॥ ३१॥
यथा च विद्धलोहानां नैव मलो भवेत् क्वचित्।
तथा च विद्धचित्तानां न वासना भवेत् क्वचित्॥ ३२॥
हेमत्वं हि गतं लोहमग्निना निर्मलं भवेत्।
भूयो भूयस्तथा चित्तं निर्मलं रागवह्निना॥ ३३॥
यथा महामणिस्पर्शाद्याति शिला प्रदीप्तताम्।
तथाक्षरसुखस्पर्शात् सुखतां चित्तमेति वै॥ ३४॥
किमत्र बहुनोक्तेन लोकसंवृतिसत्यतः।
अवितर्क्यो रससद्भावो लोहस्यावेधनं प्रति॥ ३५॥
वितर्क्यो ज्ञानसद्भावः किं पुनः परमार्थतः।
मलागन्तुकलिप्तस्य चित्तस्यावेधनं प्रति॥ ३६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ षष्ठं मुद्राप्रकरणम्

कर्ममुद्रासमापत्त्या ज्ञानमुद्रावलम्बनैः।
महामुद्रैकयोगेन वृद्धिं याति तदक्षरम्॥ १॥
वृद्धस्य न च वृद्धिः स्यात् क्षीणस्य क्षीणता न च।
अस्तंगतस्य नास्तगमनमुदितस्योदयं न हि॥ २॥
न प्रकाशः प्रकाशस्य पिहितं पिहितस्य न।
जातस्यैय न जन्म स्यान् मृतस्य मरणं न च॥ ३॥
मुक्तस्य न च मुक्तिः स्यादस्थितस्य न चास्थितिः।
अभावो न ह्यभावस्य भावो भावस्य नैव च॥ ४॥
क्षरस्यापि क्षरो न स्यादक्षरस्य न चाक्षरः।
स्वभावाभावधर्माणां मायोत्पादः क्षयस्तथा॥ ५॥
न क्षयं यान्ति भूतानि न जायन्ते स्वभावतः।
निःस्वभावमिदं विश्वं भावाभवैकलक्षणम्॥ ६॥
स्वप्रज्ञालिङ्गितं चित्तं पद्मे वज्रमणौ गतम्।
तत्र चन्द्रगतस्पन्दो निःस्पन्दाक्षरभावना॥ ७॥
कायवाक्चित्तनाडीषु कायवाक्चित्तभावना।
समाहारस्त्रिवज्राणां शङ्खिन्यां ज्ञानभावना॥ ८॥
प्रज्ञारागद्रुतानां च बिन्दूनां शिरसः क्रमात्।
पूर्णापदं प्रविष्टानां बन्धनं परमार्थतः॥ ९॥
यथोदितः क्रमाच्चन्द्रः कलाभिर्याति पूर्णताम्।
वासनाहरणं पूर्णान चन्द्रच्छेदो न पूरणम्॥ १०॥
तथोदितं क्रमाज्ज्ञानं भूमिभिर्याति पूर्णताम्।
क्लेशाद्याहरणं पूर्णा न ज्ञानच्छेदो न पूरणम्॥ ११॥
यथा मध्यशशाङ्केन पूर्णायां न स्थिरः शशी।
संसारवासनाङ्केन तथा चित्तं सुखे ऽक्षरे॥ १२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्पत्तिः प्रलयः पक्षः शुक्लः कृष्णः प्रतिष्ठितः।
तयोर्मध्ये तु या पूर्णा सा पूर्णा न प्रतिष्ठिता॥ १३॥
एकक्षणाभिसम्बुद्धं पूर्णायां निश्चलं भवेत्।
यदा वज्रमणौ चित्तं तत् सर्वक्षणपूरकम्॥ १४॥
न स्थितिः शुक्लपक्षे ऽस्य गमनं नासिते क्वचित्।
पक्षद्वयस्य मध्यस्थं पूर्णायां गतमद्वयम्॥ १५॥
उष्णीषादुदयं तस्य पूर्णा वज्रमणौ भवेत्।
सविरागात् कलाहानिर् वज्राद्धानेः प्रपूर्णता॥ १६॥
उष्णीषे ह्युदयो भूयः पूर्णा वज्रमणौ पुनः।
सविरागात् कलाहानिर्ज्ञानहानिर्न देहिनाम्॥ १७॥
महासुखस्वभावो ऽस्य पूर्णाशब्देन गीयते।
अन्यभावान्तरं सर्वं सृष्टिसंहारहेतुकम्॥ १८॥
भवाद्गच्छति निर्वाणं तस्मादेति पुनर्भवम्।
स्वपक्षाभ्यां यथा चन्द्रो ऽयनाभ्यां भास्करो यथा॥ १९॥
पूर्णायां निश्चलस्यास्य भूमिभिः परिपूर्णता।
द्व्ययुतद्व्यष्टशतैः श्वासैरक्षरक्षरभक्षितैः॥ २०॥
पक्षद्वयं व्यतिक्रम्य भूमिभिः परिपूरितम्।
द्वादशाकारसत्यार्थं षोडशाकारमक्षरम्॥ २१॥
भूमिभिर्द्वादशाकारं पूरितं परमाद्वयम्।
कलाभिः पूरितं चित्तं षोडशाकारमक्षरम्॥ २२॥
एकार्थमद्वयं धर्मं परमार्थमविनश्वरम्।
पूर्णावस्थां गतं चित्तमासमन्तात् प्रपूरितम्॥ २३॥
विरागादिमहारागं वज्रानङ्गं महाक्षरम्।
परिपूर्णमसंक्लिष्टं पक्षद्वयस्य वासनैः॥ २४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथा नद्युदकं विष्टं समुद्रे तत्पयःसमम्।
तथा भावसमूहो ऽयमक्षरे तत्समो ऽक्षरः॥ २५॥
यथा धातुसमूहो ऽयं रसत्वं याति भक्षितः।
बीजैर्बीजस्वभावं च फलकाले मानवर्जितम्॥ २६॥
एवं भावसमूहो ऽपि परमाक्षरभक्षितः।
परमाक्षरतां याति सर्वाकारस्वरूपधृक्॥ २७॥
न दंशे वेदनां वेत्ति नान्यत्र चापि दष्टकः।
न विषयानिन्द्रियद्वारैः पूर्णावस्थां विषे गते॥ २८॥
नैवं वज्रमणौ योगी नान्यत्र वेत्ति सत्सुखम्।
न विषयानिन्द्रियद्वारैश्चित्ते पूर्णकलां गते॥ २९॥
यथा लोहैकदेशे ऽपि संस्थितो हि महारसः।
लोहं तीव्राग्निसन्तप्तं वेधयेदासमन्ततः॥ ३०॥
तथैवैकप्रदेशे ऽपि संस्थितं सुखमक्षरम्।
चित्तं कामाग्निसन्तप्तं वेधयेदासमन्ततः॥ ३१॥
यथा च विद्धलोहानां नैव मलो भवेत् क्वचित्।
तथा च विद्धचित्तानां न वासना भवेत् क्वचित्॥ ३२॥
हेमत्वं हि गतं लोहमग्निना निर्मलं भवेत्।
भूयो भूयस्तथा चित्तं निर्मलं रागवह्निना॥ ३३॥
यथा महामणिस्पर्शाद्याति शिला प्रदीप्तताम्।
तथाक्षरसुखस्पर्शात् सुखतां चित्तमेति वै॥ ३४॥
किमत्र बहुनोक्तेन लोकसंवृतिसत्यतः।
अवितर्क्यो रससद्भावो लोहस्यावेधनं प्रति॥ ३५॥
वितर्क्यो ज्ञानसद्भावः किं पुनः परमार्थतः।
मलागन्तुकलिप्तस्य चित्तस्यावेधनं प्रति॥ ३६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ सप्तमं मलप्रकरणम्

नागन्तुको मलश्चित्ते न चित्ताच्चिरकालिकः।
न चित्तेन विना जातो न चित्ते संस्थितोऽव्ययः॥ १॥
यद्यागन्तुक एव स्याच्चित्तं प्रागमलं तदा।
चिरकाली यदा चित्तात्तस्यैव सम्भवः कुतः॥ २॥
यदि चित्तं विना जातस्तदा खकुसुमं यथा।
यदि स्थितः सदा चित्ते न नश्येत् सर्वतस्तदा॥ ३॥
ताम्रस्य कालिमा यद्वद्रसयोगेन नश्यति।
न तस्य सत्त्वता नश्येन्निर्मलत्वेन या स्थिता॥ ४॥
तद्वच्चित्तमलः शून्यतायोगेन प्रणश्यति।
न तस्य ज्ञानता नश्येन्निर्मलत्वेन या स्थिता॥ ५॥
रसविद्धो यथा लोहो न पुनर्लोहतां व्रजेत्।
सुखविद्धं तथा चित्तं न पुनर्दुःखतां व्रजेत्॥ ६॥
न विरागात् परं पापं न पुण्यं सुखतः परम्।
अतो ऽक्षरसुखे चित्तं वेशनीयं सदा नृप॥ ७॥
वक्तुं न शक्यते सौख्यं कुमार्या सुरतं विना।
यौवने सुरतं प्राप्य स्वतो वेत्ति महासुखम्॥ ८॥
एवं न शक्यते वक्तुं समाधिरहितैः सुखम्।
समाधावक्षरं प्राप्य स्वतो विन्दन्ति योगिनः॥ ९॥
अक्षरजसुखज्ञाने सर्वज्ञैरपि शंक्यते ।
तथा क्वचिन्न कर्तव्यो विरागो मनसोऽसुखात्॥ १०॥
च्युतेर्विरागसम्भूतिर्विरागाद्दुःखसम्भवः।
दुःखाद्धातुक्षयः पुंसां क्षयान् मृत्युरिति स्मृतः॥ ११॥
मृत्योः पुनर्भवस्तेषां भवान् मृत्युश्चच्युतिः पुनः।
एवं विरागसम्भूतेः सत्त्वानां नान्यथा भवः॥ १२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन च्युतिरागं विवर्जयेत्।
येनाक्षरसुखं याति योगी संसारबन्धनात्॥ १३॥
कामुको ऽपि विरागान्न कामशास्त्रं समीहते।
मयोक्ते किं पुनस्तन्त्रे योगी दुःखं समीहते॥ १४॥
शुक्राक्षरस्वभावेन साधयेत् परमाक्षरम्।
आधारे च्युतिमापन्न आधेयस्य विरागता॥ १५॥
आधाराधेयसम्बन्धो यावन्नाक्षरतां व्रजेत्।
चित्तमक्षरतां प्राप्तं नाधाराधेयलक्षणम्॥ १६॥
अक्षरोद्भवकायस्य ऊर्णाचक्रगतस्य तु।
आलिकालिसमायोगो हूंकारो नेष्यते नृप॥ १७॥

अथाष्टमं कार्यकारणभावसम्बन्धप्रकरणम्

बिम्बं शून्योद्भवं हेतुः फलमक्षरजं सुखम्।
फलेन मुद्रितो हेतुर्हेतुना मुद्रितं फलम्॥ १॥
शून्यता बिम्बधृग्धेतुः करुणाक्षरधृक् फलम्।
शून्यताकरुणाभिन्नं बोधिचित्तं तदच्युतम्॥ २॥
निर्वाणरहितं बिम्बं संसारातीतमक्षरम्।
शाश्वतोच्छेदनिर्मुक्तस्तयोर्योगो ऽद्वयो ऽपरः॥ ३॥
अभावो नास्ति बिम्बस्य अभावोद्भूतलक्षणात्।
भावो नास्त्यक्षरस्यापि भावसम्भूतलक्षणात्॥ ४ ॥
अभावभावसंयोगो वज्रयोगो ऽद्वयो ऽपरः।
रूपारूपविनिर्मुक्तः प्रतिसेनेव दर्पणे॥ ५॥
बिम्बं न भवमायाति नापि निर्वाणमक्षरम्।
अन्योन्यालिङ्गितं शान्तं नपुंसकपदं परम्॥ ६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रज्ञा हेतोरजातत्वात् प्रज्ञाहेतूद्भवं फलम्।
प्रज्ञा हेतोरजातत्वात् प्रज्ञाजातं न हेतुजम्॥ ७॥
अतो न हेतुजं ज्ञानं प्रज्ञाज्ञानमनुत्तरम्।
फलेन हेतुनान्योन्यं न परस्परमुद्रणम्॥ ८॥
हेंतुः फलं च यत् सर्वं तत् प्रतीत्यसमुद्भवम्।
अन्योन्यमुद्रितं बिम्बं नोत्पन्नं न च निर्वृतम्॥ ९॥
प्रज्ञा चात्यन्तनिर्वृता उत्पन्नश्च परोऽक्षरः।
हेतुफलविनिर्मुक्तिर्न परस्परमुद्रणम्॥ १०॥
अजातस्यानिरुद्धस्य यज्ज्ञेयस्येह दर्शनम्।
तत् स्वचित्तस्य नान्यस्य बाह्यज्ञेयविभागतः॥ ११॥
अतो न चात्मनात्मानं मुद्रितुं शक्यते क्वचित्।
किं छिनत्ति महाखड्ग आत्मानमात्मधारया॥ १२॥
वन्ध्यादुहितृसङ्गेन स्वप्ने सौख्यं यथा भवेत्।
गगनोद्भवबिम्बेन सेवितेन तथात्मनः॥ १३॥
न प्रज्ञा नाप्युपायो ऽसौ सहजः प्रज्ञया सह।
आपूर्णश्चैव सौख्येन सर्वावरणवर्जितः॥ १४॥
आकाशवन्निरावरणो विषयेन्द्रियवर्जितः।
सर्वतः सर्वभूतस्थ अच्छेद्यो भेदवर्जितः॥ १५॥

अथ नवमं षडाध्यात्मिकतत्त्वप्रकरणम्

स्वयम्भूर्वज्रसत्त्वो ऽसौ महार्थः परमाक्षरः।
महारागो महासत्त्वः सर्वसत्त्वरतिङ्करः॥ १॥
बोधिसत्त्वो महाद्वेषः क्लेशक्षयी महारिपुः।
समयसत्त्वो महामोहो मूढधीमोहसूदनः॥ २॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वज्रयोगो महाक्रोधः क्रुद्धमारमहारिपुः।
कालचक्रो महालोभः क्षरलोभनिषूदनः॥ ३॥
वज्रमभेद्यमित्याह महार्थं भगवानिह।
सत्त्वस् त्रिभवस्यैकता तदुक्तं परमाक्षरम्॥ ४॥
परमाक्षरसुखापूर्णो भूमिभिः परिपूरितः।
महारागो महासत्त्वः सर्वसत्त्वरतिङ्करः॥ ५॥
बोधौ व्यवस्थितः सत्त्वो बोधिसत्त्वस्ततोऽचलः।
क्लेशादिद्वेषसङ्घानां महाद्वेषो महारिपुः॥ ६॥
समयश्चन्द्रामृतं शुक्रमच्युतिस्तस्य भक्षणम्।
समयसत्त्वोऽनया युक्त्या मूढधीमोहसूदनः॥ ७॥
एकत्वं सर्ववज्राणां प्रज्ञाकायाक्षरैः सह।
महाक्रोधो महाशत्रुर्माराणां क्रोधरूपिणाम्॥ ८॥
महाक्षरसुखोपायात् सत्त्वार्थं न त्यजेत् क्वचित्।
सत्त्वान् मोक्तुं महालोभः क्षरलोभनिषूदनः॥ ९॥

अथ दशमं षट्कुलप्रकरणम्

एते ह्युक्ताः षडाकारा अक्षरज्ञानवेदना।
विज्ञानरूपसंस्कारसञ्ज्ञाः स्कन्धकुलानि ते॥ १॥
ज्ञानाग्न्यम्बरपृथिवीवायूदका यथाक्रमम्।
मनश्चक्षुःश्रुतिकायनासजिह्वास्तथैव च॥ २॥
शब्दरसधर्मधातुगन्धस्प्रष्टव्यरूपिणः ।
क्रोधराट् षण्मुखो भीमः षट्कुलैः परिशोधितः॥ ३॥
कायगुह्येन्द्रियचित्तं त्रिविधं मण्डलं सदा।
प्रज्ञोपायत्रिवज्राणां जायते वज्रसत्त्वता॥ ४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथोपसंहारः

इदं सेकस्य साधनं परमाक्षरसाधनम्।
नाडीकुलसमायुक्तमुद्देशाच्चन्द्र भाषितम्॥ १॥
सदर्थद्योतिनी शुद्धा सर्वावृतितमोऽपहा।
हरत्वेषा जगत्तापं सेकेन्दुज्ञानचन्द्रिका॥ २॥

Acc. 39382 / 313A2
NEPAL SANSKRIT UNIVERSITY पुस्तकालय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

डॉ० काशीनाथ न्यौपाने संस्कृत वाङ्मय के विशिष्ट साधक हैं। इन्होंने वाराणसी में रहकर प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी योगीन्द्रानन्द जी के सान्निध्य में वेदान्त, न्याय, मीमांसा, बौद्धदर्शन, बौद्धतन्त्र, शैवदर्शन, शाक्ततन्त्र, पालि, प्राकृत एवं जैन दर्शन का गहन अध्ययन किया है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से पूर्वमीमांसा एवं बौद्धदर्शन में स्वर्णपदक सहित आचार्य करने के बाद विद्यावारिधि उपाधि प्राप्त किया है।

संस्कृत लेखन में सिद्धहस्त डॉ० न्यौपाने द्वारा लिखित मीमांसापदार्थविज्ञानम्, मीमांसातर्कभाषा, मीमांसानयभूषनम्, बौद्धदर्शनभूमिः, बौद्धप्रमाणशास्त्रम्, वज्रयानमहाशास्त्रम्, सौत्रान्तिकदर्शनम्, वज्रयोगसाधना, बौद्धागमरहस्यम्, दर्शनसंदोहः, तारिणीवरिवस्या, हेवज्रतन्त्रम्, गुह्यसमाजतन्त्रम्, लाहिडी क्रियायोग संहिता आदि मौलिक कृतियाँ संग्रहणीय ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध हैं जो विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भी निर्धारित हैं।

नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्व रिसर्च डाइरेक्टर डॉ० न्यौपाने सम्प्रति नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, काठमाण्डु के बौद्धदर्शन विभाग में कार्यरत हैं।

₹ 375

ISBN 81-86117-17-2

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu